अंक-5

कृषि चेतना

2022

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

लुधियाना-141004

वार्षिक पत्रिका

अंक: 5 वर्ष: 2022

कृषि चेतना

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
लुधियाना-141004

संपादक मंडल:
बी. एस. जाट
प्रदीप कुमार
ममता गुप्ता
भारत भूषण
मनेश चन्द्र डागला

प्रकाशक:
निदेशक
भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान
पी.ए.यू. परिसर, लुधियाना -141004
दूरभाष: 0161-2440047
फैक्स: 0161-2430038
ई-मेल: director.maize@icar.gov.in
वैबसाइट: iimr.icar.gov.in

नोट: इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, रचनायें तथा उनमें व्यक्त विचार एवं चित्र लेखकों के निज़ी हैं, संपादक अथवा प्रकाशक इसमें प्रकाशित किसी भी विचार अथवा चित्र के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

आवरण पृष्ठ पर दिए गए चित्रों का योगदान:
डॉ. प्रदीप कुमार, डॉ. बी. एस. जाट एवं डॉ. पी एच रोमेन शर्मा

मुद्रक:
एम.एस. प्रिंटर्स,
सी-108/1, बैक साइड, नारायणा औद्योगिक क्षेत्र,
फेस-I, नई दिल्ली-110028,
मो. 7838075335, 7838075152, 9899355565
दूरभाष: 011-45104606,
ई-मेल: msprinter1991@gmail.com

निदेशक की कलम से...

प्रिय पाठकगण,

सदियों से कृषि भारत की अधिकांश आबादी की आय एवं आजीविका का मुख्य स्रोत रही है। राष्ट्र के पोषण के लिए कृषि ही एकमात्र उत्तरदायी स्रोत है, साथ ही यह हमारी राष्ट्रीय आय में एक बड़ा योगदान लगातार दे रही है। भारतीय कृषि देश के घरेलु तथा विदेशी व्यापार दोनों में ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, भारत में मक्का अनुसंधान एवं विकास का बुनियादी संस्थान है। वर्तमान व भावी जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए 'फसल विविधीकरण' फसलोत्पादन का आवश्यक आयाम है जिसके लिए मक्का अत्यधिक सक्षम फसल है, इसके साथ–साथ स्थायी कृषि के लिए भी मक्का फसल अहम भूमिका निभा सकती है। मक्का अंतः उपयोग के आधार पर एक बहुआयामी फसल है, जो कि खाद्य, सब्जी, चारा, और उद्योगों में व्यापक रूप से उपयोग में आती है। खाद्य और उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में मक्का की तीव्र बढ़ती मांग के साथ, यह संस्थान देश में मक्का के पर्याप्त उत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान चुनौतियों से निपटने के लिए निरंतर कार्यरत है। इसके अलावा, लोगों के आहार–व्यवहार में मक्का को बढ़ावा देने के लिए, विशिष्ट मक्का (गुणवत्ता प्रोटीन मक्का, बेबी कॉर्न, पॉपकॉर्न, स्वीट कॉर्न, श्वेत मक्का) पर अनुसंधान व विकास कार्य किया जा रहा है। डेयरी उद्योग में भी मक्का का हरा चारा व पशु आहार के रूप में अहम योगदान है तथा पशुधन हेतु मक्का की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए भी जोर दिया जा रहा है।

किसानों को मक्का आधारित फसल प्रणालियों की ओर रुख करने और एक ही समय में पर्यावरणीय स्थिरता में योगदान करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए 'संरक्षण कृषि मॉड्यूल' विकसित किए जा रहे हैं, साथ ही कुशल पोषक तत्व प्रबंधन तकनीकों का विकास किया जा रहा है। आर्थिक रूप से सक्षम फसली एवं अन्तर फसली प्रणाली में मक्का को शामिल करने के लिए यह संस्थान प्रयासरत हैं। बदलती जलवायु के तहत, जैविक और अजैविक तनावों के प्रबंधन के लिए उपलब्ध जननद्रव्यों के आनुवंशिक आधार को अधिक व्यापक बनाना, बेहतर उत्पादन तकनीक, कीटों एवं रोगों के कुशल प्रबंधन का प्रयास किया जा रहा है ।

मुझे हमारे संस्थान से कृषि–चेतना के पांचवे अंक को प्रस्तुत करने में गर्व का अनुभव हो रहा है। अधिकांश भारतीय किसानों को हिंदी भाषा में कृषि सम्बंधित जानकारियों की उपलब्धता कम है, कृषि के विशाल ज्ञान संसाधन ज्यादातर अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध हैं। चूंकि किसान भाषा अवरोध के कारण मौजूदा ज्ञान संसाधनों का उपयोग करने से वंचित रह जाते है, अतः इस समस्या को हल करने के लिए हिंदी भाषा को कृषि साहित्य में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किसानों को अनुसंधान और विकास गतिविधियों और उनके प्रसार को बढ़ाने के लिए उपलब्ध कृषि ज्ञान से अवगत कराने के लिए इसका हिंदी भाषा में उपलब्ध होना अत्यंत आवश्यक है। इस दृष्टि से, हमारे संस्थान की "कृषि चेतना"

किसानों के साथ अधिक कुशल तरीके से संवाद करने की एक मुहिम है। इस अंक में विभिन्न फसलों के उत्पादन से संबंधित लेख, मृदा उर्वरता, पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व, प्रसार प्रौद्योगिकी की भूमिका, तकनीकी प्रगति, बीमारियों एवं कीटों का प्रबंधन, आदि शामिल हैं। मैं इस अंक के संकलन में समर्पण एवं सक्रिय भागीदारी के लिए संपादक मंडल को धन्यवाद देता हूं। मुझे उम्मीद है कि संस्थान के इस प्रयास से हमारे किसानों के ज्ञान में वृद्धि होगी जो देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

सुजय रक्षित

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विवरण	पृष्ठ संख्या
	निदेशक की कलम से	iii
1.	**आत्मनिर्भरता में सहायक नूतन तकनीकियां** मोहम्मद उस्मान एवं एस आर यादव	1–4
2.	**राजभाषा हिंदी का बदलता परिवेश** संतराम यादव	5–8
3.	**आत्मनिर्भर भारत में गोवंशीय आधारित शून्य लागत प्राकृतिक खेती** राघवेन्द्र कुमार, संगीता श्रीवास्तव एवं आँचल सिंह	9–14
4.	**कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) की बढ़ती उपयोगिता** ओम प्रकाश, कामिनी सिंह, पल्लवी यादव एवं ब्रह्म प्रकाश	15–20
5.	**कृषि उत्पादन बढ़ाने में आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का की किस्में एवं भूमिका** कामिनी सिंह, लाल सिंह गंगवार, ब्रह्म प्रकाश, ओम प्रकाश, अनीता सावनानी एवं अश्विनी दत्त पाठक	21–26
6.	**आम की जैव विविधता तथा मृदा स्वास्थ्य–एक विश्लेषण** तरुण अदक, घनश्याम पांडेय एवं विनोद कुमार सिंह	27–31
7.	**भारत में जैविक खेतीः परिचय, मूलभूत सिद्धांत, संभावनाये व महत्व** राधेश्याम, नवीन मलिक, शंकर लाल जाट, सी एम परिहार, भूपेंदर कुमार, कृष्ण कुमार, हरनारायण मीना, हरिशंकर नायक, प्रीती तिग्गा, प्रवीण कदम, अनुप कुमार, अरविन्द तोमर एवं भरतराज मीना	32–35
8.	**पश्चिमी राजस्थान में अकालो का तुलनात्मक अध्ययन एंव प्रबंधन** सुरेन्द्र पूनियॉ	36–40
9.	**फसल उत्पादन में मूल परिवेश (राइजोस्फेरिक) जीवाणुओं की भूमिका** चेतन कुमार जी., अमित कुमार, जयराम चौधरी, प्रकाश चन्द घासल, ललित कृष्ण मीणा, देबाशीष दत्ता, अमृत लाल मीणा, निशा वर्मा एवं रंजना	41–44
10.	**मक्का के उत्पादों का उपयोग और इनका महत्व** श्यामबीर सिंह, रियाज अहमद, अविनाश कुमार, दीपक पाल व सचिन कुमार	45–48
11.	**हाइटेक बागवानी से अधिक आय एवं उद्यमिता विकास** संजय कुमार गुप्ता, प्रशांत सिंह एवं लव कुमार	49–52
12.	**लहसुन का प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन** बिबवे भूषण, कल्याणी गोर्रेपाटी, योगेश खाडे, मनोज कुमार महावर, भारत भूषण एवं मेजर सिंह	53–55
13.	**पूर्वी भारत में खरीफ मक्का के मुख्य खरपतवार व उनकी रोकथाम** श्यामबीर सिंह, रियाज अहमद, अविनाश कुमार, दीपक पाल एवं सचिन कुमार	56–60
14.	**डेटा विश्लेषण में अंतर्दृष्टि** पंकज दास, भारती एवं राहुल बनर्जी	61–64
15.	**बाजरा फसल की उन्नत खेती** दिनेश चौधरी	65–68

16. **स्वयं सहायता समूहः ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम** 69–71
आकाँक्षा सिंह, दिव्यता जोशी, प्रियंका शर्मा एवं प्रियाजोय कर

17. **पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की आवश्यकता, कमी एवं स्रोत** 72–75
इन्दु चोपड़ा, कपिल आत्माराम चोभे, विनोद कुमार शर्मा हरनारायण मीना एवं रघुनाथ पाण्डेय

18. **बदलते जलवायु परिवेश में मृदा उर्वरता संरक्षण** 76–78
अश्वनी कुमार वर्मा, आकाश, प्रमोद कुमार, अर्जुन प्रसाद वर्मा, लक्ष्मीकांत कन्नौजिया एवं शान्तनु कुमार दुबे

19. **भारत में मक्का फसल उत्पादन की अपार संभावनाएं** 79–81
अभिषेक, प्रेमलता मीना, अंकुर भाकर, सुन्दर आंचरा, ममता, सी एम परिहार एवं चिरंजीव कुमावत

20. **कृषि में नैनो–प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग** 82–85
दिनेश कुमार यादव, प्रशान्त कौशिक, ध्रुबा ज्योति सरकार, जितेंद्र कुमार, प्रियागुरव, भारत प्रकाश मीणा, दीप मोहन महला, सी. एम. परिहार एवं जे के साहा

21. **बेहतर फसल उत्पादन के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता** 86–88
अभिषेक, प्रेमलता मीणा, अंकुर भाकर एवं सी एम परिहार

22. **फसल अवशेषों को जलानाः कारण, प्रभाव और प्रबंधन** 89–91
प्रेमलता मीना, ममता, अंकुर भाकर, अजीत कुमार मीना, राजेंद्र बैरवा, सी एम परिहार, एवं दीप मोहन महला

23. **''भेड़–बकरी अपनाओ''** 91
पवन कुमार माहोर

24. **कच्चे आम का प्रसंस्करण** 92–93
रुपेंद्र कौर, संदीप कुमार रस्तोगी, सुशील कुमार शर्मा एवं पी के राय

25. **पॉपकॉर्न मक्काः एक स्वस्थ स्नैक्स** 94–95
सीमा श्योराण, संदीप कुमार एवं प्रियाजोय कर

26. **फसल सिमुलेशन मॉडल एवं कृषि में उनका अनुप्रयोग** 96–98
जितेंद्र कुमार, निशांत कुमार सिन्हा, धीरज कुमार, बृजेश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं रणजीत सिंह चौधरी

27. **मृदा परीक्षण हेतु मिट्टी के नमूने की सटीक प्रक्रिया और उपकरण** 99–100
ममता, प्रेमलता मीणा, राजेंद्र बैरवा, अंकुर भाकर, देवी लाल धाकड एवं दीप मोहन महला

28. **चावल में पानी बचाने के लिए वैकल्पिक गीली और सूखी विधि द्वारा सिचांई** 101–102
दिनेश कुमार एवं भवानी सिंह प्रजापत

29. **ग्रीष्मकालीन ज्वार की फसल में एचसीएन (हाइड्रोजन साइनाइड) की पहचान और निदान** 103–104
उत्तम कुमार

30. **वर्तमान कृषि में एकीकृत कृषि प्रणाली का महत्व** 105–107
सुनील कुमार, सरिता, प्रियाजोय कर, बी एस जाट, प्रदीप कुमार, मनेशचन्द्र डागला एवं भारत भूषण

31. **मशीन लर्निंग कृषि क्षेत्र को कैसे बदल सकती है** 108–110
अक्षय धीरज, सपना निगम, सलम जयाचित्रा देवी, शबाना बेगम, कीर्ति जलगांवकर, प्रियाजोय कर एवं नीतीश कुमार

32. **हाइड्रोजेलः जल संचयन की एक आधुनिक तकनीक** 111–113
विनय कुमार कर्दम, राजाराम बुनकर, भानु वर्मा एवं दशरथ प्रसाद

33. **उत्तर पूर्वी क्षेत्र में मक्का उत्पादन के अवसर और चुनौतिया** 114–117
कृष्णदास सिंह, तुसोइंग ए, एल प्रिसिला, पी एच रोमेन शर्मा, बी एस जाट, प्रियाजोय कर, सुमित कुमार अग्रवाल एवं प्रदीप कुमार

34. **पशुओं के चारे के लिए प्रमुख घास फसलों का महत्व** 118–120
राजेश, विजेंद्र कुमार, दिनेश कुमार, यतीश के आर एवं सुमित कुमार अग्रवाल

35. **कपास की फसल के प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन** 121–122
अशोक कुमार, हरीश कुमार', सतनाम सिंह, सुनीत पंधेर, कुलवीर सिंह एवं पंकज राठौर

36. **सोयाबीन की वैज्ञानिक खेतीः फसल विविधिकरण एंव खाद्य सुरक्षा का एक बेहतर विकल्प** 123–129
राधेश्याम, योगिता नैण, प्रवीण वी. कदम, दीप मोहन महला, हरनारायण मीना, अनूप कुमार, शंकर लाल जाट, हरिशंकर नायक, प्रीति तिग्गा एवं भरत राज मीना

37. **सरसों की वैज्ञानिक खेती से खाद्य तेल आपूर्ति के साथ आय में वृद्धि** 130–134
हरनारायण मीना, सुशील कुमार सिंह, मोहर सिंह मीना, मोनू जोरवाल, शंकर लाल जाट, राधेश्याम, अनूप कुमार, इंदु चोपड़ा एवं सी. एम. परिहार

38. **भारत में तिलहन उत्पादनः महत्व, उत्पादन बाधाएं और वैज्ञानिक नवाचार के माध्यम से उत्पादन** 135–138
राधेश्याम, योगिता नैण, प्रवीण वी कदम, हरनारायण मीना, अनूप कुमार, शंकर लाल जाट, सी एम परिहार, हरिशंकर नायक, प्रीति तिग्गा एवं भरत राज मीना

39. **उच्च एमाइलोज मक्काः इसके स्वास्थ्य लाभ एवं औद्योगिक प्रयोग** 139–140
दीपक भामरे, आरूशी अरोड़ा, अभिजीत कुमार दास, बी एस जाट, डी पी चौधरी, यतीश के. आर., रमेश कुमार, चिकप्पा जी करजगी एवं सुजय रक्षित

आत्मनिर्भरता में सहायक नूतन तकनीकियां

मोहम्मद उस्मान एवं एस. आर. यादव
भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद (तेलंगाना)
संवादी लेखक का ई–मेलः sant-yadav@icar.gov.in & sryadav1220@gmail.com

परिचय

भारतीय संस्कृति में ऋषि परंपरा और कृषि परंपरा का विशेष महत्व रहा है। कृषि प्रधान देश भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय किसानों के लिए नीतियां, कार्यक्रम और योजनाएं तैयार करता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) ने देश की खाद्य और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। परिषद द्वारा विकसित उन्नत किस्मों के प्रसार और किसानों तक पहुंच के कारण आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हमारा देश खाद्यान्नों के निर्यातक की भूमिका में आ गया है। 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' के अंतर्गत आत्मनिर्भरता का नया जोश फूंककर 'लोकल के लिए वोकल' की बात से विकास और राष्ट्रीय स्वाभिमान की नई खिड़कियां एवं नए द्वार खुले हैं। कोरोनाकालावधि ने उपभोक्ता की आत्मा को झकझोर कर राष्ट्रीय अर्थतंत्र को भी ललकारा तो हमने अपनी समृद्ध भौतिक परंपरा और आधुनिक ज्ञान से सफलता के नए आयाम स्थापित किए हैं। कृषि है तो भारत है नामक उक्ति को चरितार्थ करते हुए हमारी विशाल जनसंख्या एवं पशुधन का भरण पोषण करने में कृषि क्षेत्र एक आशा की किरण रहा है। भारतीय संस्कृति में कृषि परंपरा का समय बदला और नित नवीन अनुसंधानों, अधिक उपज देने वाली फसलीय किस्मों और उन्नत तकनीकों से हमारी कृषि पद्धति न केवल पल्लवित और पोषित ही हुई अपितु परिष्कृत भी हुई। विश्व में कृषि जिंसों के उत्पादन में देश सदैव अग्रिम पंक्ति में अंकित रहा है। खाद्यान्न और बागवानी फसलों के उत्पादन में भी हमने नया इतिहास रचा है। पशुधन सेक्टर ने दुग्धोत्पादन में अग्रणी स्थान बनाया है। नई मत्स्य प्रजातियों की खोज करने के बाद उनका प्रजनन प्रोटोकॉल विकसित किया गया है। भारतीय कृषि को आधुनिक बनाने और उसके विस्तार हेतु बीज से लेकर बाज़ार तक हर व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन किया है। न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) प्रदान करने से रिकॉर्ड मात्रा में खरीद और खरीद केंद्रों में बढ़ोतरी हुई है। मैन्युफर्क्चरिंग से जुड़े दस सेक्टर्स के लिए पहली बार देश में लगभग डेढ़ लाख करोड़ रुपए की प्रोडक्शन लिंक्ड इंसेंटिव स्कीम लागू की गई। सरकार ने आम लोगों के जीवन में Ease of Living ऑफ लिविंग को बढ़ाने पर जोर दिया है। इन्फ्रास्ट्रक्चर सेक्टर में बहुत सकारात्मक बदलाव लाया गया है। भारत कोरोना की लड़ाई में रिएक्टिव होने के स्थान पर प्रोऐक्टिव रहा है। एमएसएमई सेक्टर का बजट भी बढ़ा है। किसानों के खातों में सीधे सब्सिडी ट्रांसफर योजना मील का पत्थर साबित हुई है। नित नवीन योजनाओं व कार्यक्रमों से किसानों एवं कृषि क्षेत्र की प्रगति का चौतरफा प्रयास किया जा रहा है। विश्व पटल पर महाशक्ति के रूप में उभरते हुए भारत की संकल्पना के संदर्भ में ज्ञान–विज्ञान, अर्थव्यवस्था, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों में क्रमागत वृद्धि एक उल्लेखनीय प्रगति है। *सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।* सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत भावार्थस्वरूप "सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।" विश्व का यह परोपकारी देश भारत इसी भावना के साथ सबकी मदद करता है।

परिचर्चा

भारतीय अर्थव्यवस्था में कोरोना के कारण लागू लॉकडाउन का औद्योगिक और सामान्य गतिविधियों पर असर पड़ा परंतु अच्छी वर्षा के चलते कृषि में वृद्धि हुई। हमारे पुरुषार्थ की पहचान संकट के समय पर ही होती है। जहां एक ओर सूचना प्रौद्योगिकी और विनिर्माण उद्योग अपने भीतर मौजूद अपार संभावनाओं को साकार करके दिखाने की तरफ बढ़े तो दूसरी ओर सरकार ने कुछ पुराने मार्गों को बंद कर नए मार्ग खोलकर आर्थिक विकास के नए अवसर पैदा किए। आत्मनिर्भर भारत के अंतर्गत अनेकानेक प्रोत्साहन

योजनाएं आई हैं। डिजिटल इंडिया की बदौलत देशवासियों को ऑनलाइन लाने की दिशा में बड़ी सफलता मिली है। भारत की विकास कथा में वैश्विक कंपनियों के निवेश का इस्तेमाल नई पीढ़ी को नवोन्मेष, आत्मनिर्भरता, नए स्टार्टअप खोलने तथा रोजगार सृजन में सहायक बनेगा। आईटी के क्षेत्र में भारत की महत्वाकांक्षाओं को अब सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। उन्नत तकनीक हमारे लिए वरदान सिद्ध हुई हैं। फोन, मोबाइल, टैब, लैपटॉप या कंप्यूटर जैसे साधनों का उपयोग करते हुए मनुष्य नित नवीन जानकारी ग्रहण कर रहा है। मोबाइल, क्लाउड, पर्सनल कंप्यूटर, इंटेलिजेंस उपकरण, डेटा विश्लेषण, बिग डेटा, कृत्रिम बुद्धिमता, ध्वनि, मशीन अनुवाद और कंप्यूटर दृष्टि जैसे क्षेत्रों में हमारी भाषाएं उपलब्ध हैं।

आत्मनिर्भरता में सहायक नई तकनीकें

बाजार में नई तकनीकों और उत्पादों का आगमन हुआ है। बदलते माहौल में लॉकडाउन और आर्थिक सुस्ती के चलते नवीन तकनीकें अपना दम–खम दिखा गई। कंप्यूटर, क्लाउड और एज कंप्यूटिंग की मांग चहुंओर बढ़ गई। कृत्रिम बुद्धिमता आज की जरूरत बनकर रह गई है। 5–जी तकनीक का सुनहरा सपना साकार हुआ। साइबर सुरक्षा के मंडराते खतरे से क्वांटम कंप्यूटिंग के बिना काम नहीं चल रहा है। स्वचालित वाहनों की देश में मांग बढ़ी। 'आत्मनिर्भर भारत ऐप' लांच हुआ। ई–लर्निंग, वर्क फ्रॉम होम, गेमिंग, बिजनेस, एंटरटेनमेंट, ऑफिस यूटिलिटीज और सोशल नेटवर्किंग की श्रेणियों वाले ऐप्स को बढ़ावा मिला।

दैनिक जीवन में एआई का बढ़ता हस्तक्षेप

कृत्रिम बुद्धिमता (एआई) अर्थात् कृत्रिम बुद्धिमता एक कंप्यूटिंग सिस्टम है जिसमें मानव द्वारा कंप्यूटर के माध्यम से किए जाने वाले कार्यों को आसानी से किया जा सकता है। यह इंसानों जैसे बुद्धिमान कंप्यूटर या मशीन बनाने का प्रयास करती है। इसमें रोबोट की डिजाइनिंग, प्रोग्रामिंग, नए एप्लीकेशन के विकास, रिसर्च, ऑपरेशन, टेस्टिंग, सिस्टम मेंटेनेंस, रिपेयरिंग आदि की जानकारी मिलती है। माइक्रोसॉफ्ट के बिल गेट्स और गूगल के सीईओ सुंदर पिचाई के मतानुसार इसमें भविष्य निर्माण की अपार संभावनाएं है। एक बहुभाषी और सांस्कृतिक विविधता वाले देश में शिक्षा, आजीविका, व्यवसाय, प्रौद्योगिकी, तकनीक, विकास, प्रशासन एवं प्रबंधकीय निर्णय प्रक्रियाओं से जुड़ना अब जरूरी हो गया है। सेंसर तकनीकों, इंटरनेट, डाटा एनोलिटिक्स, क्लाउड कंप्यूटिंग, इंटरनेट और तेजतर्रार संचार प्रणालियों की मौजूदगी के चलते भारत में एआई क्षेत्र में अपार संभावनाएं हैं। इसरो और नासा में भी इन प्रोफेशनल्स की अच्छी मांग है। फ्रीलांसर बन सकते हैं। देश में कुशल पेशेवरों की उपलब्धता, डेटा की प्रचुरता, कनेक्टिविटी की सुगमता, युवा पीढ़ी की बहुत बड़ी संख्या, सरकार का जोश और भारत के प्रति दुनिया के भरोसे के कारण हम वाकई छलांग लगा जाने की स्थिति में है। पूरी दुनिया में कृत्रिम मशीनीकरण का व्यापक विस्तार हुआ है। वह दिन दूर नहीं जब कृत्रिम बुद्धि मता हमारे जन जीवन, कारोबार, सरकारी कामकाज, सेवाओं, उपकरणों आदि में दबदबा जमा चुकी होगी तो उनमें से बहुतों में मेड इन इंडिया, प्रॉसेस्ड इन इंडिया या फिर पावर्ड बाई इंडिया लिखा होगा।

किसानों हेतु बहुउपयोगी एआई तकनीक

फसल, मृदा, वातावरण और अन्य कारकों की स्थिति का विश्लेषण करने में एआई की विशेष भूमिका है। जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और खाद्य सुरक्षा जैसे कारकों ने फसलों की उपज की सुरक्षा एवं सुधार के लिए, वैज्ञानिकों को नवीन दृष्टिकोणों की खोज करने के लिए प्रेरित किया है। लघु व सीमांत कृषकों को AI के माध्यम से रोपण की बारीकियों, रोगों की जानकारी, सिंचाई समय सारणी और फसल परिपक्वता स्तर की जानकारी मिलती है। कृषि कार्यों में उपयोग किए जाने वाले सेंसर, वास्तविक समय में सूचना देते है। खेतों में एआई द्वारा प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग कई प्रकार से कर सकते हैं। किसान स्मार्टफोन से फसलों और उपकरणों का प्रबंधन व निगरानी कर सकते हैं। इस तकनीक से फसल रोग, कीट, खरपतवार निराई–गुड़ाई संभव है। एआई में फसल की परिपक्वता जानने की क्षमता होती है। एआई तकनीक से स्वचालित एप्लीकेटर द्वारा सटीक प्रबंधन को निष्पादित किया जाता है। कृषि क्षेत्र में रसायनों और उर्वरकों का प्रयोग रोबोटिक्स माध्यम दर से करना संभव है। कृषि वाहनों में ऑटोमेशन और रोबोटिक्स एप्लीकेशन को अपनाकर नियंत्रित किया जाता है। धान, सब्जी, फसल के बीज के लिए भी एआई द्वारा स्वचालित प्रत्यारोपण उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। वर्षा, तापमान, हवा की गति, आर्द्रता, गर्मी जैसे मौसम मापदंड़ों का डेटा

इकट्ठा करने में उसका, विश्लेषण और रिपोर्टिंग करना, पुराने डेटा रुझान से मौसम पूर्वानुमान लगाकर फसलोत्पादन में लाभार्जन हो सकता है।

चिकित्सा और स्वास्थ्य क्षेत्र में बहुलाभकारी एआई तकनीक

एआई से पादप की रोग पहचान, दवाओं का विकास, तथा जिंदगियां बचना संभव होगा और चिकित्सा खर्च में कमी आएगी। फोटो देखकर बीमारी की पहचान होगी। डीप लर्निंग सॉफ्टवेयर द्वारा आवाज से बीमारी का अंदाजा लगाना संभव हुआ। AI आवाज के स्तर, बोलने के तरीके, बैकग्राउंड साउंड को मॉनिटर करते हुए अंदाजा लगा लेता है कि किस इंसान को दिल का दौरा पड़ा होगा या पड़ रहा है। सेल्फी चित्र को देखकर बीमारी की दशा का अंदाजा लग सकता है। इंग्लैंड में निर्मित टूल से बच्चों के चेहरे के चित्रों को देखकर त्वचा और नेत्र रोग का पता लगाना संभव है।

नित नई चुनौतियां संग बुलंदियों पर

माइक्रोसॉफ्ट, गूगल और कॉर्पोरेट क्षेत्र की अनेक हस्तियों की कंप्यूटर, रोबोटिक्स और एआई की हिस्सेदारी सत्य सिद्ध हो चुकी हैं। भारत 'कृत्रिम बुद्धिमता' हब बन सकता है क्योंकि तकनीक की दुनिया में कंप्यूटर और इंटरनेट के बाद मिले तीसरे बड़े अवसर का फायदा उठाकर हम अपना कायापलट कर सकते हैं। इसकी वजह से हम ऐसी मशीनें और प्रणालियां बना लेंगे जो इंसान का काम आसान करेंगी। विश्व में साइंस, टेक्नॉलजी, इंजीनियरिंग और गणित विषयों में ग्रैजुएट पैदा करने वाले देशों में भारत सबसे अग्रणी है। एआई की बढ़ती डिमांड मेधावी और कुशल युवा को सुनहरा अवसर प्रदान करेगी। कोरोना के कारण एआई का तेजी से विकास हुआ है। इतिहास साक्षी है कि अमेरिका और यूरोप की उपलब्धियों में भारतीय युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

आभासी सहायक (वर्चुअल असिस्टेंट)

आजकल अमेजान का अलेक्सा, गूगल का गूगल असिस्टेंट, माइक्रोसॉफ्ट की कोर्टाना और एपल की सिरी नामक चार वर्चुअल असिस्टेंट का बोलबाला है। ये हमारी बातों पर अमल करते हैं। स्मार्ट स्पीकर के रूप में अमेजान की अलेक्सा ईको डिवाइस और गूगल का गूगल होम स्मार्ट उपकरण सुनते भी हैं और जवाब भी देते हैं। अलेक्सा हमारी फरमाइश पर खबरें, इंटरनेट सर्च, संगीत सुनाना व घर की बत्तियां बुझाने का काम करती है। गूगल होम दुनिया भर की खबर, अस्पतालों की जानकारी, मौसम का हाल या आसपास यातायात की जानकारी देता है। माइक्रोसॉफ्ट की कोर्टाना टाइपिंग, इंटरनेट सर्च और तमाम किस्म की गणनाएं कर देती है। कोर्टाना में हिंदी अनुवाद करने, पाठ्य (टेक्स्ट) लिखने और बोलने की क्षमता मौजूद है।

सोशल मीडिया

अनादिकाल से ही मानव क्रियाकलाप में वांछनीय परिवर्तन संपर्क से ही कर पाया है जिसे सामाजिकता कहते हैं। सोशल नेटवर्किंग में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और पत्रकारिता नामक लोकतंत्र के चार स्तंभों में सोशल मीडिया ने पांचवें स्तंभ के रूप में अपनी पहचान बनाई है। तकनीकी युग में अभिव्यक्ति के लिए सोशल मीडिया के स्वर्णिम दौर में वाट्सएप फेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस या गूगल होम, यूट्यूब गो, यूट्यूब, स्काइप, इंस्टाग्राम, टेलीग्राम, थ्रीमा, श्योर स्पॉट, लिंक्डइन जैसी सोशल साइट्स प्रमुख भुमिका अदा कर रही हैं। राजभाषा विभाग की वेबसाइट उन्नत तकनीक सामग्री से लबालब है। नई तकनीक के प्रयोग में हिंदी ब्लॉगरों की लोकप्रियता व मोबाइल प्लेटफार्म पर टाइपिंग टूल हैं।

कृषि में नवीनतम तकनीक व बेहतर इनपुट्स का योगदान

कृषि का जीडीपी में अपार योगदान है। किसानों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु सुविधानुकूल कृषि उत्पाद खरीदने, बेचने के लिए आधुनिक तकनीक और बेहतर इनपुट्स तक पहुंच सुनिश्चित की गई। खाद्य वस्तुओं हेतु आवश्यक वस्तु अधिनियम में संशोधन किया गया। कृषि सेक्टर के बुनियादी ढांचे की मजबूती हेतु एग्री–इंफ्रास्ट्रक्चर फंड से कृषि क्षेत्र में आशा की एक नई किरण जगी है। आपदा को अवसर में बदलने हेतु 'आत्मनिर्भर भारत अभियान' चलाने से आत्मनिर्भर आधुनिक भारत की एक तेज, शक्तिशाली एवं स्वयं सहायक पहचान बनी तथा स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा मिलने लगा।

किसानों की आय दोगुनी करना

आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत सूक्ष्म खाद्य उद्यमों की नवीन योजना, प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना, हर्बल खेती

जैसे अनेक उदाहरण है उसके विकास हेतु पंद्रह हजार करोड रुपए का सेट–अप बनाना, राष्ट्रीय पशुरोग नियंत्रण कार्यक्रम हेतु फंड आदि योजनाएं क्रियान्वित हैं। गांव के समीप कृषि उत्पाद (लोकल एग्रो प्रोडक्ट्स क्लस्टर्स) उपलब्ध कराने से ग्रामीणों को बहुत अच्छे अवसर मिले हैं। स्थानीय उपज से उत्पादों की पैकिंग वाली चीजें बनाने के लिए उद्योग समूह बनाए जा रहे हैं। 'मेक इन इंडिया' को रोजगार का बड़ा साधन बनाकर उसके उत्पादों को बदलते जमाने की ख्वाहिशानुसार 'मेड इन इंडिया' और 'मेड फॉर वर्ल्ड' में बदलने का प्रयास किया जा रहा है। एमएसपी पर रिकार्ड मात्रा में खरीद व खरीद केंद्रों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। किसानों को लगभग डेढ़ करोड़ क्रेडिट कार्ड बांटे गए। आत्मनिर्भर भारत पैकेज के तहत किसानों को रियायती दरों पर कर्ज बांटने से लगभग ढाई लाख किसान परिवार लाभान्वित हुए। आशा है देश में सर्वाधिक वृद्धि वाले कृषि क्षेत्र अर्थव्यवस्था का एक बड़ा, मजबूत और भरोसेमंद स्तंभ बनेगा।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि को आधुनिक बनाने और उसके विस्तार हेतु बीज से लेकर बाजार तक हर व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन आवश्यक है। नई तकनीक देश की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा, मजबूत और भरोसेमंद स्तंभ बनेगी। नित नवीन तकनीकियों के आगमनों से कोरोना कालावधि के दौरान हमने अपने टेलेंट को भरपूर परखा है। तकनीकी दृष्टि से देश बहुत सशक्त हो चुका है और आम लोगों के जीवन में ईज ऑफ लिविंग को बढ़ाने पर जोर दिया गया है। इससे इन्फ्रास्ट्रक्चर सेक्टर में बहुत सकारात्मक बदलाव लाएगा। भारत कोरोना की लड़ाई में रिएक्टिव होने के स्थान पर प्रोऐक्टिव रहा है।

हिन्दी को आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी
मेरे लिए तो दोने ही एक है।
हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना
राष्ट्रीय कार्य हिन्दी भाषा मे करें।

– महात्मा गाँधी

राजभाषा हिंदी का बदलता परिवेश

संतराम यादव
भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद (तेलंगाना)
संवादी लेखक का ई–मेलः sant.yadav@icar.gov.in & sryadav1220@gmail.com

परिचय

इस जहां में सर्वाधिक बुद्धिमान जीव होने का श्रेय मानव को प्रदत्त है। मानवीय बुद्धिपक्ष का विकास विज्ञान से सर्वाधिक हुआ है। इसने अपनी बुद्धि के बल पर प्रकृति को चुनौतियां देकर अनेकानेक रहस्यों का पता लगाया है। मानव जीवन को अधिकाधिक सुखी बनाने हेतु ज्ञान व अनुभव की विशाल परंपरा को वैज्ञानिक रूप में प्रतिष्ठित किया है। मानव की यह सहज प्रवृत्ति है कि उसे उसकी सदा चाह रहती है जो कि उसके पास नहीं है। हमारी युवाशक्ति की देश के विकास में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीयों ने सदैव ही हर क्षेत्र में देशवासियों की मांगापूर्ति के साथ पड़ोसी देशों को भी सहारा दिया है। कहते हैं कि कड़ी मेहनत से कोई भी व्यक्ति उन्नति के स्वर्णिम शिखर पर पहुंच सकता है। कोरोना काल का हमारा संघर्ष भविष्य की पीढ़ियों के मार्गदर्शन हेतु स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज हो चुका है। युवावर्ग अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करते हुए नए कौशल सीखने के लिए प्रेरित है। वे देश को आत्मनिर्भर बनाकर अपने अपने क्षेत्र के विकास में सहभागी बनकर देश की उन्नति में सहायक बन रहे हैं। भारतीयों की यह सकारात्मक सोच ही देश में एक नई क्रांति को जन्म देने के लिए सदैव अग्रसर रहेगी। आज का युग नवीन तकनीक का युग है। मनुष्य अपने हर एक पल को जीने को आतुर है। उन्नत तकनीकियां हमारे लिए वरदान साबित हुई हैं। भाषाई तकनीकों के कायाकल्प से फोन, मोबाइल, टैब, लैपटॉप या कंप्यूटर जैसे साधन पलक झपकते ही नवीनतन जानकारी उपलब्ध कराते हैं। विज्ञान और तकनीक के सहारे पूरी दुनिया के एक वैश्विक गांव में तब्दील होने से हम सात समंदर पार अपने चहेतों से रूबरू हो रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि हमारी संस्कृति में ऋषि व कृषि परंपरा का विशेष स्थान रहा है। समय बदलता गया और नित नवीन अनुसंधानों और उन्नत तकनीकियों के कृषि में पदार्पण के कारण ज्यादा फसलोत्पादन वाली किस्में अपनाई गई जिनके फलस्वरूप हमारी फसलें न केवल पल्लवित और पोषित ही हुई अपितु परिष्कृत भी हुई। कृषि क्षेत्र में आई हरित, श्वेत, पीत, पुष्प, नील आदि क्रांतियों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रिकल्चरल रिसर्च अथवा आईसीएआर) ने विशेष भूमिका अदा की है। कहते हैं कि असली भारत गांवों में बसता है। कृषि और पशुपालन ग्रामवासियों का मुख्य पेशा है। इनके निरंतर अथक प्रयासों से देश को दुग्ध उत्पादन में अग्रणी स्थान मिला है। कोविड महामारी के संकटकाल में विशाल जनसंख्या व पशुधन का भरण पोषण करने में हम सफल रहे हैं। कृषि सेक्टर एक नई आशा की किरण बनकर उभरा है। उन्नत तकनीकों, किस्मों व अनुसंधान परिणामों को शीघ्रता से किसानों तक पहुंचाने में राजभाषा हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका है। कहावत भी है कि भाषा भावों और विचारों की संवाहक होती है। हिंदी में साहित्य–सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है। अनेकानेक भाषाओं में साहित्य अनुवाद कार्य जारी है। मोबाइल, क्लाउड, पर्सनल कंप्यूटर और इंटेलिजेंस उपकरणों तक हर क्षेत्र में हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। डेटा विश्लेषण, बिग डेटा, कृत्रिम बुद्धि–मता आदि तमाम आधुनिकतम क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। ध्वनि, मशीन अनुवाद और कंप्यूटर दृष्टि जैसे क्षेत्रों में भी हिंदी मौजूद है।

परिचर्चा

भारत एक विशाल देश है। इसका अतीत हमें सदैव खुशहाल जीवन की ओर प्रेरित करता रहता है। यहां के रीति–रिवाज भिन्न हैं। क्षेत्रीयता को ध्यान में रखते हुए यहां परंपरागत त्यौहार हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं। कोई भी सैलानी आसानी से हमारी विविधता में एकता से परिचित होता रहता है। सैर–सपाटे के समय कुछ ही दूरियों पर भाषा

में बदलाव उसे स्पष्ट नजर आता है। हिंदी हमारी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, जनभाषा, संपर्कभाषा और राजभाषा हैं। जीवन में आगे बढ़ने के लिए सकारात्मक सोच जरूरी है। अपनी प्रतिभा को तराशने से ही हम अपने जीवन को बेहतर स्वरूप प्रदान कर सकते है। आज के वैज्ञानिक युग में जब हम कम से कम समय में अधिक की चाह रखते हैं तो फिर विज्ञान उससे अछूता कैसे रह सकता है। उस चाह को पूरा करने के लिए नूतन तकनीकियों के साथ हिंदी जगतमय हो चुकी है।

कंप्यूटर पर मनवांछित भाषा में कार्य करना

आजकल कंप्यूटर, लैपटाप, टैब या मोबाइल पर अनेकानेक भाषा में कार्य करना संभव है। हम अपनी मनवांछित भाषा हिंदी को एक्टीवेट करते ही विंडोज वातावरण के अनेकानेक कंप्यूटरों में आसानी से कार्य कर सकते हैं। किसी भी कंप्यूटर पर कार्य करने के लिए हमें उसकी जानकारी उसके कंट्रोल पैनल में जाने पर सिस्टम इनफार्मेशन नामक शीर्षक से मिल जाएगी। इंटरनेट व अन्य माध्यमों से कुछ ओपन सोर्स के मुफ्त साफ्टवेयर भी मिल जाते हैं। लाइनक्स नाम का अंग्रेजी, हिंदी और तमिल में नामक वेबसाइट पर डाउनलोड हेतु उपलब्ध है।

टंकण भूलिए और बोलकर करिए

विश्व में हिंदी सर्वाधिक लोगों की पहुंच में है। जमाना बदलने से हम इनस्क्रिपट, फोनेटिक, रोमन व टाइपराइटर नामक की–बोर्ड से कार्य करने में सक्षम हैं। बदलते परिवेश में हमें टाइपिंग छोड़ नवीनतम तकनीक का लाभ उठाकर कंप्यूटर पर बोलकर ही अपना कार्य पूरा करना होगा। हमारी स्पीच को कंप्यूटर पहचानकर बोली गई भाषा में तुरंत टंकित कर देता है जिससे समय की बचत और कम समय में त्रुटिरहित कार्य पूरा होता है। हम इसमें एडिट और डिलीट भी कर सकते हैं अर्थात् अंग्रेजी वाला काम हिंदी में भी संभव है।

हस्तलिपि का टाइपिंग में बदलना

गूगल इंडिक इनपुट कीबोर्ड में अपनी उंगलियों से स्क्रीन पर लिखने का फीचर का विकल्प मौजूद होने से स्टाइलस (टचस्क्रीन पर इस्तेमाल होने वाला पेन जैसा उपकरण) का इस्तेमाल कर सकते हैं। हाथ से लिखा हुआ टाइपिंग में बदल जाता है। हम इसका मनचाही भाषा में अनुवाद भी कर सकते हैं। मोबाइल में यह सुविधा पहले ही उपलब्ध है। विंडोज–10 में हमें टास्कबार पर राइट क्लिक करके 'शो टच कीबोर्ड बटन' पर क्लिक करते ही स्क्रीन पर एक कीबोर्ड उभर आएगा। इसके सबसे ऊपरी बाएं कोने में दिए कीबोर्ड के आइकन को दबाइए और फिर दिखाई देने वाले कई आईकन्स में से स्लेट जैसे दिखने वाले आइकन पर क्लिक करते ही हमारी स्क्रीन पर जो पैनल दिखाई पड़ता है, उसपर माउस, उंगली या स्टाइलस की मदद से जो भी लिखेंगे, वह पीछे खुले हुए वर्ड डाक्यूमेंट या किसी भी दूसरी फाइल में अपने आप टाइप होने लगेगा।

फांट समस्या से छुटकारा संभव

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में मानव अकेला नहीं रहा है। वह दूसरों से संचार माध्यमों से जुड़ता रहता है। हिंदी सॉफ्टवेयरों से हमारा काम आसान अवश्य हुआ था परंतु नित नवीन फांट समस्याओं से भी जूझना पड़ता था। अब कंप्यूटरों में विश्वभर में मान्यता प्राप्त बहुप्रचलित मंगल फांट के साथ–साथ अपराजिता, उत्साह, कोकिला, निर्मला, एरियल यूनिकोड एमएस सहित लगभग डेढ सौ से भी अधिक यूनिकोड फांट प्रयोगकर्ताओं हेतु उपलब्ध हैं। पुराने फांट को यूनिकोड में बदलने हेतु टीबीआईएल सहित अनेक फांट परिवर्तक उपलब्ध हैं। इच्छित की–बोर्ड डाउनलोड भी कर सकते हैं।

पसंदीदा भाषा में ब्लॉग, वेब पेज बनाना हुआ आसान

अब हम पसंदीदा भाषा में ब्लॉग व वेब पेज बना सकते हैं। कुछ वेबसाइटों पर अपना ईमेल देकर पिक्चर, गाने, स्वयं के गीत या अपना जीवन परिचय आदि जनता–जनार्दन हेतु उपलब्ध करा सकते हैं। इंटरनेट पर साहित्य, भाषा या व्याकरण का अंबार है। राजभाषा विभाग की वेबसाइट गागर में सागर का काम कर रही है।

माइक्रोसॉफ्ट में अनुवाद व स्पैल चैक सुविधा उपलब्ध

विंडोज 10 में एमएस वर्ड में सीधे अंग्रेजी से हिंदी व हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद, हिंदी में स्पैल चैक व एडिट करना संभव हो गया है।

आपकी आवाज में ही ऑडियो ट्रांसलेशन सुविधा उपलब्ध

बदलते वख्त की बदलती तस्वीरें अब हमारे समक्ष शीघ्र पेश की जा रही हैं। अब 'गूगल ट्रांसलेशन टूल' आया है जो हमारी आवाज में ही ऑडियो ट्रांसलेट भी करेगा और पढ़कर भी सुना देगा। इस तरह किसी बात को दूसरी भाषा में समझाने या सुनने के लिए उसे टेक्स्ट फॉरमैट में लिखना नहीं पड़ेगा। यह पहला सिस्टम है जो बोलने वाले की आवाज में ही अनुवादित ऑडियो सुनाएगा। इस तरह एक्सपीरियंस असली बातचीत के बहुत करीब होगा और अलग से लंबी प्रक्रिया से नहीं गुजरना होगा। अब एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में बिना बीच में किसी खास बदलाव के अनुवाद किया जा सकेगा। इसके लिए यूजर्स को अपनी बात लिखकर अनुवाद नहीं करनी होगी। साथ ही यह यूजर की आवाज में ही आउटपुट भी देगा, मानो बोलने वाला खुद ही दूसरी भाषा में बात कर रहा हो। इससे यह जाहिर होता है कि नूतन तकनीक का लाभ लेकर हम मनवांछित फल पा सकेंगे। हींग लगे न फिटकरी, रंग भी चौखा आय।

स्क्रीनशॉट टेक्स्ट ट्रांसलेशन

अंग्रेजी वेबसाइट 9 to 5 Google ने अपनी रिपोर्ट में जानकारी दी थी कि गूगल लेंस में नया अपडेट आ रहा है, जिसकी मदद से स्क्रीन शॉट लेने पर ऊपर की तरफ गूगल लेंस का आइकन पॉपअप होगा, जिसपर क्लिक करते ही लेंस अपना काम करना शुरू कर देगा। इसके लिए किसी टेक्स्ट को सिलेस्ट करने की जरूरत नहीं होगी। स्क्रीनशॉट पर टेक्स्ट ट्रांसलेशन के अलावा स्क्रीन शॉट्स पर लिखे टैक्स्ट को कॉपी भी किया जा सकता है, जिसे आप ऑफलाइन में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। साथ ही इस टैक्स्ट को सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म फेसबुक और ट्विटर पर शेयर किया जा सकेगा। इसके लिए यूजर्स लैंग्वेज को ऑफलाइन इस्तेमाल के लिए डाउनलोड कर सकता है, जो स्क्रीनशॉट्स पर लिखे टैक्स्ट को ट्रांसलेट करने में मदद करेगा।

तकनीकी हस्तांतरण हेतु प्रभावकारी सरकारी व गैर सरकारी प्रयास

तकनीकी हस्तांतरण में भारत सरकार के सी–डैक, पुणे की ओर से हिंदी में किए गए कार्यों को भुलाया नहीं जा सकता। भविष्य में हमारे सामने अनेकानेक सुविधाओं से परिपूर्ण कंप्यूटर उपलब्ध होंगे जिनमें भाषा की समस्या ही नहीं आएगी। हिंदी में कहीं से भी प्राप्त सामग्री को यदि हम अपने कंप्यूटर पर देख नहीं पाते हैं तो ऐसी परिस्थिति में हमें view.encoding.utf8 करके उसे देखने या पढ़ने की कोशिश करनी चाहिए। फिर भी नहीं आए तो internet explorer में www.opera.com पर अन्य ब्राउजर बदलकर देखना चाहिए। ऐसे ही www.ildc.in (www.bhashaindia.com (www.baraha.com (www.pratibhaas.blogspot.com आदि पर भी अनेक उपकरण उपलब्ध हैं। इसलिए समय की नजाकत को पहचानते हुए हमें स्वयं को नई तकनीक से जोड़कर निरंतर प्रयास करते रहना होगा और अगली पीढ़ी के लिए बहुत कुछ संजोकर छोड़ जाने की कोशिश करनी होगी।

वैश्विक स्तर पर हिंदी की बढ़ती स्वीकार्यता

हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह–चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाडी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं। हिंदी विश्व के विश्वविद्यालयों में अध्ययन अध्यापन में भागीदार है। वैश्विक स्तर पर हिंदी पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी रचनाकारों की सृजनात्मकता से हम निरंतर परिचित हो रहे हैं। हिंदी शब्दकोश और विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायक बन रहे हैं। हिंदी भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाडी देशों, मध्य एशियाई देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुडाव तथा विचार–विनिमय का सबल माध्यम है। हिंदी पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद तथा सुरीनाम जैसे देशों में संपर्क भाषा की भूमिका अदा कर रही है। भारतीय समाचार पत्रों संग विश्व स्तर पर बीबीसी का समाचार पत्र हिंदी में ऑनलाइन उपलब्ध है। माइक्रोसॉफ्ट का हिंदी बाजार नित नवीन उपलब्धियां हासिल कर रहा है। गूगल का सर्च इंजन

हिंदी में खोजकर इच्छित सामग्री परोस रहा है। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियां निरंतर हिंदी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने सी–डेक, पूणे के सहयोग से मंत्र अनुवाद सॉफ्टवेयर, स्पीच टू टेक्सट और टेक्सट टू स्पीच सॉफ्टवेयर तथा प्रबोध, प्रवीण व प्राज्ञ स्तर की हिंदी सीखने के लिए लीला सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराया है।

आभासी सहायक (वर्चुअल असिस्टेंट) और हिंदी

कंप्यूटर, लैपटॉप, टैब व मोबाइल की दुनिया में अमेजान का अलेक्सा, गूगल का गूगल असिस्टेंट, माइक्रोसॉफ्ट की कोर्टाना और एपल की सिरी नामक चार वर्चुअल असिस्टेंट का बोलबाला है। इनके लिए हिंदी अब अनजान नहीं रही अपितु ये भी हिंदी समझने लगे हैं। स्मार्ट स्पीकर के रूप में अमेजान की अलेक्सा ईको डिवाइस और गूगल का गूगल होम स्मार्ट उपकरण हिंदी में न केवल सुनने ही लगे हैं अपितु जवाब भी देने लग गए हैं। अलेक्सा हमारी फरमाइश पर खबरें, इंटरनेट सर्च व संगीत सुना सकती है तो हमारे घर की बत्तियां बुझाने का काम भी कर सकती है। वीडियो कॉलिंग हेतु इसके डिस्प्ले वाले वर्जन(संस्करण) का इस्तेमाल किया जा सकता है। गूगल होम से हिंदी में बातचीत कीजिए तो वह हमें दुनिया जहान की जानकारियां लाकर दे देगा। हिंदी भाषा में हमारे आसपास के अस्पतालों की जानकारी, मौसम का हाल या हमारे एरिया के ट्रैफिक जाम की जानकारी तुरंत ही उपलब्ध हो जाती है। विंडोज–10 में उपलब्ध माइक्रोसॉफ्ट की कोर्टाना भी एक एप्लिकेशन के रूप में हमारी मदद करती है। यह हिंदी में टाइपिंग, इंटरनेट सर्च और तमाम किस्म की गणनाएं कर देती है। कोर्टाना में हिंदी अनुवाद करने, पाठ्य (टेक्स्ट) लिखने और बोलने की क्षमता मौजूद है। यह स्मार्ट स्पीकर और डिस्प्ले स्क्रीन में मिलता है। संवाद का तरीका सभी में लगभग एक जैसा है। इनमें हम बोलकर निर्देश देते हैं या पूछते हैं तो वे हमारी बातों पर अमल करते हैं।

निष्कर्ष

जैसे आशा की नई किरण सदैव अंधियारे को चीरकर उजाले के रूप में आती है। उसी तरह भारतीय भी जिंदगी और प्रकृति के थपेड़ों को सहते हुए नित नवीन खोज में संलग्न रहते हैं। कोरोना वैक्सीन का उत्पादन इसका जीता जागता प्रमाण है। हमने कंप्यूटरीकरण का श्रीगणेश व परिवर्तन देखा है। देश में कंप्यूटर का आरंभ अंग्रेजीमय था परंतु अब पसंदीदा भाषा में कार्य करना और मनवांछित फल पाना संभव हुआ है। अब आसानी से हमारी भाषा में सूचना प्राप्त होती हैं। 'स्पेल चैकर' द्वारा त्रुटियां ठीक कर लेते हैं। ऑन लाइन ई–शब्दकोश, अनुवाद, सार्टिंग सुविधा का लाभ उठा सकते हैं। एक से अधिक स्थानों पर भेजे जाने वाले पत्रों हेतु मेलमर्ज का फ़ायदा ले सकते हैं। विंडोज़ प्लेटफार्म पर कार्य करना आसान हुआ है। इंटरनेट में ई–मेल और वेबपेज़ बनाने हेतु देवनागरी के यूनिकोड फांट की उपलब्धता ही इसकी समृधि का प्रतीक है। नित नवीन तकनीकियों का आगमन और उनमें हिंदी की उपलब्धता हमारे लिए वरदान साबित होती जा रही है। फेसबुक, ट्विटर, गूगल प्लस, यूट्यूब गो, यूट्यूब, टिकटॉक, स्काइप, इंस्टाग्राम, टेलीग्राम, थ्रीमा, श्योर स्पॉट, लिंक्डइन जैसी सोशल साइट्स पर जाइए और मन माफिक फल पाइए। पावर प्वाइंट प्रेजेंटेशन की अन्य भाषाओं में अनुवाद सुविधा उपलब्ध है। राजभाषा विभाग की वेबसाइट से लीला हिंदी प्रवाह, हिंदी स्वयं शिक्षण(लीला), मोबाइल ऐप, कंठस्थ व मशीन अनुवाद, ई–महाशब्दकोश, श्रुतलेखन राजभाषा (स्पीच से टेक्सट), प्रवाचक राजभाषा (टेक्सट से स्पीच) और हिंदी फांट कनवर्टर का लाभ लीजिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अब हिंदी भाषा में संवाद का तरीका आसानी से अपनाया जा रहा है। संपर्क स्थापना हेतु हस्तलिखित पत्राचार का स्थान अब मोबाइल, ईमेल या सोशल मीडिया के अनेकानेक प्लेटफार्मों ने ले लिया है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है और नवीनतम तकनीक की हिंदी में उपलब्धता निरंतर बढ़ रही है। शेख मुहम्मद इक़बाल के साथ हमारी एक ही आवाज़ है 'हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा।'

राष्ट्रीयता का भाषा और साहित्य के साथ बहुत ही घनिष्ठ और गहरा संबंध है।

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

आत्मनिर्भर भारत में गोवंशीय आधारित शून्य लागत प्राकृतिक खेती

राघवेन्द्र कुमार, संगीता श्रीवास्तव एवं आँचल सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेल: raghwendkumar@gmail.com

लगातार कृषि उपयोग से उपजाऊ भूमि की उपज क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कृषि रसायनों के प्रयोग से खेती–किसानी में अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। रासायनिक खाद से उपजे अनाज से हमारे शरीर के अंदर कहीं न कहीं धीमा जहर भी पहुंच रहा है, इससे लोग तरह–तरह की बीमारियों की चपेट में आ रहे हैं। अगर स्वस्थ जीवन की ओर उन्मुख होना है, तो रसायन मुक्त शून्य लागत (जीरो बजट) प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जो पारंपरिक भारतीय कृषि प्रथाओं पर आधारित है, इसमें रासायनिक खाद के स्थान पर गोबर, गौमूत्र, चने के बेसन, गुड़ और मिट्टी से बनी खाद का इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि से खेती का एक विशेष उद्देश्य किसानों को कर्ज के जाल से बाहर निकालना, महंगे बीज, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की खरीद के चंगुल से मुक्त कराना होता है। प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग कर खेती–वाड़ी से किसान में आत्मनिर्भरता आती है। जीरो बजट खेती में खेतों की सिंचाई, मड़ाई और जुताई का काम गोवंश की मदद से किया जाता है, जिसकी वजह से किसी भी प्रकार के डीजल या ईंधन वाले वाहनों की जरूरत नहीं होती। कम लगात लगने में खेती करने पर किसानों की फसलों पर अधिक मुनाफा प्राप्त होता है।

शून्य लागत प्राकृतिक खेती भारत में किसानों के द्वारा विकसित रसायन मुक्त कृषि का एक रूप है जो सिद्धांतः पारंपरिक भारतीय प्रथाओं पर आधारित है। इस विधि में फसल में फसल–चक्र, हरी जैविक खाद, गोबर की सड़ी खाद, जैविक नाशी कीट नियंत्रक और यांत्रिक खेती शामिल होती हैं। इसके अंतर्गत देशी बीज एवं पादप सुरक्षा में उपयोग होने वाले रसायनों के साथ–साथ अन्य सामग्रियों को खरीदने की आवश्यकता नहीं होती। किसान शून्य लागत या कम लागत से स्थानीय किस्मों को उगाकर खेती कर सकते हैं।

शून्य बजट खेती के मुख्य आधार

• **जीवामृतः** यह मिट्टी में केंचुआ और सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ावा देने में मदद करती है। इसमें एरोबिक और एनारोबिक दोनों तरह के रोगाणुओं का गुणन किया जाता है। जीवामृत संक्रमण के पहले तीन वर्षों के लिए आवश्यक है, ताकि मिट्टी के बायोटा को दोबारा कृषि योग्य बनाया जा सके। एक एकड़ भूमि के उपचार के लिए 200 लीटर जीवामृत की मात्रा निर्धारित की जाती हैं।

• **बीजामृतः** बीज, अंकुर और रोपण सामग्री के लिए बीजामृत उपयोग किया जाता है। इसे बीज के कोटिंग के रूप में प्रयोग किया जाता है और उपचारित बीजों से खेत में बुवाई की जाती है। बीजामृत को गाय का गोबर, गो–मूत्र, चूना तथा मिट्टी से तैयार किया जाता है। यह पौधों को रोग पैदा करने वाले रोगजनकों के हमले से बचाता है।

• **पलवार (मल्चिंग):** कृषि अवशेष जैसे सूखे पत्तियाँ, डंठल इत्यादि (स्ट्रॉ मल्च) खेती के दौरान शीर्ष मिट्टी में फैला देने की परम्परा से मृदा जल प्रतिधारण तथा सूक्ष्मजीवी वातन को बढ़ावा मिलता है। स्ट्रॉ मल्च, एक जीवित सूखे बायोमास

मल्च के स्वरूप में खेत में फसलों के लिए आवश्यक होता है।

• **वापसाः** हरित क्रांति की खेती में सिंचाई पर निर्भरता का सामना करना पड़ता है। वापसा एक ऐसी स्थिति है जब मिट्टी में हवा और पानी के अणु दोनों मौजूद होते हैं, और वह सिंचाई को कम करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित करता है। इससे प्राकृतिक दशा में खेती में सिंचाई की आवश्यकता में महत्वपूर्ण कमी आती है और जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। कंटूर और बंड्स (अस्थायी जल धारण संरचनाएँ) बरसात के पानी को संरक्षित करने के लिए लाभदायक है। हरित खाद के उपयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जाता है।

जीवामृत, बीजामृत तथा अन्य उत्पाद से प्राकृतिक खेती

जैविक खेती ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन और मिट्टी में कार्बन डाइऑक्साइड के अवषोषण को कम करने में अहम भूमिका निभाती है, क्योंकि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के प्रमुख कारक (नाइट्रोजन) तत्वों का प्रयोग जैविक खेती में बिल्कुल नहीं होता है। इसके अलावा विभिन्न फसलों पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों और गैसों के उत्सर्जन के कारण ग्लोबल वार्मिंग से निपटने के लिये जीरो बजट प्राकृतिक खेती को भी देशव्यापी बनाने की कोशिश की जा रही हैं क्योकि यह बिना रासायनिक खाद और कीटनाशकों के इस्तेमाल की जाने वाली खेती है। इस विधि में देशी परंपरागत बीजों का उपयोग करना लाभकारी होता है और इसमें घरेलू संसाधनों द्वारा विकसित प्राकृतिक जैविक खाद का इस्तेमाल किया जाता है, जिससे किसानों को फसल उगाने में कम लागत खर्चा आता है और कम खर्च लगने के कारण ही उस फसल पर किसानों को अधिक लाभ मिलता है।

गोवंश की प्रधानता

जीरो बजट प्राकृतिक खेती के लिए देसी गाय इसका मुख्य घटक है क्योंकि देसी गाय के 1 ग्राम गोबर में लगभग 300 से 500 करोड़ लाभकारी सूक्ष्मजीव होते हैं, इसलिए इस विधि में मुख्य रूप से भूमि में मौजूद सूक्ष्मजीवो के साथ देसी गाय के गोबर और गोमूत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक रिपोर्ट के अनुसार 30 एकड़ भूमि के लिए मात्र एक गाय की आवश्यकता होती है। वह गाय एक स्थानीय भारतीय नस्ल की होनी चाहिए न कि आयातित जर्सी या होल्स्टीन। यह विधि ग्लोबल वार्मिंग और वायुमंडल में आने वाले बदलाव का मुकाबला करने तथा उसे रोकने में सक्षम है। इस तकनीक का इस्तेमाल किसानों की आय को दोगुना करता है जिससे किसान कर्ज से भी मुक्त रहता है और यह विधि पर्यावरण को अनुकूल बनाने के लिए शक्तिशाली तरीको में से एक है।

यह सर्वविदित है कि प्राकृतिक खेती का मुख्य आधार देसी गाय है। गोबर, गौमूत्र और कुछ घरेलू उत्पादों को मिलाकर बनने वाले जीवामृत और घनजीवामृत जामन बीजामृत में मिट्टी को उपजाऊ बनाने और फसल को पोषण देने की पर्याप्त क्षमता होती है। उत्तर प्रदेश के यषस्वी मुख्यमंत्री श्री योगी अदित्यनाथ जी का गौ प्रेम जग जाहिर है। प्रदेश में 5 लाख से अधिक गोवंश की जियो टैगिंग की गयी है तो 4.76 लाख से अधिक निराश्रित गोवंश की देखभाल जा रही है। निराश्रित गायों के पालन–पोषण के लिए गोपालकों को प्रति माह प्रति गाय 900 रुपए की सहायता राशि प्रदान करने का निर्णय लिया गया है।

मृदा पोषण के लिए लाभकारी पंचगव्य

पंचगव्य का अर्थ है पंचगव्य मतलब गोमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी के मिश्रण से बना हुआ पदार्थ। गन्ने का रस, नारियल पानी तथा केला का उपयोग किण्वन को तेज करने और घोल के गंध को कम करने के लिए किया जाता है। यह सभी प्रकार के पौधों के लिए एक समान प्रभावी जैविक खाद है जो पारंपरिक देशी बीज से तैयार पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायता करता है और उनकी प्रतिरक्षा क्षमता को बढ़ाता है। पंचगव्य का निर्माण प्रायः देसी गाय के पांच

उत्पादों से होता है क्योंकि देशी गाय के उत्पादों में पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व पर्याप्त व सन्तुलित मात्रा में पाये जाते हैं। इसके कारणवश इस विधि से खेती को आध्यात्मिक कृषि भी कहा जाता है। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने एक निर्णय में कहा है कि वैज्ञानिको का मानना है कि गाय ही एकमात्र पशु है जो ऑक्सीजन लेती और छोड़ती है और गाय के दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोबर से तैयार पंचगव्य कई रोगों में लाभकारी होते है।

पंचगव्य के फायदे

- भूमि में सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी,
- भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार,
- फसल उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता में वृद्धि,
- भूमि में हवा व नमी को बनाये रखना,
- फसल में रोग व कीट का प्रभाव कम करना

पंचगव्य के प्रभाव

- पंचगव्य का छिड़काव करने से पौधों के पत्ते आकार में हमेशा बड़े एवं अधिक विकसित होते हैं तथा यह प्रकाश संष्लेषण की प्रक्रिया को तेज करता है जिससे पौधे की जैविक क्षमता बढ़ जाती हैं।
- इसके छिड़काव से तना अधिक विकसित और मजबूत होता है जिससे परिपक्वता के समय पौधे पर जब फल लगते हैं तब पौधा फलों का वजन सहने में अधिकतम सक्षम होता है और शाखाएं भी अधिक विकसित तथा मजबूत होती हैं।
- जड़ें अधिक विकसित तथा घनी होती हैं। जड़ें मृदा में गहरी परतों में फैलकर वृद्धि करती हैं तथा आवश्यक पोषक तत्वों एवं पानी को अधिकतम मात्रा में अवषोषित कर लेती हैं।
- पंचगव्य के प्रयोग से फसल की अच्छी उपज मिलती है। यह वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी एक समान फसल की पैदावार देने में सहायता करता है। यह न केवल फसल की उपज को बढ़ाता है बल्कि अनाज, फल, फूल व सब्जियों का उत्पादन एक बेहतर रंग, स्वाद, पौष्टिकता तथा विषाक्त अवशेषों के बिना करता है जिससे फसल की बाजार में अधिक कीमत मिलती है। यह बहुत सस्ता एवं अधिक प्रभावकारी है जिससे कृषि में कम लागत पर अधिक लाभ मिलता है।

वर्मीकम्पोस्ट प्राकृतिक खेती का आधार

मित्र केंचुआ, मिट्टी की उर्वरता शक्ति के साथ मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों की दीर्घकालिक स्थिरता बनाए रखने में मदद करते हैं। पहले यह मिट्टी में भरपूर मात्रा में पाये जाते थे, किन्तु रासायनिक खाद के बढ़ते इस्तेमाल के कारण जमीन में इनकी संख्या घटती जा रही है। वर्मीकल्चर से जैविक खाद बनाने की विधि जो प्राय गोबर तथा कार्बनिक अवशेष से होता है और उत्पादित खाद को

वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के प्रमुख फायदे निम्नलिखित हैं,

- केंचुओं द्वारा भूमि की उर्वरता, पी–एच मान, भौतिक दशा, जैविक पदार्थ और लाभदायक जीवाणुओं में वृद्धि एवं सुधार,
- इसकी भौतिक दशा में सुधार से मृदा जल अवशोषण एवं जलधारण क्षमता में वृद्धि,
- वर्मीकम्पोस्ट क्षारीय मदृा का क्षारीयपन एवं अम्लीय मृदा की अम्लता को कम करने में उपयोगी

गोवंशीय कृषि उत्पाद की लोकप्रियता

खेत में उपयोग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की वृद्धि के साथ–साथ जैविक गतिविधियों का विस्तार होता है। जीवामृत का उपयोग सिंचाई के साथ या एक से दो बार खेत में छिड़काव करके किया जा सकता है, जबकि बीजामृत का इस्तेमाल बीजों को उपचारित करने में किया जाता है।

- एक अध्ययन के अनुसार एक देसी गाय के पालने से किसान 30 एकड़ जमीन पर जीरो बजट प्राकृतिक खेती कर सकता है। इससे इंसानों को बेहतर अनाज और सब्जियां मिलेगी, बल्कि खाद और कीटनाशकों के रूप में खर्च होने वाले किसानों के हजारों रुपए भी बचेंगे। यह मॉडल हरियाणा कृषि विश्व विद्यालय से प्रतिपादित किया गया है। अधिक उत्पादन के लालच से किसान खेतों में बहुत ज्यादा कीटनाशकों, रासायनिक खादों का उपयोग कर रहे हैं, जिनके अत्यधिक प्रयोग से न केवल भूमि बंजर हो रही है बल्कि हमारे खाद्यान्न भी जहरीले होते जा रहे हैं।
- किसान जो रासायनिक खाद और कीटनाशक खेतों में डालने के लिए इस्तेमाल करते हैं वे अनाजों और सब्जियों के जरिए शरीर में पहुँचते हैं जिससे कैंसर, त्वचा रोग, दिल संबंधी बीमारी इंसानों में जन्म लेती है। ऐसे में गाय आधारित जीरो बजट प्राकृतिक खेती से न केवल किसानों को आर्थिक रूप से उभरने में मदद मिलेगी बल्कि इंसानों के गिरते हुए स्वास्थ्य को भी ठीक करने में यह अहम भूमिका निभाती है।
- देसी गाय का मूत्र 10 लीटर, नीम के पत्ते 5 किलोग्राम, नीम, आम, अमरूद, अरंडी, पपीते के पत्तों की चटनी दो–दो किलोग्राम, वनस्पतियों के पत्तों की चटनी को गोमूत्र डालकर धीमी आंच पर उबाल आने तक गर्म किया जाता है, इसके बाद 48 घंटे के लिए ठंडा होने के लिए रख देते है और ढाई से तीन लीटर घोल को 100 लीटर पानी में मिला कर एक एकड़ फसल पर इसका उपयोग किया जाता है।
- नीम के पत्ते 5 किलोग्राम, देसी गाय का मूत्र 20 लीटर, तंबाकू पाउडर 500 ग्राम, तीखी हरी मिर्च की चटनी 500 ग्राम, देसी लहसुन की चटनी 500 ग्राम मिश्रण को मिलाकर धीमी आंच पर उबाल 48 घंटे के लिए रख दिया जाता है और इसे डंडी से सुबह–शाम मिलाया जाता है फिर 6 से 8 लीटर घोल लेकर 200 लीटर पानी में मिलाकर, एक एकड़ फसल पर इसका छिड़काव किया जाता है जो कि रस चूसने वाले कीटों, छोटी इल्लियों और छोटी सुंडियों को समाप्त करने में उपयोगी है।
- 100 किलोग्राम बीज के लिए 20 लीटर पानी में 5 किलो देसी गाय का गोबर, 5 लीटर गौ मूत्र, ढाई सौ ग्राम चूना और खेत की मिट्टी लेकर मिश्रण बनाया जाता है, बाद में इसे एक टंकी में डाल कर अच्छे से मिला लेते हैं। टंकी को बोरी से ढककर छांव में रख देते हैं और सुबह शाम घोल को दो–दो मिनट के लिए मिलाया जाता है और 24 घंटे के बाद इस गोल से बीजों का उपचार कर किसान बुवाई कर सकते हैं।
- एक एकड़ जमीन के लिए जैविक खाद जीवामृत बनाने के लिए 200 लीटर पानी में 10 किलो देसी गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर मूत्र, 1 से 1.5 किलो गुड़, 1 से 1.5 किलो बेसन, थोड़ी सी खेत की मिट्टी मिलाकर इसका एक घोल बनाया जाता है। इस घोल को एक टंकी में रखकर दो–तीन मिनट तक मिलाया जाता है और उसके बाद इसे बोरी से ढक कर 72 घंटो के लिए इसे छांव में रख दिया जाता है।
- रबी मक्का में प्रति एकड़ 8 किलो मक्के के बीज, 4 किलो चना का बीज और 1 किलो धनिया का बीज

लेकर बीजामृत से संस्कारित कर लगाए जाते हैं। वर्षा ऋतु में प्रति एकड़ 8 किलो मक्का, 6 किलो लोबिया, 1 किलो धनिया और 2 किलो मूंग का बीज लेकर बीजामृत से संस्कारित कर लगाया जाता है। लोबिया और मूंग मक्के को नाइट्रोजन देता है, पत्तों के झड़ने से आच्छादन होता है और पत्तों के विघटन के बाद मक्के के जड़ों को पोषक तत्व उपलब्ध होता है। मक्का और लोबिया की जड़ों के पास सहजीवी और असहजीवी रोगाणु जमा होते हैं। धनिया की जड़ें मिट्टी में एक स्त्राव स्त्रावित करती हैं, जिसमें ऐसी संजीवनी होती है जिसका लाभ मक्का को मिलता है और मक्के का स्वाद बढ़ता है।

- गेहूँ पर आने वाले रस चूसक कीटों को सरसों अपनी तरफ खींच लेता है और गेहूँ बचा रहता है। चना, धनिया, सरसों, गाजर इत्यादि के फूलों पर बड़ी मात्रा में मधुमक्खियाँ आकर्षित होती है और गेहूँ अन्य फसलों पर पराग सिंचन करता है। नाली में दिया हुआ पानी और जीवामृत एक साथ सभी फसलों को मिलता है, जिससे गेहूँ गिरता नहीं और बालियाँ बड़ी आती हैं, दाने सबपर भर जाते हैं एवं दानों पर भार भी ज्यादा होता है। धान की पौधशाला से पौधे उखाड़ कर जड़ों को बीजामृत में डुबाकर कर रोपाई करना होता है। पानी भरने के बाद धान की जड़ों के पास ग्लोमस प्रकार के फफूंद हवा से नाइट्रोजन लेकर जड़ों को उपलब्ध करता है और उसके बाद जीवामृत छिड़कने से बीमारियाँ नियंत्रित हो जाती हैं।
- गन्ना में बीजामृत से उपचारित करके एक आँख के टुकड़े खेत में लगा दिए जाते हैं। बीच में लोबिया, मिर्च, गेंदा, प्याज या चना की सहफसल लगाई जाती है। बाद में पानी के साथ 5–10 लीटर जीवामृत का छिड़काव की जाती है। गन्ना लगाने के बाद 200 लीटर जीवामृत प्रति एकड़ की दर से प्रत्येक माह में एक या दो बार सिंचाई के साथ प्रवाहित किया जाता है। गन्ने के साथ दलहन और मिर्च एवं अन्य फसलें प्राकृतिक अवस्था में नाइट्रोजन प्रदान करती हैं।

गोबर (ग्लेवेनाइजिंग आर्गेनिक बायो एयो रिसोर्स) धन योजना से प्राकृतिक खेती में फायदा कितना मिलता है?

संभावनाओं के द्वार

जीरो बजट प्राकृतिक खेती किसान की आय दोगुनी करने का सबसे सस्ता माध्यम है। उत्तर प्रदेश में निराश्रित गोवंश आश्रयस्थलों को गौ आधारित प्राकृतिक कृषि एवं अन्य गौ उत्पादों के प्रशिक्षण केंद्र में विकसित करने की योजना बनाई गयी है। करनाल से गोबर धन योजना की शुरुआत की गई है जिसके अंतर्गत गोबर और उसके ठोस अवशिष्ट को बायोगैस, उपयोगी खाद इत्यादि बड़े पैमाने में उत्पादित किया जाता है। इससे गाँव में स्वच्छता तथा किसानों में आय में बढ़ोतरी होती हैं।

पृथ्वी, मानव व पर्यावरण के बीच मधुर, परस्पर लाभदायी तथा दीर्घायु संबंधों की अवधारणा को आधार बनाकर आज की जैविक खेती की परिकल्पना की गई है, समय के बदलते रूवरूप के साथ प्राकृतिक जैविक खेती अपने प्रारंभिक काल के मुकाबले अब और अधिक जटिल हो गई है। विश्व समुदाय में खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने के साथ–साथ पर्यावरण को स्वस्थ रखने हेतु भी जागरूकता बढ़ी है। खेती के प्रणेताओं का तो पूरा विश्वास है कि इस विधि से न केवल स्वास्थ्य, पर्यावरण, अधिक उत्पादकता तथा प्रदूषण मुक्त खाद्य मिलेगा, बल्कि इसके द्वारा संपूर्ण ग्रामीण विकास की एक नई शुरुआत भी होगी। केंद्रीय वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण जी ने किसानों की आर्थिक हालत में सुधार के लिए कई कदम उठाए जाने का ऐलान किया था, जिसमें जीरो बजट खेती मुख्य बिन्दु था। इसके जरिए कृषि के पारंपरिक और मूलभूत तरीके

पर लौटने पर जोर दिया जा रहा है। जीरो बजट फार्मिंग में किसान जो भी फसल उगाएं उसमें उर्वरके, कीटनाशकों के बजाय किसान प्राकृतिक खेती करेंगे।

सोने पे सुहागा यह है कि इस विधि से जो भी फसल उगाई जाती है वह सेहत के लिए काफी लाभदायक होती है, क्योंकि इसे उगाने के लिए के लिए किसी भी तरह के रासायनिक पदार्थों का इस्तेमाल नहीं किया जाता। इस तकनीक से खेती करने में फसलों की पैदावर कम होती हो, ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। प्राकृतिक खेती से भरपूर फायदा लेने के लिए किसानों को इसे दीर्घ कालिक अवधि के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत आत्मसात करना चाहिए।

भारतीय भाषएँ नदियाँ और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रुप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम नही चल सकता।

–रवीन्द्रनाथ टैगोर

कृषि क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) की बढ़ती उपयोगिता

ओम प्रकाश[1], कामिनी सिंह[1], पल्लवी यादव[2] एवं ब्रह्म प्रकाश[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
[2]एस.एन. सेफ क्रॉप साइन्सेज, इंदौर (मध्य प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेलः dromprakashiisrlucknow@gmail.com

सम्पूर्ण विश्व में बढ़ती जनसख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लक्ष्य से कृषि उत्पादकता की बढ़ाने की दिशा में नयी–नयी तकनीकों का उपयोग हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या में दो अरब लोगों की वृद्धि होने की संभावना है जिनके पोषण के लिए खाद्य उत्पादकता में लगभग 60 प्रतिशत तक वृद्धि करना आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमता तथा मशीन लर्निंग की सहायता से इन आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। वास्तव में कृत्रिम बुद्धिमता, मशीन लर्निंग तथा आईओटी एसेंसर अल्गोरिदम के लिए रियल टाइम आंकड़े प्रदान करते हैं। इससे न केवल कृषि उत्पादकता को बढ़ाने में सहायता मिलेगी, अपितु इनके प्रयोग से हम कृषि उत्पादों की उत्पादन लागत में भी काफी हद तक कमी ला सकते हैं। मौसम, धूप, वर्षा, पशु–पक्षी, कीटों व रोगजनकों के प्रवासी पैटर्न, उर्वरकों व कीटनाशी रसायनों का उपयोग, सिंचाई चक्र सभी उत्पादकता को प्रभावित करते हैं, जिसके बारे में सटीक जानकारी कृत्रिम बुद्धिमता की सहायता से प्राप्त की जा सकती है।

प्राचीन काल से ही यांत्रिक या "औपचारिक" तर्क का अध्ययन गणितज्ञों के साथ शुरू हो चुका था। गणितीय तर्क के अध्ययन द्वारा "एलन ट्यूरिंग" नामक कंप्यूटर वैज्ञानिक ने "कंप्यूटर सिद्धान्त" को जन्म दिया जिसके अनुसार मशीन, "0" (शून्य) और "1" (एक) जैसे सरल चिह्न, को जोड़–तोड़ के कोई भी बोधगम्य गणना जी जा सकती है। यध्यपि जॉन मैकार्थी को कृत्रिम बुद्धिमता का जनक माना जाता है जो 1950 के दशक में ही आरंभ हो चुका था, परंतु 1970 के दशक में इसके महत्व को नई पहचान मिली। जापान देश का इस परियोजना को आगे बढ़ाने में अहम योगदान रहा है जिसने वर्ष 1981 में 'फिफ्थ जेनरेशन' नामक योजना का श्री गणेश किया। 'फिफ्थ जनरेशन या पाँचवी पीढ़ी की अवधि 1984–1990 तक मानी गई है। इस पीढ़ी में वर्तमान के कम्प्यूटरों को और भविष्य में आने वाले कम्प्यूटरों को सम्मिलित किया गया है। इससे कम्प्यूटर मनुष्यों की भांति कार्य करते हैं। वे सी, सी++, तथा जावा जैसी उच्च–स्तरीय भाषा का उपयोग करते हैं। इसमें सुपर–कंप्यूटर के विकास के लिए दस वर्षीय कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुति के बाद अन्य देशों ने भी इस ओर ध्यान दिया। ब्रिटिश सरकार ने भी 'एल्वी' 'नामक एक परियोजना बनाई थी, जो सूचना प्रौद्योगिकी का एक अनुसंधान कार्यक्रम था जो वर्ष 1984 से 1990 के मध्य तक चला। यह कार्यक्रम जापानी पांचवी जेनरेशन परियोजना की प्रतिक्रिया थी, जिसका उद्देश्य वृहद स्तर पर समानांतर कंप्यूटिंग/प्रसंस्करण का उपयोग करके एक कंप्यूटर बनाना था। कार्यक्रम रोबोटिक्स जैसी किसी विशिष्ट तकनीक पर केंद्रित नहीं था, बल्कि यह ज्ञान इंजीनियरिंग में अनुसंधान का समर्थन करना था। इसके बाद यूरोपीय संघ के देशों ने भी 'एस्प्रिट' नामक एक कार्यक्रम आरंभ किया। वर्ष 1983 में कुछ निजी संगठनों के संस्थानों ने संयुक्त रूप से कृत्रिम बुद्धि मता पर लागू होने वाली उन्नत तकनीकों जैसे– बहुत बड़े पैमाने पर एकीकृत सर्किट का विकास करने के लिए एक संघ 'माइक्रो–इलेक्ट्रोनिक्स एण्ड कंप्यूटर टेक्नोलॉजी' की स्थापना की।

कृत्रिम बुद्धि अनुसंधान के उद्देश्यों में तर्क, ज्ञान की योजना बना, सीखने, धारणा और वस्तुओं में हेरफेर करने की क्षमता, आदि समाहित हैं। वर्तमान में, इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सांख्यिकीय विधियों, कम्प्यूटेशनल बुद्धि और पारंपरिक खुफिया पद्धतियाँ सम्मिलित हैं। कृत्रिम बुद्धि प्रौद्योगिकी उद्योग का अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग बन चुका है। वर्तमान में आत्म–जागरूकता के लिए भी कृत्रिम बुद्धिमता मशीन तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है। यह

मशीनें भीतर की भावनाओं की पहचान करने में सक्षम होंगी। जैसे–जैसे कम्प्यूटर साइंस और तकनीक का विकास हो रहा है, वैसे ही कृत्रिम बुद्धिमता के क्षेत्र में भी नए–नए प्रयोग हो रहे हैं। आने वाले दिनों में कृत्रिम बुद्धिमता के क्षेत्र में कई और भी नवीन वस्तुएँ देखने को मिल सकती हैं।

कृत्रिम बुद्धिमता के प्रकार

कृत्रिम बुद्धिमता को निम्नलिखित चार चरणों मे वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **प्रतिक्रियाशील मशीनें**– ये मशीनें स्थितियों पर प्रतिक्रिया कर सकती हैं। ये मशीनें सभी संभावित विकल्पों का विश्लेषण करके सर्वश्रेष्ठ को चुनती है। परंतु ऐसी मशीनों में याददाश्त की कमी होती है। ये मशीनें भविष्य के अनुप्रयोगो को सूचित करने के लिए पिछले अनुभवों का उपयोग नहीं कर सकती हैं। जैसे कि एप्पल का सिरी और गूगल का वॉयस सिस्टम ।
2. **परिसीमित मैमोरी**– ये कृत्रिम बुद्धिमता सिस्टम भविष्य के लोगों को सूचित करने के लिए पिछले अनुभवों का उपयोग करने में सक्षम हैं। सेल्फ ड्राइविंग वाहन इसका एक अच्छा उदाहरण है। ऐसे वाहनों में स्वतः निर्णय लेने की प्रणाली होती है जिससे कि वाहन स्वतः ही लेन बदल लेने का निर्णय कर लेते हैं।
3. **मस्तिष्क का सिद्धांत**– इस प्रकार की तकनीक दूसरों को समझने के लिए संदर्भित होती है। जैसे कि इरादे, इच्छाएं और राय। यध्यपि इस प्रकार की कृत्रिम बुद्धिमता अभी तक मौजूद नहीं है।
4. **आत्म–जागरूकता**– आत्म–जागरूकता कृत्रिम बुद्धिमता का सबसे उच्चतम और परिष्कृत स्तर है। इस प्रकार की तकनीक में स्वयं की भावना, जागरूकता और चेतना होती है। हालाकि यह तकनीक अभी तक मौजूद नहीं है, लेकिन भविष्य मे यह निश्चित रूप से क्रांतिकारी सिद्ध होगी।

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमता की भारत में स्थिति

भारत में वर्तमान में लगभग 40,000–42,000 कृत्रिम बुद्धिमता विशेषज्ञ कार्यरत हैं। कर्नाटक की राजधानी बैंगलोर कृत्रिम बुद्धिमता का प्रमुख केंद्र बन चुकी है, जहां लगभग एक हजार से भी अधिक कंपनियाँ कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों में सफलतापूर्वक कर रही हैं। आज समावेशी वित्तीय विकास में कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक अत्यंत सफल सिद्ध हो रही है। जैसे कि कृषकों को सामयिक सलाह प्रदान करने और बढ़ती उत्पादकता की दिशा में अप्रत्याशित कारकों को समलित में कृत्रिम बुद्धिमता काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है। भारत में किसानों एवं उनके परिवारों की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने में कृषि महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भारत में कृषि तकनीक, स्टार्ट–अप जैसे क्रॉपइन, देहात, फसल तथा बीजक सदृश्य कंपनियाँ विभिन्न फसलों से अधिकाधिक उपज प्राप्त करने हेतु तकनीकी सहायता उपलब्ध करा रही हैं। क्रॉपइन एग्रीटेक के सस्थापक ने मौसम विश्लेषण तैयार करने के लिए स्मार्टफोन अनुप्रयोग विकसित किया है। कंपनी एप का प्रयोग करने वाले कृषकों को सटीक आंकड़े उपलब्ध कराने के लिए एआई तथा इंटरनेट ऑफ थिंग्स का उपयोग कर रही है। कंपनी ने लगभग 40 लाख किसानों की मदद की है। देहात भी किसानों के लिए ऑनलाइन कम्यूनिटी प्रदान करता है। मौसम पूर्वानुमान की रिपोर्ट, डेली क्रॉप रिमाइन्डर, फसल, कीट, मृदा एवं बीज को लेकर सलाह जैसे कई अन्य कृषि सेवाएँ प्रदान करता हैं। स्मार्टफोन नहीं रखने वाले किसानों के लिए कंपनी दैनिक हेल्पलाइन की सुविधा भी उपलब्ध कराती है। इस स्टार्टअप ने भी भारत के लाखों किसानों की सहायता की है। क्रॉपइन व देहात जैसे इन स्टार्ट–अप्स के आने से देश में खेती करने का पारंपरिक तरीका ही बदल गया है।

नैसकॉम और फिक्की की एक रिपोर्ट के अनुसार कृत्रिम बुद्धिमता के द्वारा औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों में तकनीकी विस्तार को और प्रोत्साहन मिलेगा। ज्ञातव्य है कि कृत्रिम बुद्धिमता के कारण सूचना प्रौद्योगिकी, रिटेल, वित्त, वस्त्र और ऑटो क्षेत्र में बड़ी संख्या में रोजगार के नए अवसरों का सृजन हो सकेगा। वैश्वीकरण एवं भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर में आज भारत की ई–कॉमर्स कंपनियाँ उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमता का सफलतापूर्वक सदुपयोग कर रही हैं। हाल ही में, कृत्रिम बुद्धिमता रिसर्च रिपोर्ट में जी–20 में शामिल कुछ देशों के लिए कृत्रिम बुद्धि मता के आर्थिक प्रभाव का मूल्यांकन किया गया। रिपोर्ट के

अनुसार कृत्रिम बुद्धिमता के माध्यम से भारत की वार्षिक वृद्धि दर वर्ष 2035 तक 1.3 प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है। इस समय गूगल, फेसबुक और लिंक्डइन जैसी तकनीकी क्षेत्र की अग्रणी कंपनियाँ कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक में पैसे का भारी निवेश करके बेरोजगारों के लिए रोजगार के नए अवसरों को सृजित कर रही हैं।

कृत्रिम बुद्धिमता के क्षेत्र से संबन्धित सरकारी नीतियाँ

कृत्रिम बुद्धिमता एवं संबंधित प्रौद्योगिकियों का लाभ आम जनता तक पहुंचाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने कुछ अहम योजनाओं का गठन किया है। जैसे कि सरकार कृत्रिम बुद्धिमता, डिजिटल मैन्युफैक्चरिंग, बिग डाटा इंटेलिजेंस, रोबोटिक्स, रियल टाइम डाटा और क्वांटम कम्युनिकेशन के क्षेत्र में शोध, प्रशिक्षण, मानव संसाधन और कौशल विकास को बढ़ावा देने की योजना बना रही है।वर्तमान बजट में सरकार ने फिफ्थ जेनरेशन टेक्नोलॉजी की शुरुआत के लिए 480 मिलियन डॉलर का प्रावधान किया है जिसमें कृत्रिम बुद्धिमता, मशीन लर्निंग, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, 3–डी प्रिंटिंग और ब्लॉक चेन सम्मिलित हैं। केंद्र सरकार का थिंकटैंक नीति आयोग शीघ्र ही राष्ट्रीय कृत्रिम बुद्धिमत्ता कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करेगा। सर्वविदित है कि नीति आयोग कृत्रिम बुद्धिमता द्वारा देश में व्यवसाय करने के तरीके को परिवर्तित करने के लिए गूगल के साथ साझेदारी द्वारा कई प्रशिक्षण शुरू करने जा रहा है जिससे कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक के प्रयोग को और प्रोत्साहन मिलेगा।

कृत्रिम बुद्धिमता का महत्त्व

(क) कृषि क्षेत्र में– कृत्रिम बुद्धिमता को कृषि क्षेत्र में सुचारु रूप से प्रयोग कर सकते हैं जैसे कि कीटनाशकों तथा उर्वरकों के दुरुपयोग के समाधान में सहायक होता है। कुछ कृत्रिम बुद्धिमता तकनीकी द्वारा निर्मित कृषि उपकरण निम्न प्रकार हैं:

(i) ड्रोन– गहन क्षेत्र विश्लेषण, लंबी दूरी की फसल छिड़काव और उच्च दक्षता वाली फसल निगरानी के माध्यम से फसल की उपज में वृद्धि करने के नए उपाय सुझाने जैसे कारणों से ड्रोन तकनीक समय के साथ तेजी से कृषकों क लिए अनमोल होती जा रही है।

(ii) चालक रहित ट्रैक्टर– सेंसर, रडार तथा जीपीएस सिस्टम जैसी 'ऑफ–द–शेल्फ़' तकनीकों के साथ और अधिक परिष्कृत सॉफ़्टवेयर का संयोजन, किसान जल्द ही इस एक सदी पुरानी मशीन को रोबोट को सौंपने में सक्षम होंगे।

(iii) स्वचालित सिंचाई प्रणाली– स्वचालित सिंचाई प्रणाली को औसत उपज बढ़ाने के लिए वांछित मिट्टी की स्थिति को लगातार बनाए रखने के लिए रियल–टाइम मशीन लर्निंग का उपयोग करने के लिए डिज़ाइन किया गया।

(iv) मृदा स्वास्थ्य निगरानी– पारंपरिक फसल स्वास्थ्य निगरानी के तरीके अविश्वसनीय रूप से समय लेने वाले होते हैं और सामान्यतया प्रकृति में स्पष्ट होते हैं। कृत्रिम बुद्धिमता,मशीन लर्निंग, इन–ग्राउंड सेंसर, इंफ्रारेड इमेजरी तथा रियल टाइम वीडियो एनालिटिक्स उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। फसलों की गुणवत्ता में मृदा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है। हालांकि उर्वरकों के अतिशय प्रयोग एवं वनों की कटाई में वृद्धि के कारण मृदा की गुणवत्ता में गिरावट आ रही है। ऐसे में मृदा उर्वरता में गिरावट आना स्वाभाविक है। ऐसे में मृदा की गुणवत्ता का स्तर ज्ञात करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। जर्मनी के बर्लिन स्थित टेक स्टार्टअप (पीईटी) ने प्लांटिक्स नामक कृत्रिम बुद्धिमता आधारित एक गहन शिक्षण अनुप्रयोग विकसित किया है जो कथित तौर पर मृदा में उपस्थित कीटों व रोगजनकों की स्थिति सहित संभावित रोगों और पोषक तत्वों की कमी की सुगमता से पहचान करता हैं। जिससे किसानों को आवश्यकतानुसार उर्वरक का प्रयोग करके फसल की गुणवत्ता में सुधार करने मे सहायता मिल सकती है।

(vi) फसल की निगरानी– स्काईस्क्रेल टेक्नोलौजीज फसल स्वास्थ्य की निगरानी हेतु ड्रोन आधारित एरियल इमेजिंग समाधान प्रस्तुत करता है। इस प्रौद्योगिकी के अंतर्गत ड्रोन खेतों से आंकड़े एकत्रित करके आंकड़ों को यूएसबी ड्राइव के माध्यम से ड्रोन से कंप्यूटर में स्थानांतरित करता है। कंपनी कैप्चर की गई इमेज का विश्लेषण करने के लिए अल्गोरिदम का उपयोग करके विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। यह कृषकों को जीवाणुओं, रोगाणुओं एवं कीटों की पहचान करने में किसानों की अत्यंत सहायता करता है। भारत में भी उद्योगों ने कृत्रिम बुद्धिमता संचालित फसल उपज भविष्यवाणी मॉडल विकसित करने हेतु सरकार के साथ हाथ मिलाया है। यह प्रणाली फसल उत्पादकता बढ़ाने, कीट अथवा रोगों के प्रकोप की चेतावनी देने के लिए कृत्रिम बुद्धिमता आधारित तकनीक का प्रयोग करती है। किसानों को सटीक जानकारी देने के लिए कंपनियाँ भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के द्वारा उपलब्ध कराए गए रिमोट सेन्सिंग आंकड़े, मृदा स्वास्थ्य कार्ड के आंकड़े, भारत मौसम विभाग के मौसम की भविष्यवाणी, मृदा के तापमान व नमी की जानकारी का विश्लेषण करके उपयुक्त जानकारी का उपयोग करती हैं।

(vii) खेतों की निगरानी– हम सबने गावों में फसलों को पक्षियों से बचाने हेतु किसानों को खेतों में मचान बनाकर देखा है, परंतु अब फसलों को पक्षियों द्वारा होने वाली क्षति से बचाने हेतु कृत्रिम बुद्धिमता तथा मशीन लर्निंग जैसी तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा लगा हैं। इससे रियल टाइम वीडियो फीड मॉनिटरिंग प्रणाली के जरिए तुरंत एलर्ट प्राप्त किया जा सकता है।

(viii) फसलों की भविष्यवाणी– जलवायु परिवर्तन तथा बदलते प्रदूषण के मददेनजर किसानों के लिए बीज बोने का सही समय निर्धारित करना एक मुश्किल कार्य होता जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमता की सहायता से किसान मौसम के भविष्यवाणी का उपयोग करके सही स्थिति का विश्लेषण कर सकते हैं जिससे उन्हें विभिन्न फसलों की योजना बनाने में सहायता मिल सकती है। जैसे कि बीज कब बोना है तथा कब नहीं? विभिन्न कृत्रिम बुद्धिमता तथा मशीन लर्निंग टूल्स के माध्यम से कीटों के आक्रमण आदि को लेकर भी एलर्ट प्राप्त किया जा सकता है। कृत्रिम बुद्धिमता की सहायता से किसान वास्तविक समय में विभिन्न प्रकार के आंकड़े जैसे मौसम का तापमान तथा वर्षा की स्थिति, जल के उपयोग, मृदा की स्थिति आदि

का विश्लेषण करके समस्याओं की पहचान कर सकते हैं। इससे समय पर उचित निर्णय लेने में सुगमता रहेगी। फसल एग्रोटेक कंपनी कृषकों को अधिक लाभ पहुँचाने के लिए सटीक अनुमान लगाने में सहायता करती हैं। कंपनी द्वारा खेती के आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए एप विकसित किया गया गया है। इसके अतिरिक्त, इससे फसल सेंस नामक आईओटी डिवाइस विकसित किया है जो खेत की निगरानी व आँकड़े एकत्र करने में मदद करता है। कृत्रिम बुद्धिमता के माध्यम से कंपनी खेत के दृष्टिकोण से खास फसल उगाने की सलाह देती है।

ix) **फार्म शॉट्स–** हाइपरस्पेक्ट्रल इमेजिंग और 3डी लेजर स्कैनिंग, व्यक्तिगत भूखंडों और/या पौधों को चित्रित करने के लिए स्थानिक संकल्प के साथ हजारों एकड़ में तेजी से बढ़ी हुई जानकारी और प्लांट मेट्रिक्स प्रदान करने में सक्षम हैं और बढ़ते चक्र के दौरान परिवर्तनों को ट्रैक करने का अस्थायी लाभ भी प्राप्त होता है।

(ख) चिकित्सा क्षेत्र में– कृत्रिम बुद्धिमता को चिकित्सा क्षेत्र में सुचारु रूप से प्रयोग किया जा सकता हैं। जैसे कि ऑपरेशन में, कृत्रिम प्रत्यारोपण में और ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ संचार की सुविधाओं की समस्या है तथा प्रशिक्षित कर्मियों की कमी है वहाँ कृत्रिम बुद्धिमता की सहायता से चिकित्सा की जा सकती है।

(ग) विनिर्माण और उत्पादन के क्षेत्रों में– बहुराष्ट्रीय कंपनियां तथा संगठन कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग विनिर्माण और उत्पादन के क्षेत्रों में कर रहे हैं तथा इन्होनें इन क्षेत्रों में करोड़ों का निवेश किया है। क्योंकि कृत्रिम बुद्धिमता मशीनों द्वारा गलतियों की संभावना कम रहती है और मनुष्यों की तुलना में इन मशीनों से लंबे समय तक कार्य लिया जा सकता है।

(घ) सुरक्षा क्षेत्र में– सुरक्षा दृष्टिकोण से भी कृत्रिम बुद्धिमता अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ सेना के जवानों के स्थान पर भी रोबोट का प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान में साइबर सुरक्षा के क्षेत्र में धोखाधड़ी का पता लगाने, वित्तीय लेन–देन में होने वाली अनियमितता, ट्रेडिंग पैटर्न पर निगरानी जैसे मामलों में कृत्रिम बुद्धि–मता का प्रयोग किया जा रहा है। वित्तीय संस्थानों और बैंकिंग संस्थानों द्वारा आंकड़ों को व्यवस्थित करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमता का उपयोग किया जा रहा है। स्मार्टकार्ड सिस्टम में भी कृत्रिम बुद्धिमता का उपयोग किया जा रहा है।

(ड़) खनिजों के खनन में– समुद्र तल की गहराई में खनिज, पेट्रोल, और ईंधन की खोज का काम, गहरी खानों में खुदाई का काम अत्यंत कठिन, दुष्कर तथा जटिल होता है। समुद्र की तलहटी में पानी का गहन दबाव होता है। ऐसे में कृत्रिम बुद्धिमता की सहायता से ईंधन की खोज की जाती है।

(च) खेल जगत में– कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग क्रिकेट, फुटबॉल, बेसबॉल, शतरंज जैसे खेलों की तस्वीरें लेने में प्रमुख रूप से किया जा रहा है। क्रिकेट के क्षेत्र में भी संगणक का उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में निर्णय लेने में किया जाता हैं।

(छ) अन्य उपयोग– अंतरिक्ष से जुड़ी खोजों में भी कृत्रिम बुद्धिमता का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है। जीवन को उच्च गुणवत्ता प्रदान करने हेतु नए विकसित स्मार्ट शहरों और बुनियादी ढाँचे में कृत्रिम बुद्धिमता का प्रयोग किया जा सकता है। कृत्रिम बुद्धिमता के संभावित उपयोग में, स्वचालित ड्राइवर ऑटोनोमस ट्रैकिंग तथा डिलीवरी तथा बेहतर यातायात प्रबंधन हो सकते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमता की कमियाँ– कृत्रिम बुद्धिमता कृषि क्षेत्र, रोबोटिक्स, खनिजों के खनन, सुरक्षा, विनिर्माण और उत्पादन, चिकित्सा तथा खेल के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण तथा उपयोगी योगदान दे सकता है,लेकिन इसके नकारात्मक प्रभाव से भी इंकार नहीं किया जा सकता है। बैंक, एटीएम, अस्पताल, कारखानों किसी भी जगह कृत्रिम बुद्धिमता से युक्त मशीन लगाना अत्यंत महँगा पड़ता है। इन मशीनों के खराब हो जाने पर इसको ठीक करना भी सुगम तथा सस्ता नहीं होता है। साथ ही इन मशीनों का रख–रखाव भी अत्यंत खर्चीला होता है।मशीनों में भावना या नैतिक मूल्य मौजूद नहीं होता है तथा ये उचित एवं अनुचित कार्य में अंतर नहीं कर सकती है। विशेषज्ञों का कहना है कि सोचने–समझने वाले रोबोट यदि किसी कारणवश अथवा विशेष परिस्थिति में मनुष्य को अपना शत्रु मानने लगें, तो यह मानवता के लिए अत्यंत

खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अतः विपरीत परिस्थितियाँ होने पर कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक से युक्त मशीनें उचित निर्णय लेने में असमर्थ रहती हैं।

निष्कर्ष

आज समावेशी वित्तीय विकास में कृत्रिम बुद्धिमता तकनीक अत्यंत सफल सिद्ध हो रही है। जैसे कि कृषकों को सामयिक सलाह प्रदान करने और बढ़ती उत्पादकता की दिशा में अप्रत्याशित कारकों को संबोधित करने में कृत्रिम बुद्धिमता काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। कृत्रिम बुद्धिमता विगत कई दशकों से एक ज्वलंत विषय है। कृत्रिम बुद्धिमता का बाजार वर्ष 2025 में 200 बिलियन डॉलर तक जा सकता है। आज तकनीक के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व अत्यंत तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है। आज प्रत्येक क्षेत्र में विकास को गति देने और नागरिकों को बेहतर सुख–सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिये अत्याधुनिक तकनीक का भरपूर उपयोग किया जा रहा है। इस संदर्भ में भारत सरकार ने 2017 में एग्री–उड़ान नाम की योजना शुरू की थी, जिसका उद्देश्य ही कृषि क्षेत्र के स्टार्ट–अप को मार्गदर्शन देना और संभावित निवेशकों को साथ जोड़ना था। इस योजना के कारण कई नई कंपनियां कृषि क्षेत्र में उतरी हैं जिससे कृषि क्षेत्र में नए निवेश हो रहे हैं जिससे अन्य तकनीकों के साथ कृत्रिम बुद्धिमता द्वारा निर्मित कृषि उपकरण भी अधिक सस्ते मूल्यों पर कृषकों को उपलब्ध हो सकेंगे। समय की मांग के अनुरूप यह अत्यंत आवश्यक भी है क्योंकि खेती–किसानी के उज्जवल भविष्य का मार्ग कृत्रिम बुद्धिमता द्वारा ही प्रशस्त करेगा।

हिन्दी आज साहित्य के विचार से रूढ़ियों से बहुत आगे है। विश्व साहित्य में ही जाने वाली रचनाएँ उसमें हैं।

– सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

कृषि उत्पादन बढ़ाने में आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का की किस्में एवं भूमिका

कामिनी सिंह, लाल सिंह गंगवार, ब्रह्म प्रकाश, ओम प्रकाश, अनीता सावनानी एवं अश्विनी दत्त पाठक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेलः kaminipkv@gmail.com

पृष्ठभूमि

आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलें (जीएम फसलें) कृषि में उपयोग किए जाने वाले ऐसे पौधे हैं, जिनके डीएनए को आनुवंशिक अभियांत्रिकी विधियों का उपयोग करके संशोधित किया गया है। उत्तक संवर्धन द्वारा वांछित प्रभाव प्राप्त करने के लिये टिश्यू कल्चर, म्युटेशन (उत्परिवर्तन) एवं सूक्ष्म जीवों की मदद से पौधों में नए जीनों का प्रवेश कराया जाता है।इस तरह की एक बहुत ही सामान्य प्रक्रिया में पौधे को *एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियंस* नामक सूक्ष्मजीव से संकरण कराया जाता है। इस सूक्ष्मजीव को टी–डीएनए नामक एक विशिष्ट जीन से संकरण कराकर पौधे में डीएनए का प्रवेश कराया जाता है। इस *एग्रोबेक्टेरियम ट्यूमेफेशियंस* के टी–डीएनए को वांछित जीन से सावधानीपूर्वक प्रतिस्थापित किया जाता है, जो कीट प्रतिरोधक होता है। इस प्रकार पौधे के जीनोम में बदलाव लाकर वांछित गुणों वाली फसल प्राप्त की जाती है। ज्यादातर मामलों में, इसका उद्देश्य पौधे में एक नया उपयोगी लक्षण लाना है जो प्रजातियों में स्वाभाविक रूप से नहीं होता है। जैसे कि खाद्य फसलों में कुछ कीटों, बीमारियों, पर्यावरणीय स्थितियों, खराब होने की दशा, रासायनिक उपचारों का प्रतिरोध या फसल के पोषक तत्व में सुधार के प्रतिरोध शामिल हैं। गैर–खाद्य फसलों में फार्मास्युटिकल एजेंटों, जैव ईंधन, जैव–शोधन और अन्य औद्योगिक रूप से उपयोगी सामानों का उत्पादन सम्मिलित है।

यूरोपीय संघ जीएम खाद्य पदार्थों के आयात को नियंत्रित करता है, जबकि व्यक्तिगत सदस्य राज्य खेती का निर्धारण करते हैं। अमेरिका में, अलग–अलग नियामक एजेंसियां मानव उपभोग के लिए खेती के अनुमोदन को संभालती हैं जैसे कि संयुक्त राज्य कृषि विभाग (यूएसडीए), पर्यावरणीय संरक्षण एजेंसी (ईपीए) और खाद्य एवं औषधि प्रशासन (एफडीए)। यद्यपि आनुवंशिक रूप से संशोधित फसलों की खेती के लिए, व्यावसायीकरण के संबंध में, नियम अधिकतर व्यक्तिगत देशों द्वारा संचालित किए जाते हैं, साथ ही में पर्यावरणीय अनुमोदन निर्धारित करता है कि क्या फसल को कानूनी रूप से उगाया जा सकता है? आम तौर पर मानव उपभोग के लिए या पशु आहार के रूप में जीएम फसलों का उपयोग करने के लिए अलग से अनुमोदन की आवश्यकता होती है। भारत में, जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति (जीईएसी) जो पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अंतर्गत स्थापित सांविधिक निकाय है वह जीएम फसलों के वाणिज्यिक उत्पादन के लिये अनुमति प्रदान करता है। सार्वजनिक अनिश्चितता और अन्य सरकारी प्रतिबंधों के कारण कुछ देशों ने जीएम फसलों को मंजूरी तो दी है लेकिन वास्तव में वे इसकी खेती नहीं करते, हालांकि वे उपभोग के लिए जीएम खाद्य पदार्थों का आयात कर सकते हैं। उदाहरण– जापान!

आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) खाद्य पदार्थों के सापेक्ष में प्रायः जी एम खाद्य पदार्थों की सुरक्षा का मामला विचार करने का विषय रहा है। भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (एफ एस एस ए आई) ने भारत में अब तक जी एम खाद्य पदार्थों की अनुमति नहीं दी है। भारत ने केवल जी एम बी टी (*बैसिलस थुरिंजिनेसिस*) की व्यावसायिक खेती की अनुमति दी है। भारत में वर्ष 2002 से कपास की व्यावसायिक खेती की जा रही हैं।

जीएम फसलों का इस्तेमाल जीएम खाद्य पदार्थों के लिए	जी एम डी एन ए	क्रियाविधि
मक्का, सोया, कपास	कीट–प्रतिरोध जीन बैक्टीरिया बैसिलस थुरिंजिनेसिस (बीटी) फसल को हस्तांतरित	बीटी जीएम फसल बीटी जीन को व्यक्त करती है,बीटी उस प्रोटीन को रखता हैं जो विष के लिए कोड करता है। बीटी फसल को खाने वाले कीड़े बीटी प्रोटीन का सेवन करते हैं, जो उनकी आंत कोशिकाओं पर आक्रमण करता है और उन्हें मार देता है।
मक्का, सोया, कपास, रेपसीड (कैनोला)	हर्बिसाइड–टॉलरेंट (एचटी) जीन, ईपीएसपीएस' जीन का संशोधित रूप, पौधों से प्राप्त, वांछित फसल हेतु पौधों में डाला जाता है	खरपतवारनाशक रसायन पौधों द्वारा उत्पादित ईपीएसपीएस प्रोटीन,एचटी जीएम फसल एचटी जीन को व्यक्त करती है। एक संशोधित ईपीएसपीएस प्रोटीन, जो शाकनाशी द्वारा अवक्रमित नहीं होता है जैसे कि– ग्लाइफोसेट और ग्लूफोसिनेट।

तालिका 1: वैश्विक स्तर पर विपणन की जाने वाली सामान्य जी एम किस्में

दुनिया भर में आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) फसलें

विश्व भर में व्यापक रूप से जीएम तकनीक को अपनाया गया है। जीएम फसलों को पहली बार बड़े पैमाने पर व्यावसायिक रूप से वर्ष 1996 में अमेरिका, चीन, अर्जेंटीना, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और मेक्सिको में लगाया गया था। वर्ष 1996 में, प्रति एकड़ 1.7 मिलियन हेक्टेयर से बढ़कर 2016 में 185.1 मिलियन हेक्टेयर हो गया, जो वैश्विक कुल कृषि क्षेत्र का 12% था। वर्ष 2016 तक, प्रमुख फसल (सोयाबीन, मक्का, कैनोला और कपास) के गुणों में खरपतवारनाशी रसायन (हर्बिसाइड सहिष्णुता) 95.9 मिलियन हेक्टेयर कीट प्रतिरोध (25.2 मिलियन हेक्टेयर) या दोनों (58.5 मिलियन हेक्टेयर) शामिल हैं। वर्ष 2015 में, जीएम मक्का के 53.6 मिलियन हेक्टेयर खेती के अधीन थे (मक्का की फसल का लगभग 1/3)।

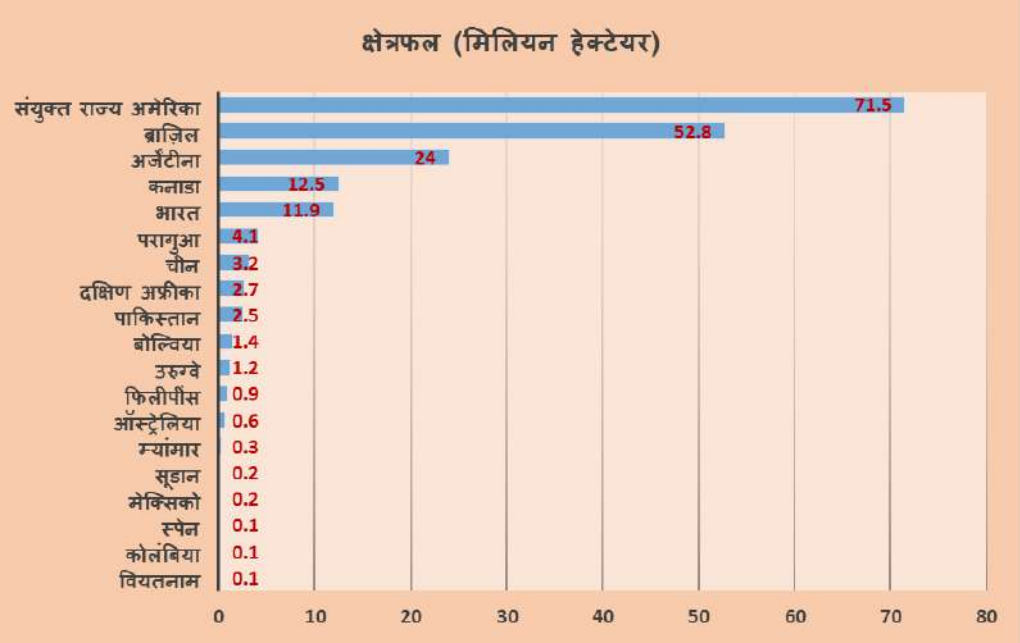

चित्र 1– दुनिया भर में आनुवंशिक रूप से संशोधित (जीएम) फसलों का क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर में)

आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का–

आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्का को कृषि–वांछनीय उपयोगी लक्षणों को प्राप्त करने के लिए इंजीनियर किया गया है, जिसमें कीटों, बेहतर पोषण मूल्य, और तनाव प्रतिरोधकता वाली विशिष्ट विशेषता शामिल हैं। वर्ष 2011 में, 14 देशों में हर्बिसाइड–प्रतिरोधी जीएम मकई उगाई गई थी, वर्ष 2012 में, 26 किस्मों के शाकनाशी प्रतिरोधी जीएम मक्का को यूरोपीय संघ में आयात के लिए अधिकृत किया गया था, तथा वर्ष 2020 तक, 32 फसलों में लगभग 525 विभिन्न ट्रांसजेनिक घटको को दुनिया के विभिन्न हिस्सों में खेती के लिए अनुमोदित किया गया है।

वर्तमान मक्का उत्पादन परिदृश्य में लगभग 65–70 प्रतिशत संकर मक्का की उपस्थिति पर प्रकाश डालता है और इसका अधिकांश हिस्सा चारा और औद्योगिक ग्रेड मक्का के लिए है, जबकि भोजन हेतु पारंपरिक किस्मों का उपयोग करके ग्रेड मक्का का उत्पादन किया जाता है। हाल के वर्षों में, हालांकि संकरों को अपनाने की दर धीमी हो गई है, लेकिन किसान परंपरागत मक्का की खेती और पुराने संकर की जगह नई उच्च उपज देने वाली संकर किस्मों का प्रयोग कर रहे हैं। कर्नाटक, राजस्थान, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्य इसमें मुख्य रूप से उच्च उपज देने वाली संकर किस्मों का प्रयोग कर रहे हैं।

हालाँकि, यह बहुत प्रासंगिक है कि मक्का की राष्ट्रीय उत्पादकता वैश्विक मानक की तुलना में काफी कम है। देश में मांग के लिहाज से मक्के की खपत में पिछले साल की तुलना में 2 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। वित्त वर्ष 2016–17 के दौरान मक्के का उत्पादन 24 मिलियन मीट्रिक टन था जिसमे पोल्ट्री फीड से 13.5 मिलियन मीट्रिक टन, स्टार्च से 1.8 मिलियन मीट्रिक टन, इथेनॉल से 1.2 मिलियन मीट्रिक टन, और भोजन, बीज और अन्य उपयोग शामिल हैं। वर्ष 2022 तक केवल घरेलू खपत की जरूरतों को पूरा करने के लिए, भारत को 45 मिलियन मीट्रिक टन मक्का की आवश्यकता होगी। ट्रांसजेनिक घटको के प्रयोग द्वारा प्रतिरोधी मक्का की किस्मे बनाई गई है, जो इस प्रकार है–

अ) हर्बिसाइड प्रतिरोधी मक्का– वर्ष1996 में मोनसेंटो द्वारा ग्लाइफोसेट हर्बिसाइड्स के लिए मक्का की किस्मों को संशोधित किया गया था, और इसे "राउंडअप रेडी कॉर्न" के रूप में जाना जाता है। बाद में बायर क्रॉपसाइंस ने "लिबर्टी लिंक कॉर्न" विकसित किया जो ग्लूफ़ोसिनेट के लिए प्रतिरोधी है। इसी क्रम में पायनियर हाइब्रिड ने ट्रेडमार्क "क्लियरफील्ड" के तहत इमिडाज़ोलिन के प्रति सहिष्णुता के लिए संकर मक्का को विकसित और विपणन किया है हालांकि इन संकरों में, ऊतक संवर्धन चयन और रासायनिक उत्परिवर्तजन इथाइल मीथेनसल्फोनेट का उपयोग करके हर्बिसाइड सहिष्णुता विशेषता पैदा की गई थी।

ब) कीट प्रतिरोधी मक्का– यूरोपीय मक्का छिद्रक, मक्का की फसल को प्रति वर्ष लगभग एक अरब डॉलर का नुकसान पहुंचाता है। कीट प्रतिरोधी मक्का को बनाने में बीटी प्रोटीन को पूरे पौधे में अभिव्यक्त किया जाता है, जब एक कमजोर कीट बीटी युक्त पौधे को खाता है, तो उसकी आंत में प्रोटीन सक्रिय हो जाता है, जो कि क्षारीय होता है । क्षारीय वातावरण में, प्रोटीन आंशिक रूप से संश्लेषित होता है और अन्य प्रोटीनों द्वारा काट दिया जाता है, जिससे एक विष बनता है जो कीट के पाचन तंत्र को पंगु बना देता है और आंत की दीवार में छेद बनाता है। कीट कुछ घंटों के भीतर खाना बंद कर देता है और अंत में भूखा मर जाता है। वर्ष 1996 में, बीटी क्राई प्रोटीन का उत्पादन करने वाले पहले जीएम मक्का को मंजूरी दी गई, जिसने यूरोपीय मकई बोरर और संबंधित मकई रूटवॉर्म लार्वा के लिए प्रतिरोधकता दिखाई। वर्ष 2018 में एक अध्ययन में पाया गया कि बीटी–कॉर्न ने गैर–बीटी मकई और आसपास की सब्जियों की फसलों के आस–पास के खेतों की भी रक्षा की, जिससे उन फसलों पर कीटनाशकों का उपयोग कम हो गया। उदाहरण– वर्ष1992 और 2016 के बीच, न्यू जर्सी में काली मिर्च के खेतों में सामान्यतः उपयोग होने वाले कीटनाशक की मात्रा में 85 प्रतिशत की कमी आई।

स) सूखा प्रतिरोधी मक्का– वर्ष 2013 में, मोनसेंटो ने सूखागार्ड नामक मकई संकरों की एक पंक्ति में पहला ट्रांसजेनिक सूखा सहिष्णुता विशेषता प्रस्तुत की। मोन 87460 में सूखा प्रतिरोधिकता मिट्टी के सूक्ष्म जीव *बेसिलस सबटिलिस* से सीएसपीबी जीन के सम्मिलन द्वारा प्रदान की गई है; इसको यूएसडीए द्वारा 2011 में और 2013 में चीन द्वारा अनुमोदित किया गया था। कुछ सूखा प्रतिरोधी मक्का की प्रजातियां इस प्रकार हैं– जे.एम.–8, कीटों एव सूखे से प्रतिरोधकता

रखती हैं तथा प्रताप शंकर –3 जो कि महाराणा प्रताप कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर के वैज्ञानिकों द्वारा विकसित संकर मक्का की किस्म हैं, इसको सूखा प्रवण क्षेत्रों के लिए सबसे अधिक उपज देने वाली किस्म के रूप में अनुशंसित किया गया है। इसी क्रम में प्रताप मक्का–1, प्रताप मक्का–4, प्रताप मक्का–5, प्रताप मक्का चारी–6 और दो संकर, प्रताप संकर मक्का–1 और प्रताप क्यूपीएम हाइब्रिड जैसी कुछ किस्में पहले ही जारी की गई हैं।

द) पोषक तत्वों में वृद्धि युक्त मक्का– मक्का में *ई. कोलाई* जीन ट्रांसफर करने पर शोध किया गया है ताकि इसे आवश्यक अमीनो एसिड (मेथियोनाइन) युक्त गुणों के साथ उगाया जा सके। पोषक तत्वों से समृद्ध मक्का की कुछ संकर किस्म इस प्रकार हैं– पूसा विवेक क्यूपीएम 9 उन्नत, यह देश की उच्च प्रोविटामिन–ए युक्त संकर मक्का ही पहली किस्म है। इसमे उच्च प्रोविटामिन–ए (8.15 पीपीएम), लाइसीन (2. 67 प्रतिशत) तथा ट्रिप्टोफैन (0.74 प्रतिशत) जो कि प्रचलित संकर किस्मों {प्रोविटामिन–ए (1.0–2.0 पीपीएम), लाइसीन (1.5–2.0 प्रतिशत)} तथा ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) की तुलना में अधिक है। पूसा एचएम 4 उन्नत किस्म में ट्रिप्टोफैन 0.91 प्रतिशत तथा लाइसीन 3.62 प्रतिशत है जो कि प्रचलित संकर किस्मों की तुलना में अधिक {ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) तथा लाइसीन (1.5–2.0 प्रतिशत)} है। पूसा एचएम 8 उन्नत किस्म में ट्रिप्टोफैन (1.06 प्रतिशत) तथा लाइसीन (4. 18 प्रतिशत) की प्रचुर मात्रा है जो कि प्रचलित संकर किस्मों की तुलना में {ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) तथा लाइसीन (1.5–2.0 प्रतिशत)} अधिक है। पूसा एचएम 9 उन्नत किस्म में ट्रिप्टोफैन 0.68 प्रतिशत तथा लाइसीन 2.97 प्रतिशत है जो कि प्रचलित संकर किस्मों की तुलना में अधिक {ट्रिप्टोफैन (0.3–0.4 प्रतिशत) तथा लाइसीन (1.5–2.0 प्रतिशत)} है ।

स्वीट कॉर्न

जीएम स्वीट कार्न की किस्मों में "एट्रिब्यूट", सिनजेंटा द्वारा विकसित कीट–प्रतिरोधी स्वीट कॉर्न का ब्रांड नाम और मोनसेंटो द्वारा विकसित परफॉर्मेंस सीरीज कीट–प्रतिरोधी स्वीट कॉर्न शामिल हैं।

स्टारलिंक मक्का– स्टारलिंक में क्राई 9 सी शामिल है, जिसका पहले किसी संशोधित फसल में उपयोग नहीं किया गया था। स्टारलिंक के निर्माता, प्लांट जेनेटिक सिस्टम्स ने अमेरिकी पर्यावरण संरक्षण एजेंसी (ईपीए) को पशु आहार और मानव भोजन में उपयोग के लिए स्टारलिंक का विपणन करने के लिए आवेदन किया था। हालांकि, क्योंकि क्राई 9 सी प्रोटीन अन्य बीटी प्रोटीनों की तुलना में पाचन तंत्र में अधिक समय तक रहता है, अतः ईपीए को इसकी एलर्जी के बारे में चिंता थी, और स्टारलिंक के निर्माता ने यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत प्रदान नहीं किया कि क्राई 9 सी नुकसानदायक नहीं है। परिणामस्वरूप, स्टारलिंक के निर्माता ने अपने आवेदन को भोजन में उपयोग और पशु आहार में उपयोग के लिए अलग–अलग परमिट में विभाजित कर दिया। स्टारलिंक को ईपीए द्वारा केवल मई 1998 में पशु आहार में उपयोग के लिए अनुमोदित किया गया था।

स्टारलिंक मक्का बाद में अमेरिका, जापान और दक्षिण कोरिया में मनुष्यों द्वारा उपभोग के लिए नियत भोजन में हो गया। बाद में पचास लोगों ने एफडीए को प्रतिकूल प्रभाव की सूचना दी। यूएस सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल (सीडीसी), जिसने निर्धारित किया कि उनमें से 28 संभवतः स्टारलिंक से संबंधित थे। हालांकि, सीडीसी ने इन 28 व्यक्तियों के रक्त का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि स्टारलिंक बीटी प्रोटीन के प्रति अतिसंवेदनशीलता का कोई सबूत नहीं है। वर्ष 2005 में, संयुक्त राष्ट्र और अमेरिका द्वारा मध्य अमेरिकी देशों को भेजी गई सहायता में कुछ स्टारलिंक मकई भी शामिल थी। लेकिन शामिल राष्ट्रों जैसे कि, निकारागुआ, होंडुरास, अल सल्वाडोर और ग्वाटेमाला ने सहायता स्वीकार करने से इंकार कर दिया।

मक्का की उन्नत किस्में –कुछ विशेष गुणों वाली संशोधित मक्का की उन्नत किस्में इस प्रकार हैं–

- अति शीघ्र पकने वाली किस्में (75 दिन से कम)– जवाहर मक्का – 8, विवेक – 4, विवेक – 17 विवेक – 43 विवेक – 42 और प्रताप हाइब्रिड मक्का –1 आदि प्रमुख है।
- शीघ्र पकने वाली किस्में (85 दिन से कम)– जवाहर मक्का – 12, अमर, आजाद कमल, पंत संकुल मक्का – 3, चन्द्रमणी, प्रताप – 3, विकास मक्का – 421, हिम –129, डीएचएम – 107, डीएचएम – 109 पूसा अरली हाइब्रिड मक्का – 1, पूसा अर्ली हाइब्रिड मक्का – 2, प्रकाश, पीएमएच – 5, प्रा – 368, एक्स – 3342, डीकेसी –

7074, जेकेएमएच – 175 और हाईशेल व बायो – 9637 आदि प्रमुख है।

- मध्यम अवधि में पकने वाली किस्में (95 दिन से कम)– जवाहर मक्का – 216, एचएम – 10, एचएम – 4, प्रताप – 5, पी – 3441, एनके – 21, केएमएच – 3426, केएमएच – 3712 एनएमएच – 803 और बिस्को दृ 2418 आदि मुख्य है।
- देरी की अवधि में पकने वाली (95 दिन से अधिक)– गंगा – 11, त्रिसुलता, डेक्कन – 101, डेक्कन – 103, डेक्कन – 105, एचएम – 11, एलक्यूपीएम – 4, सरताज, प्रो – 311, बायो – 9681, सीडटैक – 2324, बिस्को– 855, एनके – 6240 और एसएमएच – 3904 आदि प्रमुख है।

विशिष्ट मक्का की किस्में–

- बेबीकॉर्न – वी एल – 78, पीईएचएम – 2, पीईएचएम– 5 और वी एल बेबी कॉर्न –1 आदि।
- पॉपकॉर्न – अम्बर पॉप, वी एल अम्बर पॉप और पर्ल पॉप आदि।
- स्वीट कॉर्न – माधुरी, प्रिया, विन ओरेंज और एससीएच– 1 आदि ।
- उच्च प्रोटीन मक्का कृ एच क्यूपीएम– 1, 5 व 7, शक्तिमान 1, 2, 3 व 4 और विवेक क्यूपीएम – 9 आदि।
- पशु चारा किस्मे – जे – 1006, प्रताप चरी – 6 और अफ्रीकन टॉल इत्यादि है।

मक्का की कम्पोजिट जातियां–

- सामान्य अवधि वाली– चंदन मक्का –1
- जल्दी पकने वाली– चंदन मक्का –3
- अत्यंत जल्दी पकने वाली– चंदन सफेद मक्का –2

तालिका 2: मक्का बीज उत्पादक कम्पनियों की संकर एवं उन्नत किस्में

कंपनी	किस्म
महिको	3765, एमआरएम 3824, एमएम एच– 65/69/ ईएच–114, एमएमएच 3816 (तृप्ति), एमडब्ल्यूएम 107,एमएम एच–3899/3816/3504/8825,1765, 3499
नाथ बायोजीन	नाथ सम्राट, डान, सफेद (अर्ली) 95011, पीला 1008, एनडब्ल्यू एमएच –95011, 2002, बिगबॉस, सिंघम (एनएमएच –02)
जे.के. एग्री जेनेटिक्स	जेके सुरभि गोल्ड, उजाला, जेके एमएच 1001,502, 045, 1701
गंगा कावेरी	जी. के. 3059, 3060 पीली, जीके 777, 3344, 3077
नुजीवीडू सीड्स	संध्या, सन्नी, अजय, स्वर्णा, एनएमएच 234 कामधेनु, एनएमएच 117,सिंधु, एनएमएच 360 कृष्णा, एनएमएच 666 संध्या, 713, 731, 777, सुन्नी 220
श्रीराम बायोसीड	बायोसीड, 9681, 9636, 9637, 9690, 9220, 9718, 6221
आर्या	अनमोल, अमूल्य
मानसेंटो	डीकाल्ब हाईशैल, डीकाल्ब ऑल राउण्डर, डबल, प्रबल, 900 एम
विभा एग्रोटेक	भूम, इडेन, इलाईट, सुपर हाईक्रान
बिस्को सीड टेक	कोहिनूर, सोना, सूरज, कनक–51, सीड टेक–7, 40, 65
सिन्जेन्टा इंडिया लि.	स्वर्णा, मुक्ता, एनके 6240, डब्ल्यू 855 (व्हाईट), एनके 30
निर्मल सीड्स	निर्मल 2,5,51, 511, 666
पायोनियर सीड्स	30 वी–92, 30 आर 26, 30 आर 77, 31 वाय 45, 32 ए 09, डब्ल्यू, 3054 डब्ल्यू (सफेद), 32 टी25, पी3 501, पी3 521, पी3 540
जुआरी सीड्स	जेएमएच 203,सी–101,117, 119, 109
कावेरी सीड्स	केएमएच– 218, 25 के 60, सुपर 2020, 10 डब्ल्यू 10, 3426, 3712, प्राफिट, 2589, 25 के 45 बम्पर, 3110, सुपर 244, 2288 सुपर, 2288 एक्का
बायर क्रॉप साइंस	4212, 4640, 4642, 4643, 4644, 4646 (पीली), 4794 (सफेद)
एडवांटा इंडिया	पीएसी–740, 745, 781
अजीत सीड्स	वज्र, सूर्या, गोल्डी, मयूर, अनमोल
स्प्रिहा	एस 4717, 601, एसएम 1, एसएम2
यशोदा हाइब्रिड	यशोदा व्हाईट, भुट्टा, यशोदा गोल्ड
अताश सीड्स	युवराज, मोती, टाइटन

नूसन जेनेटिक्स	अमेज, लीजेंड, मेक
रासी सीड्स	टिपटॉप, टाप स्टार
कृषि धन सीड्स	धबल, एंजाय 75, महाराजा 999, नरेन्द्र एम 909, प्रचंड 21, एसएमएच 8181, सुपर महाराजा 999, व्हाईट क्विन
धान्या सीड्स	1107, 7314, 8255, डीएमएच 849

उपसंहार

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार एक आम सहमति है कि वर्तमान में जीएम फसलों से प्राप्त भोजन पारंपरिक भोजन की तुलना में मानव स्वास्थ्य के लिए कोई बड़ा खतरा नहीं है, लेकिन प्रत्येक जीएम भोजन को परिचय से पहले जीएम मानको के आधार पर जांचना अत्यंत आवश्यक है। बहरहाल, जीएम खाद्य पदार्थों को सुरक्षित मानने के लिए वैज्ञानिकों की तुलना में जनता के सदस्य बहुत कम हैं। जीएम खाद्य पदार्थों की कानूनी और विनियामक स्थिति देशों द्वारा भिन्न होती है, कुछ देशों ने उन पर प्रतिबंध लगाने या प्रतिबंधित करने के साथ, और अन्य ने उन्हें व्यापक रूप से विनियमन की डिग्री के साथ अनुमति दी है। हालांकि, विरोधियों ने पर्यावरणीय प्रभावों, खाद्य सुरक्षा सहित जीएम फसलों पर आपत्ति जताई है, चाहे जीएम फसलों को खाद्य जरूरतों को संबोधित करने के लिए आवश्यक हो, चाहे वे विकासशील देशों में किसानों के लिए पर्याप्त रूप से सुलभ हों और फसलों को बौद्धिक संपदा कानून के, आदि चिंतित विषय के संबंध में आधार रखे हैं। इन सुरक्षा मुद्दों ने यूरोप में 38 देशों को आधिकारिक तौर पर जीएम खेती करने पररोक लगा दी हैं। हालाकि पिछले 25 वर्षों में, जीएम फसल उत्पादन में 100 गुना वृद्धि भी हुई है। जिस तरह से भारत ने कपास की खेती को वृहद स्तर पर अपनाकर देश में कपास का उत्पादन बढ़ाया है उसी तरह से आनुवंशिक रूप से संशोधित मक्के की फसल को भी अपनाना चाहिए ताकि इससे जुड़े हुए किसान भी और अधिक मुनाफा कमा सकें। साथ ही में संबन्धित खाद्य उद्योग भी सुचारु रूप से लाभदायक व्यवसाय कर आमदनी बढ़ा सकें।

अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबन्धु तो हो गया, किन्तु भारतबन्धु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा ।

– बंकिम चन्द्र चट्टोपाय

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

– कमलापति त्रिपाठी

आम की जैव विविधता तथा मृदा स्वास्थ्य–एक विश्लेषण

तरुण अदक, घनश्याम पांडेय एवं विनोद कुमार सिंह
भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेलः Tarun.Adak@icar.gov.in

जैव विविधता के रखरखाव, तथा अन्य जैविक संरक्षण जैसे पेड़, जंगलों, फसलों, घास के उत्तम प्रबंधन के लिए मृदा पोषक तत्व तथा मिट्टी की उर्वरता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आम की जैव विविधता को बनाये रखने एवं संरक्षण के लिए किसानों को अच्छे प्रयास करनं चाहिये तथा देशी आम को बागों की सही तरीके से देखभाल करना चाहिए। इससे आम की पुरानी प्रजातियाँ संरक्षित की जा सकती हैं। हाल के एक अध्ययन में देखा गया कि किसानों ने बिना किसी वित्तीय सहायता के बिहार और झारखंड में आम की विभिन्न प्राजाति के 15 से 36 किस्मों का संरक्षण किया। उत्तरप्रदेश के मलिहाबाद क्षेत्र में आम की विविधता में प्रसिद्ध 'दशहरी' के साथ–साथ अन्य प्रजातियों के आम के बागों में मिट्टी की उर्वरता भी बनाये रखना अति आवश्यक है। मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा और वितरण के आकडे यह दर्शाते है कि बाग प्रबंधन के लिए उतकृष्ट प्रौद्योगिकी को अपनाना जरुरी हैं। बोरॉन और पोटेशियम पोषक तत्व की मात्रा अति आवश्यक हैं। उपज और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बागवानी फसलों में सूक्ष्म पोषक प्रबंधन पर भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान की परियोजना के परिणामों में आम की विभिन्न प्राजाति में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी दिखाई दी। वैज्ञानिको ने वृक्षारोपण द्वारा नई किस्म तथा विलुप्त होती पुरानी देशी प्रजातियों के संरक्षण को बनाये रखने की आवश्यकता बतायी। भा.कृ.अनु.प. –केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ में बनाए गए आम की जैव विविधता को उत्कृष्ट रूप से संरक्षण करने के लिए मृदा उर्वरता प्रबंधन को भी सम्मलित किया गया है। इस लेख के माध्यम से जैव विविधता तथा संरक्षण के बारे में वर्णन किया गया है ताकि पाठकगकों को उत्तम जानकारी मिल सकें तथा जैव विविधता संरक्षण में आवश्यक रूप से भागीदार बन सकें।

जैव विविधता तथा पोषक तत्वों का विश्लेषण

लंबी अवधि में कृषि की तीव्रता एवं गहनता में मिट्टी की गुणवत्ता घट जाती है। मिट्टी में जैविक कार्बन, पीएच, पोटैशियम, फॉस्फोरस और सूक्ष्म पोषक तत्वों की मत्राए कम हो जाती है। संतुलित मात्रा में इन सभी कारको का प्रयोग करने से मृदा स्वास्थ्य तथा उपज पर साकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लम्बी अवधि के बाद, बागों में फल उत्पादन के दौरान, मृदा के भौतिक गुणों में परिवर्तन हो जाता है। इसके लिए सही माध्यम एवं उपायों को कार्यान्वयन करने की आवश्यकता है। एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि चिनार घनत्व आधारित कृषि–आधारित कृषि प्रणाली के 10 से 30 वर्षों में थोक घनत्व कम हो गया, हालाँकि मृदा प्रोफाइल के भीतर 0–15 से 60–90 सेमी के घनत्व का मान बढा है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कालांतर से कृषि आधारित प्रणाली में वृधि हुई और अनुपलब्ध तत्वों का रासायनिक पुनः रुपणकर (कार्बोनेट स्थित और क्रिस्टलीय आयरन–ऑक्साइड्स) कर आसानी से उपलब्ध होते है (पानी में घुलनशील) और मिट्टी में संभावित रूप से उपलब्ध भी होते है (मैंगनीज–ऑक्साइड्स स्थित और अनाकार आयरन–ऑक्साइड्स स्थित)। इनकी मात्रा कालांतर से प्रचलित कृषि प्रणाली में चार फसल चक्र और परती/ऊबड़–खाबड़ भूमि से ज्यादा पाया गया। सोयाबीन की उत्पादकता और जैव विविधता का समर्थन करने के लिए, मिट्टी में डी.टी.पी.ए. निकालने योग्य निकेल की मात्रा में कमी और मिट्टी और पत्तियों में (पुष्पन अवस्था शुष्क भार में सूखे वजन के आधार पर) क्रमशः 0.17 और 0.20 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम के रूप में अंकित किया गया। गेहूं में फॉस्फोरस की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए, नाइट्रोजन–फॉस्फोरस की पॉलीमर कोटिंग प्रौद्योगिकी को तैयार किया गया और इसका प्रयोग भी किया गया। वास्तव में देखा गया हैं कि मृदा गुण और भौगोलिक दूरी भी नाशपाती के बागों में अर्बुसकुलर मायकोरिजल कवक में भिन्नता को प्रभावित करती है। सघन बागवानी वाले परिपक्व ओलिव के बाग की बालुई दोमट मिट्टी में, विभिन्न मृदा प्रबंध प्रणालियों जैसे प्राकृतिक घास कवर के संरक्षण जुताई, कार्बन अनुक्रम, जीवों के लिए निवास स्थान

तथा विविधता, और पानी की उपलब्धता को प्रभावित करती हैं। एक क्षेत्र में हुए शोध से यह निष्कर्ष निकला कि नई और पुरानी चेरी के बागों में मृदा सूक्ष्म जीवो की गतिविधि को प्रोत्साहित करने के लिए मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों के उच्च स्तर का होना एवं उसका रखरखाव अति आवश्यक हैं। यूरिया और कैल्शियम क्लोराइड के छिड़काव के परिणामस्वरूप अनार के फलो के आकार, व्यास, वजन, फल की लंबाई और एस्कॉर्बिक एसिड की मात्रा में वृद्धि पायी गयी। अनार में फलो की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता को प्रोलीन और ट्रिप्टोफैन के उपचार के माध्यम से भी प्रबंधित किया गया। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, और काषमंडीकला, लखनऊ में आम की जैव विविधता को संरक्षण किया गया है (चित्र 1, 2 एवं 3) ।

चित्र 1. भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, डाकघर–काकोरी, लखनऊ, यूपी, भारत के क्षेत्रों में आम के जैव विविधता को बनाए रखने एवं संरक्षण कि जा रहा है।

चित्र 2. काशमंडीकला, मलीहाबाद, लखनऊ, यूपी, भारत में पुराने आम के जैव विविधता बनाए हुए थे।

चित्र 3. केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा में पुराने आम के जैव विविधता संरक्षण

चित्र 4. दशहरी आम की उपज में विविधता

मृदा स्वास्थ्य और उपज में विविधता

भारत में पूर्वी पठारी क्षेत्र के आम जैवमंडल में, नये अध्ययन के द्वारा पीएच, कार्बनिक कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, मैंगनीज, आयरन जिंक, बोरोन और कॉपर के स्थानिक परिवर्तनशीलता को आम की बागों के बीच बड़े पैमाने पर इंगित किया गया। आम की बागों में मिट्टी की गहराई में वृद्धि के साथ–साथ पीएच, कैल्शियम और मैग्नीशियम के मात्रा में वृद्धि हुई जबकि जैविक कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस ,पोटैशियम, आयरन, मैंगनीज, जिंक और कॉपर में कमी आई है। इससे यह भी पता चला कि मिट्टी के रासायनिक गुणों की परिवर्तनशीलता प्रबंधन प्रणालियों जैसे उर्वरक, अवशेष प्रबंधन आदि स्थानीय परिस्थितियों (स्थलाकृति,जलवायु आदि) से जुड़ी है और निष्कर्ष निकाला गया है कि आम की जैव विविधता को बनाए रखने के लिए पूरे क्षेत्र के लिए बाग की विशिष्ट उर्वरता प्रबंधन सुझाओं पर गहनता से विचार किया जाना चाहिए। मृदा संसाधन प्रबंधन के माध्यम से नीबू की जैव विविधता को बनाए रखा जा सकता है। उत्कृष्ट पोषक तत्व एवं छत्रक प्रबन्धन से आयल पाम की उपज 30.0 टन प्रति हैक्टर प्रति वर्ष प्राप्ति हुई है जबकि 28.8 टन प्रति हैक्टेयर उपज किसानों द्वारा पारम्परिक खेती से दर्ज की हैं। रबड़ की फसल प्रणाली को बनाए रखने के लिए तथा किसानों की आजीविका सुरक्षा के लिए फल, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, पशुधन, सूअर पालन और अन्य कृषि फसलों के साथ इसका एकीकरण प्राथमिक रूप से आवश्यक हैं। रबर बागानों की मोनोकल्चर कम लाभदायक है। वन तल में सूक्ष्मजीवों कि विविधता और मिट्टी के पोषक तत्वों, पानी की गतिशीलता और भौतिक गुणों में परिवर्तन सूक्ष्मजीव द्धारा मध्यस्थता का एक कारक बनते हैं। ग्रासलैंड बायोस्फीयर एक विशिष्ट पारिस्थितिक प्रणाली है जो ज्यादातर जलवायु–सूक्ष्मजीव अन्त्रिक्रयाए पर आधारित है, विविधता को बनाए रखने के लिए मृदा की स्वास्थ्य की स्थिति का नेतृत्व का कार्य करती है। चित्र 4 मृदा स्वास्थ्य में अन्तर आने के लिए दशहरी आम के उपज में विविधता दर्शाती है। चित्र 5 एंव 6 दर्शाती है कि, बिलुप्त होने वाली आम की पुरानी किस्मो जैसे चौसा, गौरजीत, हुष–ए–आरा और रामकेला को उत्कृष्ट मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन द्वारा संरक्षण किया जाना चाहिए ।

चित्र 5. चौसा और गौरजीत आम की किस्मों की संरक्षण किया जाना चाहिए

बायोक्रॉस्ट और इन की उपयोगिता

जैविक मिट्टी क्रस्ट या बायोक्रॉस्ट साइनोबैक्टीरिया, शैवाल, लाइकेन, काई, कवक और अन्य जीवाणु के एक जटिल समुदाय से मिलकर बनती है जो कि मिट्टी के ऊपर वाले हिस्से में रहते हैं। वे मृदा सतहों को स्थिर करने की अपनी क्षमता के फलस्वरूप वायु और पानी के कटाव से मिट्टी के नुकसान को कम करने में महत्वपूर्ण क्षमता को दर्शाते है। इस बीच, मिट्टी के कटाव पर बायोक्रॉस्ट्स के प्रभाव से विश्व भर में कई अध्ययन किए गए हैं। परिणाम में पाया गया कि बायोक्रॉस्ट की उपस्थिति के कारण मिट्टी का कटाव कम हो गया है। मृदा सतह प्रतिरोध क्षमता वर्षा की क्षीणता को बायोकॉस्ट द्वारा काफी बढ़ा दिया गया था। वर्षा की गतिज ऊर्जा के साथ बायोकॉस्ट की प्रतिरोध क्षमता मिट्टी की बनावट, मौसमी भिन्नता और मृदा ढलान से संबंधित थी। सायनोबैक्टीरियल क्रस्ट्स द्वारा संचित रेनड्रॉप काइनेटिक

ऊर्जा गाद या दोमट भूमि की तुलना में बलुई पर क्रस्ट्स के लिए कम थी। गाद या दोमट की तुलना में मॉस क्रस्ट में बलुई पर प्रतिरोध क्षमता काफी अधिक थी। मानसून और मानसून के बाद के दौरान, बायोक्रॉस्ट की प्रतिरोधक क्षमता प्री–मानसून से अधिक थी। ढलान में वृद्धि के साथ वर्षा की कटाव के लिए बायोक्रॉस्ट की प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती हैं। मृदा सतह समुदायों में सायनोबैक्टीरिया, काई, लिवरवॉर्ट्स, कवक, यूकेरियोटिक शैवाल और लाइकेन (जैविक मिट्टी क्रस्ट या बायोक्रॉस्ट) शामिल हैं, और दुनिया भर में कई स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों के महत्वपूर्ण बायोटिक घटक, उष्णकटिबंधीय से ध्रुवों तक, जिसमें वे पारिस्थितिकी तंत्र संरचना और प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावशाली रूप से प्रभावित करते हैं। बायोक्रॉस्ट चरम स्थितियों में जीवन के प्रतिरोध और लचीलापन के साथ–साथ सभी अक्षांशों में विभिन्न जलवायु कारकों के संयोजन के लिए एक उल्लेखनीय अनुकूलन दिखाते हैं। जीव विज्ञान के सभी पहलुओं पर शोध और पारिस्थितिक तंत्र पर उनके प्रभाव, पारंपरिक रूप से कुछ देशों, जैसे अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इजरायल और जर्मनी में शोधकर्ताओं द्वारा निष्कर्ष निकाला गया। चीन, स्पेन और मैक्सिको जैसे देशों में कई समूहों के भागीदारी के साथ वास्तव में वैश्विक अनुसंधान एक प्रयास का कारक बन गया है। मिट्टी की जल विज्ञान भी जैविक मिट्टी की क्रस्ट्स से प्रभावित हो सकती है। मिट्टी की इन्फिल्ट्रेशन दर पर प्राप्त प्रभाव के साथ, जो मुख्य रूप से जैविक मिट्टी के क्रस्ट और प्रक्रिया में शामिल मिट्टी के प्रकार से संबंधित है। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि जैविक मिट्टी की परतें मिट्टी की भौतिक–रासायनिक विशेषताएं भी बनाए रख सकती हैं और वे मिट्टी पीएच मान को बदल सकती हैं। जैविक मिट्टी की उत्तक आधरित प्रक्रियाओं में प्रासंगिक हैं और कामकाज और पारिस्थितिकी तंत्र की गतिशीलता को, मुख्यतः शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों को समझने के लिए आवश्यक हैं। स्थलीय वनस्पति के कारण क्रिप्टोगैमिक कवर कुल कार्बन इनपुट के 7 प्रतिशत तक के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं और जैविक नाइट्रोजन निर्धारण की कुल राशि का लगभग 50 प्रतिशत। हाल के अध्ययनों से संकेत मिलता है कि लाईकेन से जुड़े समुदायों में जीवाणु की एक विस्तृत वर्गीकरण विविधता शामिल है। अन्य सूक्ष्मजीवों जैसे कि हेटरोट्रॉफिक जीवाणु आर्किया और कवक के साथ–साथ मैक्रोस्कोपिक लाइकेन और ब्रायोफाइट्स के साथ, सायनोबैक्टीरिया और शैवाल जैविक मिट्टी के क्रस्ट के सबसे महत्वपूर्ण फोटोट्रॉफिक घटक हैं। इन समुदायों को "इकोसिस्टम इंजीनियरों" के जल–स्थिर समुच्चय के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है नाइट्रोजन चक्र, खनिज, जल धारण, और मृदा का स्थिरीकरण के लिए प्राथमिक उत्पादन में महत्वपूर्ण, बहुक्रियाशील पारिस्थितिक भूमिकाएँ होती हैं। एक प्रयोग में शीर्ष क्रस्ट में सरंध्रता को 35.32, 39.68 और 50.13 प्रतिशत साइनो, लाईकेन और मॉस में पाया गया, जबकि उप–क्रस्ट में, संबंधित मात्रा क्रमशः 50.74, 37.25 और 41.68 प्रतिशत थे। इसके अलावा कालाहारी में घास, झाड़ियो और पेड़ो के बीच जीवाणु समुदाय में भी महत्वपूर्ण अंतर दर्ज किया गया था।

चित्र 6. हुश–ए–आरा और रामकेला आम की किस्मों की जैव विविधता संरक्षण

जैव विविधता पर जैविक आक्रमण का एक विश्लेषण

विदेशी प्रजातियों द्वारा जैविक आक्रमण देशी जैव विविधता, पारिस्थितिक प्रक्रियाओं, कृषि प्रणालियों, मानव स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर इसके बुरे प्रभावों को वैश्विक पर्यावरण परिवर्तन के मुख्य कारको में से एक के रूप में माना गया है। दुनिया भर में जैविक आक्रमण को जैव विविधता पर हानि और पारिस्थितिकी तंत्र परिवर्तन के प्रमुख कारण में से एक के रूप में मान्यता दी गयी हैं। जलवायु परिवर्तन–एकीकृत आक्रमण प्रबंधन रणनीति के इस चक्र में मुख्य और सबसे बड़ी चुनौती को जानना है कि वर्तमान जलवायु परिस्थितियों में आक्रामक प्रजातियां कहां हो सकती हैं और भविष्य में जलवायु परिवर्तन के अनुसार इसकी स्थापना या प्रसार की संभावना का अनुमान भी लगा सकते हैं। इस तरह की जानकारी आक्रमण के आकर्षण के केंद्र के प्राथमिकता के लिए महत्वपूर्ण है, जल्दी पता लगाने और तेजी से प्रतिक्रिया प्रणाली को लागू करने तथा मजबूत आक्रमण नीति ढांचे को विकसित करने के लिये प्रयास करना आवश्यक हैं। हाल के दिनों में, पारिस्थितिक आधारित मॉडल का व्यापक रूप से आक्रमण पारिस्थितिकीविदों द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से प्रजातियों के भौगोलिक वितरण और सीमा पारियों पर प्रभाव की जांच के लिए किया गया है। ये मॉडल स्थानीय संरक्षण के अंतर्निहित सिद्धांत पर काम करते हैं और जलवायु और अन्य संबंधित कारको के साथ प्रजातियों के वितरण रिकॉर्ड को एकीकृत करते हैं साथ ही प्रजातियों के संभावित वितरण के नक्शे भी तैयार करते हैं। एक जानकारी के अनुसार भारत में पार्थेनियम की वजह से कई फसलों में 40 प्रतिशत तक की उपज की हानि हुई है और लगभग 90 प्रतिशत चारा उत्पादन में कमी आई है। पार्थेनियम नुकसान के कारण इसके भविष्य की प्रबंधन के लिए जलवायु परिवर्तन परिदृष्य का उपयोग करके इसकी विविधता की भविष्यवाणी की गई हैं। यहां तक कि, ध्वनिक सूचकांकों का उपयोग करके जैव विविधता का तेजी से मूल्यांकन एक संभावित विकल्प हो सकता है जिसे सतत विकास लक्ष्यों के जैव विविधता संकेतक उत्पन्न करने के साधन के रूप में अपनाया जा सकता है। पादप समृद्धि पैटर्न और ढाल के साथ कार्यात्मक विविधता पर अध्ययन जैव विविधता विश्लेषण के लिए भी उपयोगी थे और पेड़ के भीतर माईक्रो क्लाइमेट मात्रा का ठहराव भी समग्र पारिस्थितिकी तंत्र के कामकाज के लिए मिट्टी–पेड़–जलवायु के सम्बन्धो को दर्शाता है।

उपसंहार

सर्वोत्तम उपलब्ध ज्ञान पर आधारित नीति बनाने की प्रक्रिया के लिए समाज के कई नीति क्षेत्रों में मांग बढ़ रही है। जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का प्रबंधन पारंपरिक या स्वदेशी ज्ञान से प्रयोगात्मक और विज्ञान–आधारित समझ के लिए ज्ञान का एक व्यापक स्पेक्ट्रम उत्पन्न करता है। जिसके बदले में निर्णय निर्माताओं की ज्ञान की जरूरतें इस स्पेक्ट्रम को दर्शाती हैं और ज्ञान इकट्ठा करने और संश्लेषण के तरीके अनिश्चितता के प्रकारों तथा सामना किए गए सामाजिक संदर्भों पर निर्भर करते हैं और निर्णय लेने की जिनकी आवश्यकता होती है। पौधों, जीव जन्तुओ में पायी जाने वाली विभिन्नता, विषमता और पारिस्थितकीय जटिलता ही जैव विवधिता के अंतगर्त आती है। परिसिथतिकीय तन्त्र में संतुलन स्थापित रखने के लिए जैव विविधता का बने रहना आवश्यक है। आर्थिक, औषधि पर्यावरण समाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में जैव विविधता का महत्व है। इसी को देखते हुए सयुक्तसंघ राष्ट्रीय द्वारा 22 मई को अंतर राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस घोषित किया गया। जल और मृदा सरक्षण विधियों को अपनाकर जैव विविधता को बचाया जा सकता है। जैव विविधता का मृदा निर्माण, मृदा अपरदन की रोकथाम, जल संसाधनो की सुरक्षा, मृदा पोषक तत्व चक्र, प्रदूषण के अपघटन में और जलवायु की स्थिरता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान है। बागवानी सीधे तौर पर मृदा से सम्बन्धित है। बागवानो की उन्नति मृदा स्वास्थ्य और जैव विविधता पर निर्भर करती है। स्वस्थ मृदा तो स्वस्थ किसान इसी सोच के आधार पर जैविक विविधता और मृदा उत्पादकता को सुरक्षति करने की नीति का अनुपालन किसानो द्वारा किया जाना अपेक्षित है। जैव विविधता और मृदा सरक्षण प्रौद्योगिकियों को अपनाकर बागवानी में जोखिम घटाने में सहायता मिल सकती है।

भारत में जैविक खेतीः परिचय, मूलभूत सिद्धांत, संभावनाये व महत्व

राधेश्याम[1], नवीन मलिक[1], शंकर लाल जाट[2], सी एम परिहार[1], भूपेंदर कुमार[2], कृष्ण कुमार[2], हरनारायण मीना[3], हरिशंकर नायक[1], प्रीति तिग्गा[1], प्रवीण कदम[1], अनुप कुमार[1], अरविन्द तोमर[1] एवं भरत राज मीना[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली

[2]भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, पूसा केम्पस, नई दिल्ली

[3]भाकृअनुप– कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान जोधपुर (राजस्थान)

संवादी लेखक का ई–मेलः radheshyamsihag01@gmail.com

भारत में हरित क्रांति के समय से अधिक अनाज पैदा करने के लिए रसायनों, दवाईयों व रसायनिक उर्वरको का अंधाधुंध तरीके से उपयोग होने लगा। इस रासायनिक खेती से आशा के अनुरूप अनाज उत्पादन में बढ़ोतरी हुई बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य, मृदा स्वास्थ्य व कृषि पारिस्थितिकी तंत्र पर दुष्प्रभाव साफ दिखाई देने लगा। आजादी से पहले भारत में रसायनों व उर्वरको की ज्यादा उपलबध्ता नही थी। पारम्परिक रूप से बिना किसी रसायनों व उर्वरको के खेती की जाती थी। जिसमे खाद के रूप में गोबर की खाद व दवाईयों के रूप में देशी घरेलू नुस्खे जैसे नीम के उत्पाद, गाय का गोबर व मूत्र आदि उपयोग में लाकर खेती की जाती थी। जिसमे अनाज की गुणवत्ता के साथ मृदा की शुद्धता व पर्यावरण का संतुलन बना रहता था। वर्तमान में इस रसायनिक खेती के दुष्प्रभाव को देखते हुए यह आवश्यकता महसूस होने लगी की अंधाधुंध तरीके से उपयोग होने वाले रसायनों को कम से कम करके या पूर्ण रूप से उपयोग न करके उसकी जगह जैविक घटक जैसे जैविक खाद व जैविक दवाईयों आदि के साथ वैज्ञानिक तकनीकों का समन्वेष करके गुणवत्ता युक्त फसल उत्पादन लेना जैविक खेती कहलाता है। जिससे रसायनिक खेती से होने वाले दुष्प्रभाव को कम से कम करके मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण संतुलन के साथ शुद्ध व सत्तत कृषि उत्पादन किया जाता है।

जैविक खेती की परिभाषाः आईफोम के अनुसार, "जैविक खेती, खेती करने का वह तरीका है जिसमे पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखते हुए भूमि, जल और वायु को प्रदुषित किये बिना लम्बे समय तक सतत कृषि उत्पादन किया जाता है। इस खेती में रसायनों का कम से कम उपयोग करके जैविक उत्पादों का उपयोग किया जाता है।"

जैविक खेती के मूलभूत सिद्धान्त

पारम्परिक रूप से की जाने वाली खेती व आधुनिक जैविक खेती में काफी अन्तर है। वर्तमान में जैविक घटकों के उपयोग के साथ शस्य प्रबंधन का वैज्ञानिक तरीके से समन्वेष करके खेती की जाती है। जिसमे जल, वायु व मृदा में उपस्थित लाभदायक जीवों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है। आइफोम, 2017 के अनुसार यह मुख्यतः चार सिद्धांतो पर आधारित है।

1. स्वास्थ्य का सिद्धांतः जैविक खेती में मृदा को एक जीवित माध्यम माना जाता है। जिसमें पृथ्वी व वातावरण में उपस्थित सभी जीवों के आपसी सांमजस्य और उनके स्वास्थय का ध्यान रखना अति आवश्यक है।

2. पर्यावरण का सिद्धांतः जैविक खेती में रसायनों का उपयोग पूर्णतया प्रतिबंधित है। इसमें जैविक घटकों को उपयोग में लाकर खेती की जाती है। वातावरण में उपस्थित जीवों का आपसी सांमजस्य स्थापित करके पर्यावरण को प्रदुषित होने से बचाया जाना आवश्यक है।

3. सह अस्तित्व का सिद्धांतः वातावरण और मृदा में उपस्थित लाभकारी जीवों को पहचान कर उनको बिना हानि पहुंचाऐ किसान का मित्र बनाकर उनसे लाभ प्राप्त करते है। जिसमें स्थानीय कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बनाए रखना जरूरी है।

4. लाभ का सिद्धांतः फसल उत्पादन की पूरी प्रक्रिया में बिना किसी नुकसान के कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना आवश्यक है।

जैविक खेती के उद्देश्य

1. रसायनिक खाद व उर्वरकों के उपयोग पर पूर्णतया प्रतिबंध लगाकर जैविक खाद तथा जैविक खेती में उपयोग होने वाले अन्य जैविक घटकों का इस्तेमाल करना।
2. रसायनिक खादों की जगह कार्बनिक व जैविक खादों को

तैयार करके खेती करना।

3. प्राक्रतिक स्त्रोत जैसे भूमि, जल, वायु व उर्जा का सदुपयोग करके उनका संरक्षण करना।
4. मनुष्य के स्वास्थ्य को बचाए रखने के लिए शुद्ध व जहर मुक्त गुणवत्ता युक्त कृषि उत्पाद का उत्पादन करना।
5. शुद्ध व टिकाऊ उत्पादन करके अधिक मूल्य प्राप्त करना जिससे किसानों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके।
6. पर्यावरण का संरक्षण करके वातावरण को साफ व प्रदूषण मुक्त रखना।
7. कृषि पारस्थितिकी तंत्र में संतुलन बनाकर फसल उत्पादन में सत्तत विकास करना।

भारत में जैविक खेती का आगमन

भारत में वर्ष 1993 में कृषि मंत्रालय द्वारा गठित तकनीकी समिति ने सिद्धान्तिक रूप से अनुमोदित किया की रसायनिक खेती के अधिक प्रचलन को हतोत्साहित करके जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उसको देखते हुए अप्रैल, 2000 में 'राष्ट्रिय जैविक उत्पाद कार्यक्रम' की शुरुआत की। 1 जुलाई, 2001 को भारत सरकार ने 'जैविक उत्पाद प्रमाणिकरण' के लिए एपीडा को अधिकृत एजेंसी बनाया गया वर्ष 2004 में' राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र', गाज़ियाबाद (उ.प्र.) में स्थापित किया गया। हाल ही के पिछले वर्षों में सरकार ने जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए 'परम्परागत कृषि विकास योजना' की शुरुआत की। इसके साथ ही 18 जनवरी, 2016 को सिक्किम को देश का प्रथम 'जैविक राज्य' घोषित किया गया जो एक देश में जैविक खेती का मोडल राज्य उभरकर सामने आया।

भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के जैविक खेती नेटवर्क परियोजना, राष्ट्रिय जैविक कृषि अनुसंधान संस्थान तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञानं केंद्र व नीजी संगठन आदि, जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए समय–समय पर अंनुसन्धान, प्रसार और प्रशिक्षण प्रदान कर रहे है। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने वर्ष 2017 में प्रथम 'जैविक खेती स्कूल' की स्थापना की। जो जैविक खेती के बारे में प्राथमिक शिक्षा से जागरूकता लाने का काम रहा है।

भारत में जैविक खेती लगभग 5.71 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर की जाती है। जिसमे से 26 प्रतिशत यानि 1.49 मिलियन हेक्टेयर कृषित क्षेत्र तथा 74 प्रतिशत यानि 4.22 मिलियन हेक्टेयर जंगल व वन्य क्षेत्र है स जिसमें से 263687 मिलियन टन निर्यात करके लगभग 298 मिलियन डोलर अमेरिकी मुद्रा कमाई जाती है। भारत में जैविक खेती के अग्रणी राज्य मध्य प्रदेश है। इसके पश्चात हिमाचल प्रदेश व राजस्थान आता है।

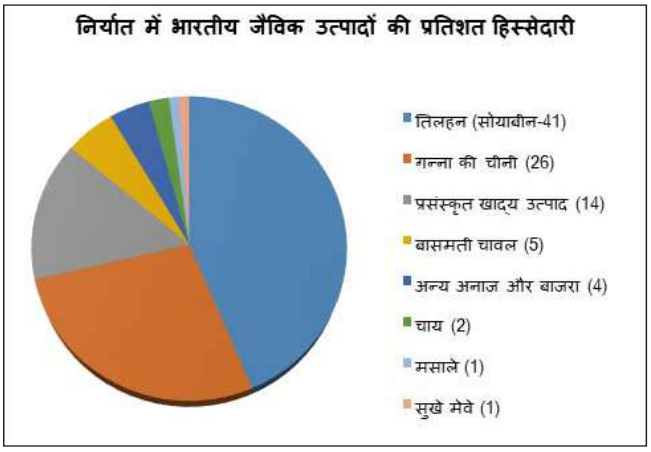

http://www.apeda.gov.in–(2020)

खेत से रसोई तक जैविक उत्पाद की प्रकिया

भारत में जैविक खेती की संभावनाये

1. जलवायु विविधता व संसाधनों की उपल्बध्ता।
2. खेत की छोटी जोत व प्रति इकाई रसायनों का कम उपयोग।
3. पशुधन समन्वेष व जैव–विविधता।

4. प्रमाणिकरण संस्थाओं की व्यवस्था व निर्यात की संभावना।
5. परम्परागत स्थानीय तकनीकों की उपल्बध्ता व किसानों का प्राचीन अनुभव।

उपरोक्त संभावनाओं को देखते हुए भारत की खेती को नई दिशा देकर खेती में एक नया मोड़ लाकर टिकाउपन तथा सतत कृषि उत्पादन किया जा सकता है।

जैविक खेती में किये जाने वाले आवश्यक उपाय

जैविक कृषि अपनाकर प्राक्रतिक संसाधनों का संरक्षण करके खेती पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। जिससे खेती को एक नई दिशा देकर टिकाऊ उत्पादन लिया जा सकता है।

जैविक खेती अपनाने की प्रकिया में प्रथम चरण में कुछ बातों पर ध्यान देना जरूरी है–

पशुधन–खेती समन्वयः पशुधन जैविक खेती का मुख्य घटक है। पशु खेत के लिए निवेश के रूप में उपयोग होने वाले जैविक उत्पाद उपलब्ध करवाते है। साथ ही दुग्ध उत्पादन के लिए काफी लाभदायक होते है। अतः पशुओ का समन्वेष जैविक खेती के लिए अति आवश्यक है।

मृदा– समद्धशीलताः मृदा को समद्ध बनाने के लिए, रसायनों का उपयोग बंद करना, अधिक से अधिक फसल अवशेष का खेत में ही मल्चिंग के रूप में उपयोग करना, जैविक खाद जैसे वेर्मी कम्पोस्ट, तरल खाद (पंचगव्य, अमृतपानी) आदि का उपयोग करना, कम जुताई करना और फसल चक्र में दलहनि फसलों का समन्वेष करके मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखकर खेती में टिकाऊ पन लाया जा सकता है।

तापक्रम प्रबंधनः खेत की मृदा का तापक्रम उचित बनाये रखने के लिए खेत के अवशेष को खेत में ही रखकर मल्चिंग करना, जिसमे मृदा में लाभदायक जीवांश की मात्र में वृद्धि की जा सकती है।

खेती निवेश में आत्मनिर्भरताः जैविक खेती में उपयोग होने वाले जैविक निवेशों को स्वयं किसान खेत पर ही तैयार करके खेती में लागत को कम करके अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

प्राक्रतिक स्त्रोतों का संरक्षणः प्राक्रतिक स्त्रोत जैसे जल, वायु, भूमि व उर्जा का समुचित उपयोग करके वातावरण को दूषित होने से रोका जा सकता है। साथ ही जल का संरक्षण करके उसको खेती के उपयोग में लाया जा सकता है।

जैव–विविधताः लाभदायक जीवों की संख्या में बढ़ोतरी करके मित्र कीटों को अपनाया जाता है। जिससे कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन बना रहता है। और खेती को टिकाउ बनाया जा सकता है।

जैविक खेती में उपयोग होने वाले मुख्य तरल खाद

जैविक खेती में मृदा को समद्ध व उपजाऊ बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की खाद तेयार की जाती है। जिसमे मुख्यता प्रयोग होने वाली तरल खाद इस प्रकार है–

संजीवकः गोबर, गौमूत्र व गुड़ को आपस में मिलाकर संजीवक तैयार किया जाता है। जिसमे गोबरः गोमूत्र : गुड़ : पानी को 100 किलोग्राम : 100 लिटर : 500 ग्रामः 300 लिटर के अनुपात में मिलाकर एक 500 लिटर क्षमता वाले ड्रम में डालकर 10 दिन के लिए छोड़ दिया जाता है। इस मिश्रण को 20 गुना पानी के साथ मिलाकर प्रति एकड़ या फिर सिंचाई पानी के साथ फसल में दिया जाता है।

जीवामृतः इसको बनाने के लिए 10 किलोग्राम गाय का गोबर, 100 लिटर गौमूत्र, 2 किलोग्राम गुड़, 2 किलोग्राम दाल का आटा या बेसन और 1 किलोग्राम पेड़ के नीचे की जीवंत मिट्टी को 200 लिटर पानी में मिलाकर 5–7 दिनों तक सड़ने दिया जाता है। इसको नियमित रूप से हिलाते है। यह एक एकड़ के लिए पर्याप्त होता है।

अमृतपानीः 10 किलोग्राम गाय के गोबर के साथ 500 ग्राम शहद मिलाकर लुगदी बना ले। उसके बाद 250 ग्राम गाय का देशी घी मिलाकर 200 लिटर पानी में घोल तैयार किया जाता है। यह घोल 30 दिनों के अन्तराल पर प्रति एकड़ डाला जाता है।

पंचगव्यः 5 किलोग्राम गाय का गोबर 3 लिटर गौमूत्र, 2 लिटर गाय का दूध, 2 लिटर दही व 1 किलोग्राम गाय का मख्खन लेकर मिश्रण तेयार करते है। इसको 7 दिनों तक

सड़ने के लिए छोड़. देते है। नियमित रूप से मिश्रण को 2 बार हिलातें है। 7–10 दिनों में मिश्रण बनकर तेयार हो जाता है। इस मिश्रण की 3 लिटर मात्र लेकर 100 लिटर पानी के साथ मिलाकर 1 एकड़ में छिड़काव किया जाता है।

दंशगव्यः 5 किलोग्राम गाय का गोबर, 3 लिटर गौमूत्र, 2 लिटर गाय का दूध, 2 लिटर दही व 1 किलोग्राम गाय का देशी घी, 3 लिटर गन्ने का रस, 3 लिटर कच्चे नारियल का पानी व एक दर्जन केलों को मसलकर तैयार पेस्ट और 2 लिटर ताड़ी या अंगूर का रस मिला लेते है। एक पात्र में गाय का गोबर व देशी घी मिलाकर 3 दिनों तक सड़ाते है। बाद में सभी को मिलाकर 15 दिन तक रख देते है। लगभग 18–20 दिन में दंश गव्य तेयार हो जाता है। मुख्यतया इसका प्रयोग बीजोपचार के लिए करते है।

जैविक खेती का महत्व

1. जैविक खेती अपनाने से भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है जिससे अधिक फसल उत्पादन लिया जा सकता है।
2. रसायनों का उपयोग नहीं करने से खेत और खेती दोनों को विष मुक्त किया जा सकता है।
3. रसायनिक खेती से पड़ने वाले दुष्प्रभाव को कम करके मृदा, जल व वायु का सदुपयोग किया जाता है।
4. जैविक घटकों का उपयोग करके खेती के साथ–साथ पशुधन को भी बढ़ावा मिलता है।
5. जैविक खेती में मित्र कीटों की पहचान करके उससे खेती में लाभ लिया जा सकता है। जिससे हानिकारक कीटों व रोगों को 'आर्थिक–नुकसान–स्तर' से निचे लाया जा सकता है।
6. मृदा में लाभकारी जीवांश को बढ़कर मृदा स्वास्थ्य को मजबूत बनाया जा सकता है। जिससे जलवायु परिवर्तन से प्रभावों को कम करके मृदा में उसके प्रति लचीलता बना सकते है।
7. पैदावार में गुणवत्ता लाकर अधिक बाजार भाव ले सकते है।
8. जैविक खेती अपनाकर पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत बनाकर खेती को इको–फ्रेंडली व टिकाऊ बनाया जा सकता है।

भारत में जैविक खेती अपनाने में बाधाएं

मृदा को रासायनिक खेती से जैविक खेती में बदलने में समय लगता है। रसायनिक खेती में मृदा में अधिक रसायनों के कारण मृदा जीवांश बहुत कम हो जाता है। जो जैविक खेती अपनाने के 3–5 साल बाद मृदा जीवांश में बढ़ोतरी होती है। जैविक खेती अपनाने के शुरुवाती समय यानि 3–5 साल तक उत्पादन कम मिलता है। जो किसानों के लिए लाभकारी नही होता परन्तु इसमें सरकार द्वारा प्रोत्साहन से किसान जैविक खेती की और जा सकता है। इसके अलावा जैविक खेती में उपयोग होने वाले जैविक स्त्रोत का उचित समय, उचित स्थान और उचित दाम पर न मिलना भी किसानों को हतोत्साहित कर रही है। जैविक खेती की जटिल प्रमाणिकरण प्रणाली, किसानों का जागरूक न होना व उचित स्थान पर जैविक उत्पाद के बाजार की कमी आदि बाधाएं जो जैविक खेती को हतोत्साहित कर रही है।

सारांश

वर्तमान की रसायनिक खेती से मृदा, जल, वायु व कृषि–पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को कम करके, वातावरण को साफ रखते हुए गुणवत्ता युक्त कृषि उत्पादन व खेती को भविष्य में टिकाऊ बनाकर सत्तत विकास करने में जैविक खेती काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है। साथ ही परम्परागत कृषि ज्ञान को आधुनिक कृषि तकनीकों, सरकार द्वारा प्रोत्साहन तथा वातावरण में उपस्थित लाभदायक जीवों का आपसी सामंजस्य स्थापित करके कृषि परिथितिकी को मजबूत बनाया जा सकता है। स्थानीय कृषि ज्ञान से खेत में निवेश किये जाने वाले उत्पाद तैयार कर कम लागत पर अधिक लाभ कमा सकते है। वर्तमान के जलवायु परिवर्तन के प्रति लाचिलता लाकर भविष्य की खेती को समृद्ध बनाने में काफी लाभदायक सिद्ध पाया जा सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में अकालो का तुलनात्मक अध्ययन एंव प्रबंधन

सुरेन्द्र पूनियॉ
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेलः Surendra.Poonia@icar.gov.in

खेती मानसून का जुआ है, और वर्षा हुई तो खेती, नही तो छेती अर्थात कोई फसल नही, आदि कहावतें पश्चिमी राजस्थान के सन्दर्भ में आज भी पूर्णतया सही है। अकाल एक ऐसी प्राकृतिक आपदा जिसके कारण किसानो की फसलों को प्रायः किसी न किसी रूप से हानि होती रहती है। ऐसी परिस्थितियों में किसान की माली हालत दिन–प्रतिदिन खराब हो रही है। भारत के पश्चिमी राजस्थान प्रदेश पर वर्षों से प्रकृति की कृपा दृष्टि नहीं रही है। अकाल एवं जलवायु परिवर्तन इस क्षेत्र में कोढ़ में खाज का कार्य रही है। भारत का गर्म शुष्क क्षेत्र (लगभग 61.9 प्रतिशत भू–भाग) मुख्य रूप से पश्चिमी राजस्थान के 12 जिलों में फैला हुआ है। समुद्री स्त्रोतों से सुदूर स्थित होने के अलावा स्थाई उच्च दबाव के कारण इस क्षेत्र में मानसूनी वर्षा के वितरण एवं मात्रा की अनिश्चितता बनी रहती है। साथ ही सर्दियों में उच्च देशांतर से पश्चिमी विक्षोभों के कारण ठण्डी हवाऐं तथा कोहरे की स्थिति फसलों को बहुत अधिक नुकसान पहुँचाती है।

भारत में मानसून का समय मुख्यतः जून से सितम्बर तक का होता है। मानसून काल में पूरे भारत में 880 मि.मी. वर्षा होती हैं। इसमें राजस्थान में कुल औसत वर्षा 530 मि.मी. तथा पश्चिमी राजस्थान में कुल औसत वर्षा 306 मि.मी. ही होती है। राजस्थान के थार मरूस्थल में मानसून लगभग जुलाई के प्रारम्भ तक पहुँचता है तथा यहाँ से 15 सितम्बर के आस पास वापस लौटना प्रारम्भ कर देता है।

शुष्क राजस्थान में वार्षिक वर्षा का औसत 185 मिमी (जैसलमेर) से 467 मिमी (सीकर) में देखा गया है। वार्षिक वर्षा का लगभग 80–90 प्रतिशत हिस्सा पश्चिमी मानसून के कारण आता है जो कि खरीफ फसलों के लिये वर्षा करता है। मई अथवा जून के शुरूआत में अरब सागर से उत्पन्न हुआ दबाव पूर्वी एवं उत्तर पूर्व दिशा की तरफ बढ़ता है एवं बरसात करता है। लेकिन इसका आगमन दो–तीन वर्षों में एक बार होता है। पश्चिमी विक्षोभों के कारण खासकर सर्दियों में बरसात होती है जिससे रबी फसल को मदद मिल जाती है। अल्प एवं अनिश्चित वर्षा के कारण शुष्क राजस्थान में अकाल की पुनरावृत्ति होती ही रहती है।

भारतीय प्रायद्वीप में अकाल का प्रभाव

एक अध्ययन के अनुसार हमारे देश की भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 120 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र अकाल के लिये संवेदनशील है। भारतीय प्रायद्वीप में अकाल का मुख्य कारण दक्षिण–पश्चिम मानसून की वर्षा का असफल होना है। वैश्विक परिसंचरण और अकाल के बीच एक अध्ययन से विदित हुआ कि दक्षिणी दोलन (Southern Oscillation) की एल–नीनों (Elnino) अवस्था (ENSO) का भारत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह ग्रीष्मकालीन अकाल का कारण बनने के साथ सर्दियों में वर्षा का कारण भी बनती है। इन सबका मूलभूत कारण जलवायु में परिवर्तन है जो कि संपूर्ण पृथ्वी को जल थल एवं वायु तीनों मार्गों से प्रभावित कर रहा है। बाढ़ एवं सूखे को मौसम बदलाव के एक प्रमुख प्रभाव के रुप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि एवं वाष्पीकरण की दर तीव्र होने के परिणाम स्वरुप सूखा ग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। गौरतलब है कि विश्व मौसम संगठन की आइ.पी.सी.सी. ने दक्षिणी एशिया में वर्ष 2025 तक 0.4 से 1.1 डिग्री सेल्सियस तापमान, वर्ष 2050 तक 0.8 से 2.6 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 21 वीं सदी तक 1.4 से 5.8 डिग्री सेल्सियस तापमान में बढोत्तरी की आशंका व्यक्त की है। भारतीय प्रायद्वीप में वर्ष 2020 तक 1.0 से 1.4 डिग्री सेल्सियस तापमान, वर्ष 2050 तक 2.2 से 2.9 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 2080 तक 3.5 से 5.5 डिग्री सेल्सियस तापमान में बढ़ोत्तरी की आशंका व्यक्त की हैं (स्त्रोतः लाल, आदि, 2001) जो कि अकाल के पैर पसारने का एक स्पष्ट संकेत साबित हो सकता है।

पश्चिमी राजस्थान में कृषि पर अकाल का प्रभाव

हर पाँच साल में अकाल का दो बार आगमन जैसे शुष्क क्षेत्रों की परंपरा में शामिल हो कर प्रकृति का नियमित हिस्सा बन गया है, जिसने यहाँ की उत्पादकता को प्रभावित करने के साथ मरुस्थलीकरण को बढ़ावा दिया है। पिछले दशकों की तुलना में 2000–2009 के दशक में भारतीय शुष्क क्षेत्र में अकाल की पुनरावृत्ति में वृद्धि देखी गयी है। वर्ष 1901 के बाद उन्नत उपकरणों एवं डोक्युमेंटेशन से विभिन्न तीव्रताओं वाले अकालों को काजरी द्वारा रिकार्ड किया गया जिसका संक्षिप्त विवरण तालिका 1 में दिया गया है। इसके अनुसार वर्ष 1987 और 2002 अकाल के मामले में सबसे भयानक वर्ष माने गये जबकि 19 वें दशक का सबसे भयंकर अकाल वर्ष 1918 को माना गया है। भारत मौसम विज्ञान विभाग ने वर्ष 2009 को 1901 के बाद चौथा सबसे सूखाग्रस्त वर्ष घोषित किया था। 1903–05, 1957–60, 1966–70, 1984–87 और 1997–2002 एवं 2009 के दौरान दो से छः वर्षों में विभिन्न तीव्रताओं के अकाल इस क्षेत्र में प्रायः देखे गये है (चित्र 1)। परिणामस्वरूप फसल, चारा उत्पादन, भूमिगत जल और पीने योग्य जल की उपलब्धता बुरी तरह प्रभावित हुई। वर्ष 1901 से 2012 के बीच पश्चिमी राजस्थान ने मध्यम एवं तीव्र क्षमताओं वाले 58 अकाल देखें हैं और इनमें से 5 ऐसे भी अवसर आये जब लगातार अकाल पड़े। वर्ष 1903–05, 1957–60, 1966–70, 1984–87 और 1997–2002 एवं 2009 राजस्थान के लिये दुर्दिन लेकर आने वाले थे। इसी तरह वर्ष 1918, 1987, 2002, और 2009 के अकाल बहुत ही विकराल थे जब वर्षा सामान्य से क्रमशः –81, –65, –70 और –40 प्रतिशत कम हुई।

शुष्क क्षेत्रों में कृषिगत एवं मौसमीय अकाल की आवृत्ति अन्य क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक है। पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्र (जिसमें 12 जिले शामिल है) में वर्ष 1901–2012 के दौरान साल के 49 से 60 प्रतिशत समय में अकाल की अनूभूति की गयी। कभी–कभी लगातार वर्षों में इसकी पुनरावृत्ति ने पशुपालन को कई तरीके से प्रभावित किया। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि सौ साल की अवधि में एक वर्ष प्रचुर मात्रा में पैदावार (शत–प्रतिशत), पाँच

तालिका 1 : पश्चिमी राजस्थान में विभिन्न तीव्रताओं वाले अकाल की आवृत्ति

जिला	अवधि	निम्न	मध्यम	तीव्र	योग
बाड़मेर	1901-2012	22	18	22	62 (56)
बीकानेर	1901-2012	22	21	13	56 (50)
चुरू	1906-2012	34	17	05	56 (53)
गंगानगर	1926-2012	20	13	15	48 (56)
हनुमानगढ़	1906-2012	17	16	19	52 (49)
जैसलमेर	1901-2012	15	23	23	61 (55)
जालोर	1901-2012	30	17	16	63 (57)
झुंझनु	1901-2012	28	20	09	57 (51)
जोधपुर	1901-2012	24	22	16	62 (56)
नागौर	1901-2012	29	22	14	65 (59)
पाली	1901-2012	18	30	11	59 (53)
सीकर	1901-2012	23	21	15	59 (53)
पश्चिमी राजस्थान		24	20	15	58 (54)

कोष्ठक ( ) में दिये गये अंक कुल अकाल वर्ष का प्रतिशत हैं।

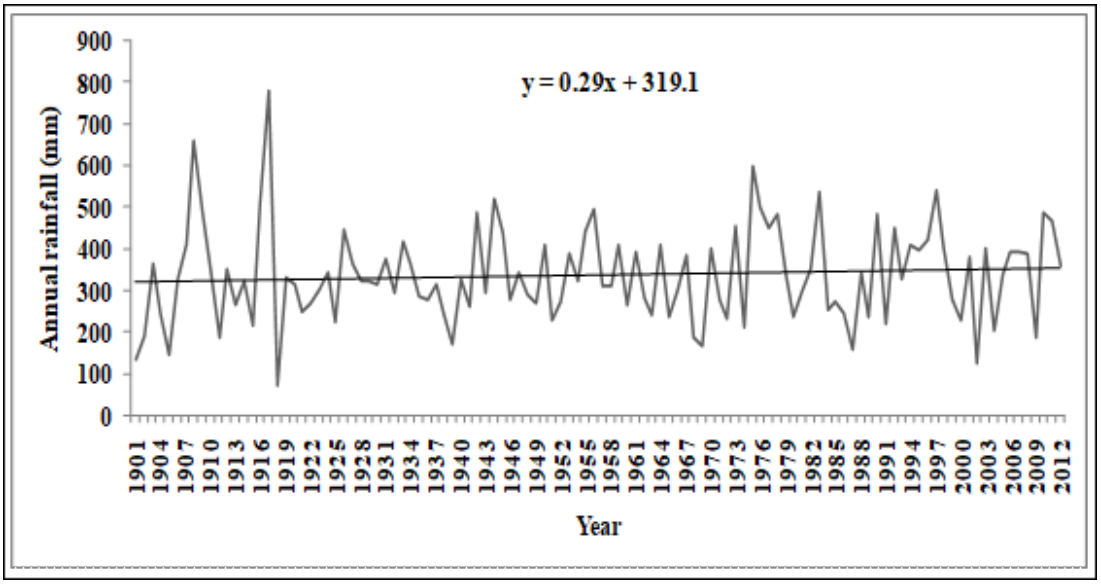

चित्र–1: पश्चिमी राजस्थान में दीर्घ अवधि वार्षिक वर्षा का ट्रेण्ड

वर्ष में औसत उत्पादन (60–75 प्रतिशत), तीन वर्ष में कम पैदावार (40–60 प्रतिशत) तथा एक वर्ष अकाल का होता है। इस क्षेत्र में वर्षा की अनियमितता एवं अनिश्चितता के साथ अकाल एवं सूखा इस क्षेत्र की तकदीर में शामिल हो चुके है। गौरतलब है कि वर्ष 1917 में जोधपुर जिले में 1100 मिली मीटर वर्षा दर्ज की गयी।

राजस्थान का जैसलमेर जिला कृषिगत अकाल के लिये सर्वाधिक संवेदनशील है। वर्ष 1901–2012 के दौरान इस क्षेत्र में वर्ष के 70 प्रतिशत समय (43 प्रतिशत तीव्र एवं 27 प्रतिशत मध्यम तीव्रता वाले) कृषिगत अकाल देखा गया। जिससे अनाज एवं चारा उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हुआ। जैसलमेर के बाद राज्य का बाड़मेर जिला आता है जहाँ पिछले 100 वर्षो की अवधि में 50 प्रतिशत वर्ष (30 प्रतिशत तीव्र एवं 20 प्रतिशत मध्यम तीव्रता वाले) भीषण अकाल के थे। इसी तरह बीकानेर जिले ने 48 प्रतिशत वर्ष (23 प्रतिशत तीव्र एवं 25 प्रतिशत मध्यम तीव्रता वाले) भीषण अकालों का सामना किया जबकि जोधपुर जिले में ये समय 45 प्रतिशत (17 प्रतिशत तीव्र एवं 28 प्रतिशत मध्यम तीव्रता वाले) वर्षो का था। राजस्थान पर अकाल की मार शुरू से रही है किन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण कुछ क्षेत्रों में अतिवृष्टि, अनपेक्षित वर्षा एवं अकाल मुष्किलें खड़ी कर देती हैं। वर्ष 1998, 1999, 2000 और 2002 के अकाल के दौरान पश्चिमी राजस्थान में बाजरे के उत्पादन में (जो कि यहाँ की प्रमुख फसल है) क्रमशः 52, 74, 38 एवं 86 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी (चित्र 2)। इसके अलावा दलहनी फसलों के उत्पादन में 53 से 89 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी। इसी तरह पशुधन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव देखा गया है की वर्ष 1985, 1986 एवं 1987 लगातार तीन वर्षो तक अकाल के कारण पशुओं की सख्या में 26 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी।

चित्र 2. पश्चिमी राजस्थान में अकाल के कारण बाजरे की चौपट फसल

अकाल के समय सरकार द्वारा चलाए जाने वाले राहत कार्य

निःसंदेह भोजन, चारा और जल संसाधानों में कमी के द्वारा, अकाल मनुष्य एवं पशुधन को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों तरीकों से प्रभावित करता है। अकाल के कारण विशेषकर

शुष्क क्षेत्रों में फसलों की बुवाई अनिश्चित हो जाती है परिणामतः लोगों के रोजगार भी नहीं मिल पाता है। जिसके कारण लोग रोजी–रोटी की खोज में पड़ोसी राज्यों की तरफ पलायन करने लगते है (चित्र 3)। परंतु अकाल के समय यह स्थिति विकराल रुप धारण कर लेती है। यद्यपि सरकार द्वारा अकाल राहत कार्यों में लोगों को अस्थायी रोजगार प्रदान किया जाता है लेकिन यह पर्याप्त नहीं होता, इसलिये घर की महिलायें राहत कार्य रोजगार पर जाती है और पुरुष राज्य से बाहर रोजगार तलाशते हैं (चित्र 4)। जिससे बच्चों का पालन–पोशण एवं शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जुलाई का महीना जहाँ सबसे गीला महीना माना जाता है, वर्ष 2002 में यह सबसे सूखा महीना साबित हुआ परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश को लगभग 24 मिलियन टन अनाज का नुकसान भुगतान पड़ा। अकाल के समय राज्य सरकार की सरकारी संस्थाओं द्वारा पशुओं के लिए चारा वितरण किया जाता है (चित्र 5)।

चित्र 3. पश्चिमी राजस्थान में अकाल के समय पलायन

चित्र 4. पश्चिमी राजस्थान में अकाल के समय राहत कार्य

चित्र 5. अकाल के समय सरकारी संस्थाओं द्वारा चारा वितरण

अकाल से निपटने के लिए योजनाएँ

यदि ऐसा कहे कि शुष्क क्षेत्र अकाल का स्थायी निवास स्थल है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसलिये इन क्षेत्रों में इसका प्रबंधन एक रणनीति द्वारा ही संभव है। यद्यपि अकाल अथवा मानसून के लम्बी अवधि के पूर्वानुमान हमेशा अनिश्चितता भरे होते है, फिर भी भारतीय मौसम विभाग के उच्चस्तर के पूर्वानुमान तंत्र, राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पुर्वानुमान केन्द्र एवं कृषि सहालकार सर्विसेज के टर्म फोरकास्ट, काजरी द्वारा विकसित अकाल तकनीक और अन्य अनुसंधान संस्थानों के पर्याप्त संसाधन और सूचना तकनीक पूर्व की अपेक्षा अब अकाल से निपटने में अधिक सक्षम है। राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पुर्वानुमान केन्द्र, भारत मौसम विज्ञान विभाग, नई दिल्ली द्वारा साप्ताहिक आधार पर की जाने वाली भविश्यवाणी अकाल की स्थिति को मोनीटर करने में अहम भूमिका निभा रही है। लम्बी अवधि के महासागरीय एवं मौसमीय आकड़ों का एकत्रीकरण तथा मानसून और अकाल के पुर्वानुमान माडल के विकास के लिये उनका विश्लेषण एवं रिमोट सेन्सिग आकड़ों को मौसमीय आकड़ों के साथ समायोजित करके अकाल के पुर्वानुमान/मोनीटरिंग को और अच्छी तरह से सुधारा जा सकता है।

निष्कर्षः

वर्ष 1901 के बाद उन्नत उपकरणों एवं डोक्युमेंटेशन से विभिन्न तीव्रताओं वाले अकालों को काजरी द्वारा रिकार्ड किया गया। इसके अनुसार वर्ष 1987 और 2002 अकाल के मामले में सबसे भयानक वर्ष माने गये जबकि 19 वें दशक का सबसे भयंकर अकाल वर्ष 1918 को माना गया है। वर्ष

1901 से 2012 के बीच पश्चिमी राजस्थान ने मध्यम एवं तीव्र क्षमताओं वाले 58 अकाल देखें हैं और इनमें से 5 ऐसे भी अवसर आये जब लगातार अकाल पड़े। वर्ष 1903–05, 1957–60, 1966–70, 1984–87 और 1997–2002 एवं 2009 राजस्थान के लिये दुर्दिन लेकर आने वाले थे। इसी तरह वर्ष 1918, 1987, 2002, और 2009 के अकाल बहुत ही विकराल थे जब वर्षा सामान्य से क्रमशः –81, –65, –70 और –40 प्रतिशत कम हुई। वर्ष 1998, 1999, 2000 और 2002 के अकाल के दौरान पश्चिमी राजस्थान में बाजरे के उत्पादन में (जो कि यहाँ की प्रमुख फसल है) क्रमशः 52, 74, 38 एवं 86 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी। इसके अलावा दलहनी फसलों के उत्पादन में 53 से 89 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी। इसी तरह पशुधन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव देखा गया है की वर्ष 1985, 1986 एवं 1987 लगातार तीन वर्षो तक अकाल के कारण पशुओं की सख्या में 26 प्रतिशत की गिरावट देखी गयी। भारतीय मौसम विभाग के उच्चस्तर के पूर्वानुमान तंत्र, राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पुर्वानुमान केन्द्र एवं कृषि सहालकार सर्विसेज के टर्म फोरकास्ट, काजरी द्वारा विकसित अकाल तकनीक और अन्य अनुसंधान संस्थानों के पर्याप्त संसाधन और सूचना तकनीक पूर्व की अपेक्षा अब अकाल से निपटने में अधिक सक्षम है।

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

– राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता।

– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

फसल उत्पादन में मूल परिवेश (राइजोस्फेरिक) जीवाणुओं की भूमिका

चेतन कुमार जी.[1], अमित कुमार[4], जयराम चौधरी[2], प्रकाश चन्द घासल[2], ललित कृष्ण मीणा[2], देबाशीष दत्ता[2], अमृत लाल मीणा[2], निशा वर्मा[2] एवं रंजना[3]

[1]भाकृअनुप– भारतीय बागवानी अनुसन्धान संस्थान, बंगलुरु (कर्नाटक)
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ (उत्तर प्रदेश)
[3]गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड)
[4]भाकृअप–विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
संवादी लेखक का ई–मेल: jairam.choudhary@icar.gov.in

पादप वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) मुक्त–जीवित मूल परिवेश (राइजोस्फीयर) जीवाणु के समूह हैं जो पौधों की जड़ों को सक्रिय रूप से उपनिवेशित करते हैं तथा पौधे के विकास पर लाभकारी प्रभाव डालते हैं। ये कई जीवाणु वंशों जैसे कि एक्टिनोप्लेन, एग्रोबैक्टीरियम, अल्कालिजेनस, अमोर्फोस्पोरनियम, आर्थ्रोबैक्टीरियम, एजोटोबेक्टर, बैसिलस, सेल्युलोमोनास, एंटरोबैक्टीरिया, एरविनिया, फ्लेवोबैक्टीरियम, स्यूडोमोनास, राइजोबियम और ब्रैडीराइजोबियम आदि से संबंधित हैं। राइजोबैक्टीरिया (पी.जी.पी.आर.) विभिन्न प्रकार से पौंधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करते हैं। ये स्वयं के उपापचय का उपयोग करके (मृदा फॉस्फेट को घोलकर, हार्मोन का उत्पादन कर या नाइट्रोजन को भूमि में स्थिरीकृत कर) या पौधे के उपापचय जैसे कि पानी और खनिजों के अधिग्रहण में वृद्धि, जड़ विकास तथा एंजाइमैटिक गतिविधि को बढ़ाकर पौंधों को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये जीवाणु पौधों के लिए लाभदायक अन्य सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ाकर या पौधे में रोगजनक जीवों को नष्ट करके पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं।

मिट्टी की उर्वरता और फसल की पैदावार में सुधार के संदर्भ में राइजोबैक्टीरिया की इन क्षमताओं का बहुत महत्व है, इस प्रकार यह पर्यावरण पर रसायनिक उर्वरकों के नकारात्मक प्रभाव को कम करता है। पिछले एक दशक के दौरान विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे कि मक्का, चावल, गेहूं, सोयाबीन और सेम आदि में पीजीपीआर का उपयोग करने की विधि तथा उनके क्रिया तंत्र को संक्षेप में इस लेख में प्रस्तुत किया गया है तथा साथ ही साथ उनपर परिचर्चा भी की गई है।

कृषि क्षेत्र में उच्च उत्पादकता को बनाए रखने के लिए हमें पर्यावरणीय स्थायी कृषि को अपनाने के साथ–साथ पारिस्थितिक तंत्र और जैव विविधता को भी बनाए रखना होगा। पीजीपीआर मिट्टी के जीवाणु होते हैं जो पौधों के प्रकंद को उपनिवेशित करते हैं। वे पौधों के ऊतकों में या उसके आसपास रहते हैं और कई प्रक्रियाओं द्वारा पौधे की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

पीजीपीआर पौधे के स्वास्थ्य और विकास को बढ़ावा देते हैं, रोगकारी जीवाणुओं को अवरोधित करते हैं और पोषक तत्वों की उपलब्धता को फसलों के लिए बढ़ाते हैं। कुछ फसल विशिष्ट पीजीपीआर और फसल वृद्धि पर उनके प्रभाव का विवरण नीचे दी गयी तालिका में दिया गया है।

तालिका–फसल विशिष्ट पीजीपीआर और फसल वृद्धि पर उनके प्रभाव

फसल	सूक्ष्मजीव	विकास को बढ़ावा देने वाली गतिविधि
मक्का	एजोटोबैक्टर, बेसिलस प्रजाति, बुर्खोल्डेरिआ प्रजाति, एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे, माइकोबैक्टेरियम ओलियोवॉरंस, माइकोबैक्टीरियम फेली, बेसिलस पोलीमेक्सा, तथा एक्रोमोबेक्टर	मुक्त जीवी नाइट्रोजन स्थिरिकारक सहचारी नाइट्रोजन स्थिरिकारक फायटोस्टिम्युलेशन जैव नियंत्रण पोषक तत्व उदग्रहण

धान	बुर्खोल्डेरिआ, एजोस्पिरिलम, बेसिलस, पैनीबैसिलस, ब्रेवंडिमोनस, सेराटिया, हर्बस्पिरिलम, जैंथोमोनस तथा स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस,	लवण सहनशीलता फायटोस्टिम्युलेशन जैव नियंत्रण
गेहूँ	एएमएफ कवक, ग्लोमस प्रजाति, बेसिलस सर्कुलन्स, बैसिलस सबटिलिस, क्लैडोस्पोरियम हर्बेरम, आथ्रीबेक्टर प्रजाति, स्यूडोमोनस जेसेनी, स्यूडोमोनस सिंगेन्था, प्रोविदेंषिया प्रजाति, ऐनाबिना प्रजाति, कैलोथ्रिक्स प्रजाति तथा एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे	बायोफर्टीलाइजेसन लवण सहनशीलता जैव नियंत्रण
सोयाबीन	सेराटिया प्रोटामाकूलेन्स, सेराटिया लिकैफिएन्स, ब्रैडिराइजोबियम जैपोनिकम, बेसिलस सबटिलिस, बैसिलस थुरिंजेंसिस, पैबिबैसिलसुरिजोफेसेर, पैनीबैसिलसफैविस्पोरस तथा ग्लोमसस एटोमिसस	बायोफर्टीलाइजेसन लवण सहनशीलता राइजोरेमेडिएशन
सेम	राइजोबियम ट्रोपिसी, राइजोबियम एटलि, एजोस्पिरिलम ब्रासिलेंस, ग्लोमस सिनुओसम, गिगास्पोरा एल्बीडा, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, ट्राइकोडर्मा तथा एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे	बायोफर्टीलाइजेसन जैव नियंत्रण सिडेरोफोर उत्पादन
सभी फसलें	एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम ब्रासीलेंसे, एजोस्पिरिलम लिपोफेरुम, बेसिलस पुमिलुस, बेसिलस सबटाइलस, बेसिलस सरेउस, बुर्खोल्डेरिआ, स्यूडोमोनास पुतिदा, स्यूडोमोनास फ्लूरेसेंस तथा राइजोबियम लेगुमिनोसोरम	फाइटोस्टिम्युलेशन (पादप उत्तेजन) जैव नियंत्रण

पीजीपीआर द्वारा फसल वृद्धि की क्रियाविधियाँ

पीजीपीआर द्वारा फसल वृद्धि की विभिन्न क्रियाविधियाँ तथा उनका विवरण निम्न प्रकार है।

पोषक तत्वों का अधिग्रहण

मुक्त जीवी सहजीवी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरिकारक जीवाणु नाइट्रोजीनेस एन्जाइम की सहायता से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त अमोनिया को पौधों द्वारा नाइट्रोजन के स्त्रोत के रूप में उपयोग कर लिया जाता है। पी.जी.पी.आर. जीवाणु समूह के द्वारा फसलों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्शियम , पोटेशियम, आयरन, कॉपर मैंगनीज तथा जिंक इत्यादि पोषक तत्वों का अधिग्रहण काफी मात्रा में बढ़ जाता है। पोषक तत्वों का यह बढ़ा हुआ अधिग्रहण सामान्यतः मूलरोम परिवेश (राइजोसफेयर) के अम्लीकरण द्वारा होता है तथा यह अम्लीकरण उपर्युक्त परिवेश में जैविक अम्लों के स्राव के कारण होता है। इस प्रकार मृदा के पी.एच.मान में गिरावट के कारण पोषक तत्व अधिक घुलनशील अवस्था में पहुँच जाते हैं तथा फसलों द्वारा सुलभता से अवषोषित कर लिए जाते हैं।

तनाव सहिष्णुता

पी.जी.पी.आर. आबादी प्रदूषित स्थल पर दूषित पदार्थों का अपघटन करने में सहायता प्रदान करती है जिसके फलस्वरूप विभिन्न प्राकृतिक वनस्पतियां दूषित स्थल पर आसानी से विकसित होती हैं। विभिन्न जीवाणुओं के समूह को वैज्ञानिक भाषा में जीवाणु कंसोर्शिया भी कहा जाता है। जीवाणु कंसोर्शिया का प्रत्येक साथी कैटाबोलिक क्षरण के विभिन्न भागों को पूरा कर सकता है। पौंधे तनाव की स्थिति में एथिलीन के स्तर को बढाकर प्रतिक्रिया करते हैं जिससे कोशिका और पौधे की क्षति में वृद्धि होती है। एथिलीन की उच्च सांद्रता हानिकारक हो सकती है क्योंकि यह निश्पत्रण और अन्य कोशिकीय प्रक्रियाओं को प्रेरित करती है जो फसल के विकास को प्रभावित कर सकती हैं। कई पीजीपीआर एसीसी डीऐमीनेज एंजाइम के उत्पादन से 1–एमिनोसाइक्लोप्रोपेन–1–कार्बोक्जिलेट, एथिलीन प्रणेता को नष्ट करते हैं जिससे एथिलीन का सांद्रण कम हो जाता

है। इस प्रकार कम हुए एथिलीन स्तर के कारण फसलों का वृद्धि तथा विकास सहजता से होता है। इसके अतिरिक्त अन्य तनावों जैसे कि फाइटोपैथोजेनिक बैक्टीरिया, पोलीरोमैटिक हाइड्रोकार्बन के प्रभाव, अत्यधिक लवणता और अनावृष्टि आदि से भीएसीसी डीऐमीनेजएंजाइम उत्पादकों द्वारा राहत मिलती है।

फायटोस्टिम्युलेशन

विभिन्न प्रकार के पी.जी.पी.आर. फसलों की जड़ों की बनावट को परिवर्तित कर सकते हैं। ये जीवाणु विभिन्न पादप हार्मोन्स जैसे कि इण्डोल–3 ऐसेटिक एसिड, जिबरेलिन्स तथा साइटोकाइनिन इत्यादि को स्रावित करते हैं जो कि फसलों तथा अन्य पौधों में नई जड़ों की वृद्धि, कोशिका अपघटन तथा विस्तार कार्यो के लिए आवश्यक होते हैं। साथ ही साथ ये फसलों में जडों के पृष्ठ क्षेत्रफल को मूसला जड़तंत्र और अन्य पार्ष्व जड़ों के निर्माण द्वारा भी बढ़ाते हैं। साइटोकाइनिन उत्पादन करने वाले प्रमुख जीवाणु वंशो में ऐजोटोबैक्टर, राइजोबियम, रोडोस्पाईरीलम रूबरम, स्यूडोमोनास फ्लूओरेसेंन्स तथा बेसिलस आदि प्रमुख है। कुछ राइजोबैक्टीरिया वाष्पशील जैव यौगिकों (VOCs) जैसे कि 2,3 ब्यूपनेडीओल, ऐसेरोइन, टरपिन्स, जेस्मोनेट्स इत्यादि का स्राव करके फसलों के वृद्धि एवं विकास को बढ़ाते हैं। वाष्पशील जैव यौगिकों का संश्लेषण पादप हार्मोन्स उत्पादन की तरह पी.जी.पी.आर. की विशिष्ट प्रजाति पर निर्भर करता है।

जैव नियंत्रण

विभिन्न पीजीपीआर स्ट्रेन फसलों के रोगकारक जीवों का जैव नियंत्रण करते हैं इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष रूप से फसलों की वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करते हैं। जीवाणु वंश जैसे कि बैसिलस, स्यूडोमोनास, सेराटिया, स्टैनोट्रोफोमोनास और स्ट्रेप्टोमीसेस और कवक वंश जैसे एंपेलोमिसेस, कॉनिथिरियम, और ट्राइकोडर्मा आदि फसलों में रोगकारक जीवों पर प्रतिपक्षी प्रभाव दिखाते हैं। ये जीवाणु समूह विभिन्न प्रतिपक्षी गतिविधियों जैसे कि प्रतिजैविक, विषैले तत्व और सतह–सक्रिय यौगिकों (बायोसर्फैक्टेंट्स) के उत्पादन के माध्यम से रोगजनित जीवों का अवरोधन, खनिजों, पोषक तत्वों और उपनिवेशन स्थलों के लिए प्रतिस्पर्धा आदि के द्वारा फसलों के रोगजनित जीवों को नष्ट करते हैं। उपरोक्त गतिविधियों के अतिरिक्त पीजीपीआर बाह्य कोशिका भित्ति विकृत करने वाले एंजाइम (1, 3–ग्लूकेनेस और काइटीनेस) के उत्पादन से भी फसलों के रोगजनित जीवों का उन्मूलन करने में सहायता करते हैं।

रोगप्रतिरोधन

पी.जी.पी.आर. प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध (Induced systemic resistance) के द्वारा भी विभिन्न फसलों के रोगों का नियंत्रण करने में सहायक है। प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध में कोई लाभदायक जीवाणु किसी हानिकारक जीवाणु, विषाणु या कवक के लिए फसलों में ही विरोधात्मक क्षमता उत्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार के सहायक जीवाणु तत्व को इलीसिटर कहा जाता है। ये इलीसिटर लाभदायक जीवाणु तथा फसलों की जडों के मध्य हुए सम्पर्क द्वारा श्रावित होता हैं। पौधों में यह रक्षात्मक गतिविधि स्त्रावित तथा जैसमोनिक एसिड संकेतन पर निर्भर करती है। कोशिकाभित्ति में उपस्थित पॉलीसैकेराइड, सैलिसिलिक एसिड, प्रतिजैविक, साइक्लिक लिपोपेप्टाइड तथा सीडेरोफोर आदि विभिन्न इलीसिटर के उदाहरण हैं। पी.जी.पी.आर जैसे कि स्यूडोमोनास, बैसिलस, तथा एजोस्पाईरिलम आदि विभिन्न फसलों में प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध प्रतिक्रिया दिखाते हैं।

सिडेरोफोर उत्पादन

सिडेरोफोर, आम तौर पर Fe^{3+} के साथ 1: 1 समूह अथवा यौगिक बनाते हैं। इस प्रकार बने यौगिकों को जीवाणु कोशिका झिल्ली द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाता है। जीवाणु कोशिका में Fe^{3+} को Fe^{2+} में अपचयित कर दिया जाता है तथा सिडेरोफोर द्वारा कोशिका में छोड़ दिया जाता है। पीजीपीआर सिडेरोफोर का उत्पादन करके फसलों की वृद्धि को बढ़ाता है जो रोगकारक जीवों को आयरन पोषण से वंचित रखता है तथा इस प्रकार आयरन तत्त्व की अनुपस्थिति में रोगकारक जीवों की विभिन्न उपापचीय क्रियाएं प्रभावित होती है और वे नष्ट हो जातें हैं, जिससे फसल की उपज में वृद्धि होती है। लौह तत्त्व के अतिरिक्त सिडेरोफोर अन्य धातुओं जैसे कि जिंक, कॉपर, कैडमियम, एल्युमीनियम तथा गैलियम इत्यादि के साथ भी स्थिर यौगिकों का निर्माण करते हैं जो पर्यावरण की दृष्टि से काफी हानिकारक हैं। मृदा में भारी धातुओं की उपस्थिति जीवाणुओं द्वारा सिडेरोफोर के उत्पादन को

प्रेरित करती है। जीवाणु सिडेरोफोर विभिन्न धातुओं के चीलेटिंग कारक के रूप में कार्य करते हैं तथा फसलों के राइजोस्फीयर (मूल परिवेश) में लोहे की उपलब्धता को विनियमित करते हैं। इस प्रकार के नियमन द्वारा फसलों में भारी धातुओं जैसे कि आर्सेनिक आदि की विषाक्तता को कम करने में मदद मिलती है। पीजीपीआर सूक्ष्मजीव धातु विषाक्तता की स्थिति में फसलों की ऑक्सीकरण रोधी (एंटीऑक्सिडेंट) एंजाइम गतिविधियों को बदलकर उनकी सहायता करते हैं।

जीवाणु एंडोफाइट्स तथा फसलों का विकास

जीवाणु एंडोफाइट्स सर्वव्यापी रूप से फसलों तथा अन्य पौधों के आंतरिक ऊतकों का उपनिवेश करते हैं, तथा विश्व में लगभग हर जगह पाए जाते हैं। कुछ एंडोफाइट्स राइजोस्फेरिक जीवाणु द्वारा उपयोग की गयी गतिविधियों जैसे कि फसलों की वृद्धि और विकास के लिए संसाधनों का अधिग्रहण तथा फसलों की वृद्धि और विकास का नियमन का उपयोग करके पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देते हैं। जीवाणु एंडोफाइट्स (जीवाणु और कवक) हर पौधे की प्रजातियों में पाए जाते हैं। विश्व स्तर पर किये गए विभिन्न अध्ययनों के अनुसार एंडोफाइट्स के अभाव में फसलें तथा अन्य पादप जातियां रोगकारक जीवों और अन्य पर्यावरणीय तनावों के लिए अतिसंवेदनशील हो जाती हैं। जीवाणु एंडोफाइट्स की विविधता विश्लेषण के अनुसार संघ प्रोटीओबैक्टीरिया (α, β, तथा γ–प्रोटीओबैक्टीरिया) मुख्य रूप से एंडोफाइट्स समूह के सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वर्ग जैसे कि फर्मीक्युट्स तथा एक्टिनोबैक्टीरिया भी एंडोफाइट्स के रूप में पाए जाते हैं। बैक्टीरियल एंडोफाइट्स की सबसे अधिक पायी जाने वाली प्रजातियों में स्यूडोमोनस, बैसिलस, स्टेनोट्रोफोमोनास, माइक्रोकॉकस, पैंटोआ, माइक्रोबैक्टीरियम, राइजोबिया, मेथिलोबैक्टीरियम और स्फिंगोमोनस आदि प्रमुख हैं।

किसानों को जैव उर्वरको की उपलब्धता

हमारे देश में सभी प्रकार के जैव उर्वरको को मिलाकर लगभग 4500 टन प्रति वर्ष उत्पादन किया जा रहा है। देश में सर्वाधिक जैव उर्वरको का उत्पादन कृषि उद्योग निगम द्वारा किया जाता है तथा उसके साथ–साथ राज्य कृषि विभाग, राष्ट्रीय जैव उर्वरक विकास केंद्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालय एवं निजी क्षेत्रो द्वारा भी इनका उत्पादन किया जाता है। राष्ट्रीय जैव उर्वरक विकास केंद्र गाजियाबाद में स्थित है तथा देश में इसके कुल छः क्षेत्रीय केंद्र स्थापित है। निजी क्षेत्र में भारतीय किसान उर्वरक निगम (इफको) सभी प्रकार के जैव उर्वरको का उत्पादन करता है और इसका लगभग सभी राज्यों में वितरण नेटवर्क स्थापित है। इसी प्रकार राष्ट्रीय उर्वरक सीमित भी सभी प्रकार के जैव उर्वरको का उत्पाद करती है। किसान भाई जैव उर्वरको विशेष रूप से राइजोबैक्टीरिया (पीजीपीआर) के लाभ तथा इनकी उपलब्धता की जानकारी के लिए कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, इफको केंद्र, राज्य के कृषि विभाग इत्यादि में संपर्क कर सकते है। जैव उर्वरको को खरीदने के बाद उन्हे उचित विधि द्वारा ही उपयोग करना चाहिए जैसे कि बीजोपचार हेतु 500 मिलीलीटर पानी में 200 ग्राम जैवउर्वरक को मिलाकर 10 किलोग्राम बीज के उपचार के लिए प्रयोग करे और बीजो की छाया में सूखा ले। पौध के उपचार के लिए 1 किलोग्राम जैव उर्वरक को उचित मात्रा में पानी में मिलाकर विभिन्न फसलो की पौध को 30–40 मिनट से लेकर 8–10 घंटे तक घोल में डुबाकर उपचारित करके रोपाई करे। मृदा के उपचार के लिए 4 किलोग्राम जैव उर्वरक को 200 किलोग्राम कम्पोस्ट में मिलाकर बुवाई से पूर्व खेत में भुरकाव कर दें।

निष्कर्ष

विश्व स्तर पर किये गए चार दशकों के शोध से यह पता चल गया कि जड़ो में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीव पौधो पर लाभकारी प्रभाव करते है। इसी प्रकार जैव उर्वरको के प्रयोग का फसलों के विकास पर लाभकारी प्रभाव पाया गया है। इसलिए जैव उर्वरको का उपयोग फसलों में अधिक उपज के साथ–साथ तनाव सहिष्णुता, जलवायु अनुकूलन, वातावरण की सुरक्षा तथा मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु करना चाहिए।

मक्का के उत्पादों का उपयोग और इनका महत्व

श्यामबीर सिंह[1] ,रियाज अहमद[2], अविनाश कुमार[2], दीपक पाल[2] व सचिन कुमार[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
[2]क्षेत्रीय मक्का अनुसन्धान व बीज उत्पादन केंद्र (भाकृअनुप–भामअनुसं), बेगुसराय (बिहार)
संवादी लेखक का ई–मेलः singhsb1971@rediffmail.com

परिचय–

मक्का एक प्रमुख फसल है और इसकी व्यापक रूप से अनाज के रूप में खेती की जाती है, जिसे सर्वप्रथम मध्य अमेरिका में खेती के रूप में अपनाया गया था। इसकी उच्चतम आनुवंशिक उपजक्षमता के कारण इसे विश्वस्तर पर अनाज की रानी के रूप में जाना जाता है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का बहुत अच्छा स्रोत है और यह एक बहुपयोगी फसल है।यह मनुष्य के साथ–साथ पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव भी है तथा औद्योगिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है। बहुत देशों में अनाज, चारा, स्वीटकॉर्न ,बेबीकॉर्न, पॉपकॉर्न, डेंटकॉर्न, पॉडकॉर्न, फ्लोरकॉर्न, वैक्सीकॉर्न सहित विभिन्न प्रयोजनों के लिए पूरे वर्ष मक्के की खेती की जाती है। भारत में मक्का के कुल उत्पादन में 80% योगदान देने वाले प्रमुख राज्य आंध्रप्रदेश (20. 9%), कर्नाटक (16.5%), राजस्थान (9.9%), महाराष्ट्र (9.1%), बिहार (8.9%), उत्तरप्रदेश (6.1%), मध्यप्रदेश (5.7%), हिमाचल प्रदेश (4.4%)हैं।

भारत में मक्का अनाज का उपयोग–

1.1 मक्का के भुट्टे का प्रयोग– मक्का के भुट्टे को सेंक कर और मीठी मक्का को उबालकर खाया जाता है। मक्का को

कॉर्नफलेक्स और पॉपकार्न के रूप में भी खाया जाता है। अब मक्का का उपयोग बायोफयूल (जैव ईंधन) के लिए भी होने लगा है। लगभग 70 प्रतिशत मक्का का उपयोग मुर्गी एवं पशु आहार के रूप मे किया जाता है और साथ ही साथ इससे पौष्टिक रूचिकर चारा प्राप्त होता है। कच्चा मक्का पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है। मक्का ह्रदय की मांसपेशियों को उत्तेजित करता है तथा रक्तचाप बढ़ाता है। यह मूत्ररोगों में औषधि के रूप में कार्य करता है और पाचन तंत्र में सुधार करता है। मक्के के सूखे दानों को हल्का भूनकर दलिया की तरह पीस लिया जाता है और फिर उसमें गुड़ और घी मिला कर पंजीरी की तरह गाँवों में नाश्ते के रूप में खाया जाता है। मक्का का हलवा भी स्वादिष्ट बनता है। पहाड़ी और बर्फीले इलाकों में बरसात के समय जब भोजन के विकल्प सिमट जाते हैं तब मक्का बड़ा सहारा बनता है। आयुर्वेद में भुट्टा खाने के कई फायदे गिनाए गए हैं। ये प्यास को शांत करने वाला होता है। अच्छी बात ये है कि एक ओर जहां बहुत सी चीजें पकने के बाद अपना पोषक गुण खो देती हैं वहीं भुट्टे का पोषण और ज्यादा बढ़ जाता है। भुट्टा कैरोटीनॉयड और विटामिन ए का अच्छा स्त्रोत है। औद्योगिक दृष्टि से मक्का मे प्रोटिनेक्स और चॉक्लेट पेन्ट्स स्याही और कॉर्न सिरप आदि बनने लगा है।

1.2 भुट्टे के रेशम कॉर्न सिल्क का प्रयोग– UTI (Urinary Tract Infection)को ठीक करने के लिए कॉर्न हेयर एक एंटी–इंफ्लेमेटरी एजेंट के रूप में काम करता है। यह पेशाब की जलन को रोकता है। भुट्टे के रेशम की चाय पीने से मूत्राशय और मूत्रमार्ग की सूजन ठीक हो जाती है। इसके सेवन से पेशाब आता है और मूत्रमार्ग में बैक्टीरिया बनने का खतरा (जोखिम) कम हो जाता है । भुट्टे के रेशम का उपयोग पथरी रोगों के उपचार में किया जाता है। पथरी से बचने के लिए रेशम को रातभर पानी में भिगोकर सुबह रेशम/सिल्क

को निकाल कर पानी पीने से लाभ होता है। पथरी के उपचार के लिए रेशम को पानी में उबालकर काढ़ा बनाया जाता है।

1.2 भुट्टे के रेशम का महत्व– भुट्टे के रेशम से बहुत फायदे है– किडनी के लिए बहुत फायदेमंद होता हैं और वजन कम करता है। पाचन में सहायक होता हैं और डायबिटीज में आराम देता है।

1.3 हरी अवस्था में मक्का का प्रयोग– हरा मक्का पौष्टिक और स्वादिष्ट होता है और मक्का को हरी अवस्था में पशुओं को चारे के रूप मे खिलाते हैं। हरे अवस्था में मिनिरल, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, आयरन आदि ज्यादा मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे पशुओं मे दूध और मॉस की मात्रा मे वृद्धि होती है और हरे अवस्था में मक्का को काटकर साइलेज बना के स्टोरेज कर लिया जाता है। जब मक्का का समय खतम हो जाता है तब स्टोरेज संग्रहत को पशुओं को चारे के रूप मे खिलाते हैं, जिसके कारण से किसानो की आमदनी मे वृद्धि होती है।

1.4 सूखी अवस्था में मक्का का प्रयोग– जब मक्का पककर तैयार हो जाती है तब मक्का के भुट्टो को अलग कर लिया जाता है और बचे हुए पौधो कडवी चारा पशुओं को चारे के रूप मे खिलाते हैं। मक्का की सूखी लकड़ी को लोग छप्पर के रूप में प्रयोग करते है। सूखे मक्के को लोग ईधन के रूप में प्रयोग करते है, जिससे की किसानो की आय में वृद्धि के साथ साथ गैस और बिजली के बिल की बचत होती है। मक्का की सूखी लकड़ी या डंठल को खेत मे जुताई कर देना चाहिए जिससे की डंठल के सड़ने गलने से खेत की उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होती है और ऐसे खेतो से फसल लेने पर उपज ज्यादा मात्रा मे पैंदा होता है।

1.6 मक्का के बलरी का प्रयोग– मक्का के बलरी का उपयोग ईधन के रूप में करते है, जिसके कारण से किसानो को गैस और बिजली की बचत होती है। बलरी को जलाकर उसके राख को गुनगुने पानी के साथ सेवन करने से कब्ज से और खांसी से आराम मिलता है । भुट्टो को खाने के बाद जो भुट्टे का भाग बचता है उसको फेके नहीं बल्कि उसे बीच से तोड़ले

और सूंघे इस से जुखाम में फायदा मिलता है, और बाद में इसे पशुओं को खाने के लिए भी दे सकते है। मक्का के बलरी से विभिन्न प्रकार के खिलौने भी बनाये जाते है।

1.7 मक्का के उत्पादों के विभिन्न उपयोग

- मक्का बहुउद्देशीय फसल है, जिसे विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है और पशुओं को चारा के साथ साथ मुर्गियों, सुअरों को भी दाना और चारा के रूप में दिया जाता है।
- फसलों में गेंहू और धान के बाद मक्का भारतीय किसानो का आर्थिक स्रोत है, और भारत से मक्का को निर्यात करके विदेशी मुद्रा को अर्जित किया जाता है।
- दर्शनीय स्थलों पर पर्यटकों द्वारा मक्का की मांग बहुत बढ़ रही है, जैसे कि पॉपकॉर्न, स्वीटकॉर्न मक्का से बने विभिन्न उत्पाद आदि।
- मक्का से अनेक तरीके के पकवान बनाया जाता है, जैसे–स्लाद, पकौड़ा, कटलेट, मिली–जुली सब्जी, हलवा, मुरब्बा, जैम, खट्टी–मिट्ठी आचार, कैंडी, लड्डू, बर्फी, अनारसा, पुआ, दहीवाडा, चटपटी, पीला लहसुन, खजूर, चाट आदि।
- मक्का के भुट्टे खिलाने से बच्चों के दांत मजबूत होते हैं।
- भुट्टा खाने से दिल की बीमारी दूर होती है क्योंकि इस में कैरोटिनॉइड, विटामिन सी और बायोफ्लेवनॉइड पाया जाता है। यह शरीर में खून के प्रवाह को भी बढ़ाता है और कोलेस्ट्रॉल स्तर को बढ़ने से बचाता है।
- पीली वाली मक्का के दानों में आयरन, कॉपर, मैगनीशियम और फॉस्फोरस पाया जाता है जिससे हड्डियां मजबूत बनती हैं।
- मक्का के उत्पादों को बेचने से किसानो को आय में वृद्धि होती है, जिससे उसकी आर्थिक स्थित सुधार सकती है।
- मक्का के सिल्क को पानी में उबालकर कर काढ़े के रूप में प्रयोग करते है। मक्का के सिल्क का प्रयोग पथरी रोगों मे करते है, सिल्क को रातभर पानी में रखकर सुबह सिल्क को पानी से हटाकर पानी को पीने से बहुत आराम मिलता है।
- क्वालिटी प्रोटीन मक्का में लाइसीन और ट्रीप्टोफेन एमिनो एसिड पाए जाने के कारण से शरीर की पाचन क्रिया सुचारु रूप से चलती है।

1.8 मक्का का औषधीय गुण

- मक्का का सेवन गर्भावस्था में बहुत लाभदायक होता है इसलिए गर्भवती महिला को आहार के रूप में देना चाहिए। क्योंकि इस में फोलिक एसिड पाया जाता है जो गर्भवती महिला के लिए बहुत जरुरी हैं।
- भुट्टा खाने से एनीमिया को दूर किया जा सकता है क्योंकि इसमें फोलिक एसिड और विटामिन बी पाया जाता है।
- खुजली उपचार के लिए भुट्टे के स्टार्च का भी उपयोग करते है और त्वचा को खूबसूरत और चिकना बनाने के लिए भुट्टे के स्टार्च का प्रयोग करते है।
- टीबी से निजात पाने के लिए टीबी के मरीजों को मक्का की रोटी का सेवन रोज करना चाहिए।
- गेहूं के आटे के साथ यदि हम मक्के के आटे का प्रयोग करें तो यह यकृत के लिए अधिक लाभदायक होगा क्योंकि मक्का प्रचूर मात्रा में रेशे से भरा हुआ है इसलिए इसे खाने से पेट साफ रहता है। इससे बवासीर, कब्ज और पेट के कैंसर के होने से निजात मिलती है।
- मक्का की बलरी का राख पानी के साथ लेने से कब्ज से आराम मिलता है।

1.9 विभिन्न प्रकार के मक्का का उपयोग

***i.* डेंटकॉर्न (*Zea mays var- indentat*)** का उपयोग– डेंटकॉर्न, जिसे ग्रेनकॉर्न भी कहा जाता है, एक प्रकार का फील्डकॉर्न है। इसकी गिरीयां/दाने दांत की तरह दिखाई देती है, इसलिए इसे डेंटकॉर्न कहा जाता है। इसको व्यापक रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में उगाया जाता है। जिसमें उच्च नरम स्टार्च सामग्री होती है। डेंटकॉर्न, कॉर्नमील के आटे (कॉर्नब्रेड के बेकिंग में प्रयुक्त), कॉर्नचिप्स, टॉर्टिला और

टैकोशेल्स के आधार घटक के रूप में खाद्य निर्माण में उपयोग की जानेवाली किस्म है।

***b.* फ्लिंट मकई (*Zea mays var- indurate*)** का उपयोग– फ्लिंट मकई, या भारतीय मकई, मकई की सबसे पुरानी किस्मों में से एक है। इसके दाने सख्त और चिकनी होते है, जिसकी खेती आम तौर पर भारत में की जाती है। इसका उपयोग सूप रेसिपी, पोलेंटा, होमनी, कॉर्नमील, सूप और बहुत कुछ बनाने के लिए किया जाता है। आप घर पर इस स्वादिष्ट, पारंपरिक भोजन को परोस सकते हैं। चिपकने वाले पदार्थ (गोंद, पेस्ट, श्लेष्मा, मसूड़े) बुक बाइंडिंग ब्रिकेट्स में इसका अपयोग किया जाता है।

***c.* मीठीमकई (*Zea mays var-saccharata*)** का उपयोग– इसे स्वीटकॉर्न भी कहते है। इसमें पोषक तत्वों की मात्रा सबसे ज्यादा पायी जाती है। मीठी मकई विटामिन बी1, विटामिनबी5 और विटामिन सी से भरपूर होती है, जो बीमारियों से लड़ने और नई कोशिकाओं के निर्माण में मदद करती है। फाइबर में उच्च, मकई मधुमेह रोगियों में भी रक्त शर्करा के स्तर को कम करके शरीर में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। स्वीटकॉर्न के मुख्य पोषण लाभों में से एक इसकी उच्च फाइबर सामग्री है। और जैसा कि हम जानते हैं, आहार फाइबर हमारे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। यह पाचन में सहायता करता है। यह हृदयरोग, स्ट्रोक, टाइप 2 मधुमेह और आंत्रकैंसर के जोखिम को कम कर सकता है। स्वीटकॉर्न एक अच्छा प्रोबायोटिक है क्योंकि इसमें कुछ प्रकार के अच्छे आंत बैक्टीरिया होते है, जो पाचन में सहायता करते हैं और बेहतर चयापचय की सुविधा प्रदान करते हैं, अतः वजन घटाने में मदद करते हैं।

***d.* फ्लोरकॉर्न (*Zea mays var- amylacea*)** का उपयोग– कॉर्नफ्लोर के कुछ स्वास्थ्य लाभों में रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करना शामिल है और यह कब्ज के जोखिम को कम करता है। यह उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करता है और शरीर को ऊर्जावान बनाना है। यह हड्डियों मजबूती एवं मनोवैज्ञानिक विकारों में लाभदायक है। कॉर्नफ्लोर सुपाच्य होने के कारण गर्भवती महिलाओं के का स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा रहता है।

***e.* पॉपकॉर्न (*Zea mays var-everta*)** का उपयोग– इसका मुख्य रूप से जैसे मकई के गुच्छे, मकई चिप्स और पॉपकॉर्न आदि उत्पाद तैयार करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पॉपकॉर्न फाइबर में अच्छा होने के अलावा, इसमें फेनोलिक एसिड भी होता है जो एक प्रकार का एंटीऑक्सीडेंट है। पॉपकॉर्न एक साबुत अनाज है, एक महत्वपूर्ण खाद्य समूह है जो मनुष्यों में मधुमेह, हृदयरोग और उच्चरक्तचाप के जोखिम को कम कर सकता है। साबुत अनाज मनुष्यों को कई स्वास्थ्य लाभप्रदान करने के लिए जाने जाते हैं। यदि आप हर दिन माइक्रोवेव पॉपकॉर्न या मूवीथियेटर पॉपकॉर्न खा रहे हैं, तो हो सकता है कि आप बहुत अधिक नमक और कैलोरी, साथ ही संभावित हानिकारक रसायनों और कृत्रिम अवयवों का सेवन भी कर रहे हों। हालांकि, जैतून या एवोकैडो तेल से बना घर का बना पॉपकॉर्न आपके दैनिक आहार में एक स्वस्थ जोड़ हो सकता है।

***f.* वेक्सीकॉर्न (*Zea mays var-ceratina*)** का उपयोग– इसका उपयोग खाद्य उद्योग द्वारा स्टेबलाइजर / थिकनर के रूप में और कागज उद्योग में चिपकने के रूप में किया जाता है। यह स्टार्च उत्पादन करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

***g.* पॉडकॉर्न (*Zea mays var-tunicata*)** का उपयोग– यह बहुत पुरानी या आदिम प्रकार की मकई है। इसका काफी महत्व है। पॉडकॉर्न, जंगली मक्का की एक किस्म है। यह मक्का का जंगली पूर्वज नहीं है, बल्कि एक उत्परिवर्ती है।

AgriApp

हाइटेक बागवानी से अधिक आय एवं उद्यमिता विकास

संजय कुमार गुप्ता, प्रशांत सिंह एवं लव कुमार
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेखक का ई–मेलः sanjay.gupta526@gmail.com

सब्जियों की खेती से फायदा लेने के लिए बेमौसमी खेती ही एक मात्र विकल्प है। सब्जियों की खेती विशिष्ट मौसम में ही की जा सकती है। जो सब्जियाँ ग्रीष्म ऋतु की होती है, उन्हें मार्च से सितम्बर तक उगाया जा सकता है एवं शीत ऋतु की सब्जियाँ अक्टूबर से फरवरी तक उगायी जा सकती हैं। ऐसे में इन सब्जियों की भरपूर पैदावार होने के बावजूद भी कृषक को यथोचित लाभ नहीं मिल पाता है। बेमौसम में इन सब्जियों की खेती सामान्य रूप से नहीं की जा सकती है, क्योंकि तापमान एवं जलवायवीय कारक अनुकूल नहीं होते हैं एवं वांछित पैदावार नहीं मिल पाती है।

हाइटेक बागवानी के नये एवं आधुनिक आयामों से सब्जियों की बेमौसमी खेती करके अच्छी पैदावार लेने के साथ–साथ सब्जियों की कीमत भी अच्छी मिल जाती है। हाइटेक बागवानी के अन्तर्गत पॉलीहाउस, छाया–गृह, लौ–टनल, नेट–हाउस एवं वाकिंग–टनल इत्यादि कुछ ऐसे विकल्प हैं, जिससे मुख्य मौसम से परे सब्जियों की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इन संरचनाओं से तापमान एवं आर्द्रता का नियंत्रण करके पौधों को अनुकूल वातावरण प्रदान किया जाता है, जिससे पौधे मुख्य मौसम की ही भाँति वृद्धि एवं विकास करते हैं। संरक्षित वातावरण में खेती से पैदावार तथा गुणवत्ता कई गुणा बढ़ाई जा सकती है। इसके अलावा बागवानी उत्पादों के निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित करने की सम्भावना है।

राष्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत देश भर मे एक क्रान्ति के रूप मे उद्यानिकी का विकास किया जा रहा है। नई नई तकनीको को किसान के खेतों पर पहचुँाया जा रहा है तथा नई तकनीक अपनाने हेतु वित्तीय सहायता भी प्रदान की जा रही है। इन नई प्रोद्योगिकी से उद्यानिकी ने एक व्यवसाय का रूप ले लिया है । ऐसा अनुमान है कि भारत में बागवानी उत्पादो की माग। वर्ष 2020–21 में 20 प्रतिशत बढक़र 36 करोड़ टन हो सकती है। प्रति व्यक्ति बढती आय के कारण बागवानी उत्पादों की अधिक मांग सृजित हागी जिसके कारण भारत मे ऐसी फसलो के उत्पादन में और तेजी आयेगी। उच्च प्रोद्योगिकी वाले बागवानी, मशीनीकरण और फसल कटाई उपरान्त प्रबन्धन के लिए अन्वेषण जसै विषयों ने उद्यानिकी को एक उद्योग का दर्जा प्रदान किया है। प्लान्ट टिशूकल्चर, पादप ऊतक संबंधन खेती की सघन प्रणाली, मदृा विहीन खेत (हाइड्रोपोनिक) तथा पोली हाऊस प्रणाली उद्यानिकी की प्रमुख उच्च प्रौद्योगिकी हैं जिनके द्वारा बागवानी के क्षेत्र में बहुत बदलाव आया है।

1. ऊतक संवर्धन

पदप टिशूकल्चर एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा कोशिका, ऊतक, अंगों और यहाँ तक कि पूरे पौधे को अपनी इच्छानुसार पूरे साल, मौसम सम्बन्धी सीमाओं से परे, प्रयोगशाला में उगाया जा सकता है। प्रजनन की यह तीव्र पद्धति है और कम रोगयुक्त तथा उत्तम गुणवत्ता के पौधों की बढ़ती माँग ने टिशूकल्चर और सूक्ष्म प्रजनन के क्षेत्र में स्वरोजगार की संभावनओं को चार चाँद लगा दिये हैं। इस विधि द्वारा तैयार पौधों की निर्यात की भी अच्छी क्षमता है। सीमित संसाधनों के साथ भी लघुसूक्ष्म प्रजनन इकाई की स्थापना की जा सकती है। सम्बन्धित व्यक्ति अच्छे रोजगार के साथ–साथ समाज में नाम भी कमा सकता है।

2. सघन पौध रोपण प्रणाली

सघन पौध रोपण से तात्पर्य उस सघन फसल तंत्र से है, जिसमें एक या अधिक फसलें प्रति ईकाई क्षेत्र में परम्परागत विधि से अधिक पौध रोपण कर भूमि, प्रकाश, पानी व पोषक तत्वों का अधिकतम उपयोग किया जाता है। सघन बागवानी में पौधे बहुत पास–पास लगे होते हैं। साधारणतया इसमें फल वृक्षों की संख्या 500 से 100000 प्रति हेक्टर तक हो सकती है। पौध रोपण प्रति हेक्टर के आधार पर सघन बागवानी को निम्न समूहों में विभाजित किया जा सकता है:–

1. मध्यम सघन पौध रोपण 500–1500 पौध प्रति हेक्टर
2. ईष्टतम सघन पौध रोपण 1500–10000 पौध प्रति हेक्टर
3. अतिसघन पौध रोपण 10000–100000 पौध प्रति हेक्टर

सघन बागवानी से लाभ

1. पारम्परिक पौध रोपण (150–200 पौध प्रति हेक्टर) की जगह सघन बागवानी में 500 से 1 लाख पौधे प्रति हेक्टर प्रति इकाई क्षेत्र में लगा सकते हैं, जिससे जहाँ उत्पादकता 15–20 टन प्रति हेक्टर होती थी वहीं सघन रोपण से 30–50 टन प्रति हेक्टर होती है।
2. पारम्परिक पौध रोपण में पौधे एवं कतार की दूरी ज्यादा होने से पौधे बड़े आकार के होते हैं, अतः प्रबन्धन कठिन होता है तथा अधिक मानव श्रम की आवश्यकता होती है। वहीं सघन तंत्र में पौधे पास–पास होने से छोटे आकार के होते हैं, अतः प्रबन्धन आसान व कम मानव श्रम में हो जाता है।
3. पारम्परिक विधि में प्रति पौधा आकार ज्यादा बड़ा होने से सूर्य का प्रकाश हर भाग में पहुँचना आसान नहीं होता, वहीं सघन रोपण में उचित कटाई–छंटाई अपनाने से पौधे के हर हिस्से को सूर्य का उचित प्रकाश मिलता है जिससे अच्छी गुणवत्ता वाली आदर्श उपज प्राप्त होती है।
4. पारम्परिक विधि में फलों की तुड़ाई हाथ से करने पर समय व लागत अधिक आती है वहीं सघन प्रणाली में मशीनों द्वारा कम समय व लागत में तुड़ाई हो जाती है।
5. पारम्परिक विधि से बाग की व्यवसायिक उपज 7–8 साल पर आती है जबकि सघन रोपण में 5–6 साल पर उपज आ जाती है।

3. ग्रीनहाऊस तकनीक

ग्रीनहाऊस तकनीक, उच्च उत्पादकता के आधार पर कम क्षेत्र से अधिक उत्पादन उपलब्ध कराने में सक्षम है।

पॉलीहाऊस में सब्जियों में प्रमुखतया खीरा, विभिन्न प्रकार की शिमला मिर्च एवं टमाटर की खेती लाभप्रद है जबकि फूलों में जरबेरा, कोर्नेशन एवं गुलाब अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुए हैं।

पॉलीहाऊस के भीतर वातावरण बाहर के वातावरण से भिन्न रहता है। बिना किसी नियंत्रण प्रणाली वाले पॉलीहाऊस के अन्दर का तापमान बाहरी तापमान से 5–10 डिग्री से. ज्यादा रहता है, जबकि पूर्ण रूप से नियंत्रण वाले पॉलीहाऊस में तापमान, नमी, प्रकाश आदि फसल की आवश्यकतानुसार निर्धारित किये जाते हैं। ऐसे हरितगृह का खर्चा अधिक तथा रख–रखाव भी कठिन होता है। परन्तु इनमें मन चाही फसल किसी भी मौसम में ऊगाई जा सकती है। पॉलीहाऊस तकनीक से प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादन (4–5 गुना) तो अधिक मिलता है साथ ही बे–मौसमी फल सब्जियाँ और फूलों की कीमत भी बहुत अच्छी मिलती है। इस तकनीक से प्राप्त उत्पादन की गुणवत्ता उच्च कोटि की होती है। इस पद्धति को अपनाकर शिक्षित युवा रोजगार प्राप्त कर अच्छा धन अर्जित कर सकते हैं। किसानों को ग्रीनहाऊसों की स्थापना के लिए राज्य सरकारों द्वारा अनुदान दिया जा रहा है। इस योजना का फायदा उठाकर ग्रीनहाऊसों में बे–मौसमी सब्जी का उत्पादन करके संरक्षित खेती की जा सकती है।

महाविद्यालय के उद्यान विभाग की हाइटेक इकाई पर 700 वर्गमीटर के पॉलीहाऊस में खीरा की फसल से तकरीबन 115 दिनों में एक लाख रूपये से अधिक आमदनी दर्ज की गई। वर्ष में तीन बार फसल लगाई जा सकती है जिससे किसान की आमदनी बढ़ाने की अपार संभावनाएँ है। टमाटर में भी परम्परागत तरीके से प्राप्त उपज से दुगनी उपज प्राप्त की जा सकती हैं।

भारतीय संदर्भ में ग्रीनहाउस का भविष्य

अपने देश में कुछ विशिष्ट उत्पादन के लिये ग्रीनहाउस प्रणाली काम में ली जा सकती है–

1 **समस्या ग्रस्त कृषि जलवायु क्षेत्रों में खेती** : भारत में 750 लाख हैक्टर भूखंड ऊसर, कृषि की दृष्टि से व्यर्थ, परती, रेगिस्तान और अत्यधिक ठंड जैसी परिस्थितियों से प्रभावित है। इन क्षेत्रों में यदि ग्रीनहाउस तकनीकी का उपयोग किया जाये तो स्थानीय लोगों के लिये अच्छी पैदावार की जा सकती है।

2 **बड़े शहरों के आसपास कृषि उत्पादन** : बड़े शहरों में ताजी सब्जी, फल और सजावटी पौधों की प्रचुर मात्रा में पूरे साल मांग रहती है। इसे पूरा करने के लिये ग्रीनहाउस तकनीकी को बढ़ाया जाना चाहिये।

3 **निर्यात के लिये कृषि उत्पादन** : विदेशी व्यापार घाटे को कम करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बागवानी उत्पादों का अच्छा निर्यात किया जा सकता है। उपयुक्त स्थानों का चयन कर निर्यात योग्य फसलों का ग्रीनहाउस में उत्पादन कर विदेशी मुद्रा कमाई जा सकती है।

4 **पौधों का संवर्धन** : पौध उगाना और कटिंग जैसी विशेष विधाओं के लिये नियंत्रित वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। ग्रीनहाउस का उपयोग कर पौधों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है।

5 **जैव तकनीकी का आधार** : जल संर्वधन पद्धति और पोषक फिल्म तकनीकी के अध्ययन में ग्रीनहाउस द्वारा वायुमंडल का नियंत्रण आवश्यक है। फसल उत्पादन के लिये भी यह आवश्यक है।

6 **दुर्लभ और औषधीय पौधों का उत्पादन** : भारत में आर्किड और जड़ी–बूटियों की ढेर सारी प्रजातियां हैं। इनके सघन उत्पादन में भी ग्रीनहाउस तकनीकी महत्वपूर्ण है।

पॉलीहाऊस के रख–रखाव के लिए महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पॉलीहाऊस में दिए जाने वाले सिंचाई जल की ई.सी. 0.7 से कम तथा मृदा का पी.एच. 8 से कम होना चाहिए।
2. पॉलीहाऊस के चारों तरफ 1.5 फिट गहरी ट्रेंच बनानी चाहिए, जिससे बारिश का पानी एकत्र नहीं होगा एवं कई प्रकार के मृदाजीव पॉलीहाऊस में नहीं आ पायेंगे।
3. पॉलीहाऊस में किसी भी प्रकार का छेद हो अथवा पॉलीथिन एवं इन्सेक्ट नेट फट जाए तो तुरन्त ठीक करना चाहिए।
4. पॉलीहाऊस में कम से कम अथवा आवश्यकतानुसार ही आवागमन होना चाहिए एवं एन्टीचेम्बर का दरवाजा एवं मुख्य द्वार दोनों साथ नहीं खोलने चाहिए।

5. मुख्य दरवाजे पर एक ट्रे में कॉपर सल्फेट रखना चाहिए एवं प्रवेश करने से पूर्व पैरों को कॉपर सल्फेट की ट्रे में साफ करके ही अन्दर जाना चाहिए।
6. ड्रिप प्रणाली को फसल लगाने से पूर्व उपचारित करना चाहिए एवं नालियाँ जाम हो जायें तो उन्हें तनु अम्ल से उपचारित किया जाना चाहिए।
7. फसल लगाने से पूर्व क्यारियों को निर्जमीकृत किया जाना चाहिए।
8. क्यारियों की चौड़ाई एक मीटर एवं ऊँचाई 45 से.मी. रखनी चाहिए।
9. छः क्यारियों के बीच में 60 से.मी. का आवागमन पथ रखना चाहिए।
10. एक फसल पूरी होने से पहले ही दूसरी फसल की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए, जैसे पौध तैयार करना आदि।
11. पॉलीहाऊस में सघन कृषि प्रणाली अपनानी चाहिए, कभी भी पॉलीहाऊस एक सप्ताह से ज्यादा खाली नहीं रखना चाहिए।
12. पॉलीहाऊस में उगायी जाने वाली फसलों का चुनाव बाजार को ध्यान में रखकर करना चाहिए एवं अधिक मूल्य वाली फसलों का ही चयन करना चाहिए।
13. उगाई जाने वाली किस्में अधिक उत्पादन देने वाली एवं अधिक गुणवत्ता वाली होनी चाहिए।
14. इसके अन्दर किसी भी प्रकार का कचरा, पुरानी फसलों के अवशेष एवं खरपतवार नहीं होने चाहिए।
15. पॉलीहाऊस को खाद, बीज, औजारों के भण्डार गृह की तरह इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।
16. पॉलीहाऊस में तापमान एवं आर्द्रता का विशेष ध्यान रखना चाहिए, समय–समय पर आवश्यकतानुसार फोगर्स एवं पर्दे के उपयोग से इनका नियन्त्रण करते रहना चाहिए।
17. किसी भी कीट अथवा बीमारी का प्रकोप होने पर तुरन्त उसके नियंत्रण पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि पॉलीहाऊस के अन्दर कीट एवं बीमारियाँ बहुत जल्दी विकराल रूप ले लेती हैं।

लहसुन का प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन

बिबवे भूषण[1], कल्याणी गोरेपाटी[1], योगेश खाडे[1], मनोज कुमार महावर[2], भारत भूषण[3] एवं मेजर सिंह[1]
[1]भाकृअनुप– प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, पुणे (महाराष्ट्र)
[2]भाकृअनुप– केंद्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मुंबई (महाराष्ट्र)
[3]भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेलः bhushan.bibwe@gmail.com

परिचय

लहसुन भारतीय रसोई में महत्वपूर्ण मसालों में से एक है, जो भोजन की तैयारी में विशिष्ट महक और स्वाद जोड़ता है। भोजन की तैयारी में महक और स्वाद जोड़ने के अलावा यह एक महत्वपूर्ण एलियम वर्ग का मसाला है जो फेनोलिक यौगिकों का एक मजबूत स्रोत है और इसके औषधीय गुणों के साथ यह कई स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करता है। लहसुन शायद सबसे पहले ज्ञात औषधीय पौधों में से एक है, जिसका उपयोग प्राचीन काल से मनुष्यों में विभिन्न रोग स्थितियों को ठीक करने के लिए किया जाता था। औषधीय गुणों एवं उपचार शक्ति के साथ लहसुन को प्रकृति के अद्भुत पौधों में से एक कहा जा सकता है। इसमें पाये जाने वाले सल्फर के यौगिक ही इसके तीखे स्वाद और गंध के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसमें पाए जाने वाले तत्वों में एक ऐलीसिन भी है जिसे एक अच्छे बैक्टीरिया–रोधक, फफूंद–रोधक एवं एंटी–ऑक्सीडेंट के रूप में जाना जाता है। यह निम्न रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल, रक्त शर्करा और रक्त स्कंदन को रोक सकता है, और इसमें एंटी–ट्यूमर गुण होते हैं। लहसुन एक अर्द्ध खराब होने वाली फसल है और आमतौर पर बिना किसी पूर्व–प्रसंस्करण के अपने ताजा रूप में इसका सेवन किया जाता है, लेकिन भंडारण के दौरान लहसुन में काफी नुकसान भी होता है। विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों में प्रसंस्करण करके लहसुन को कटाई के बाद के नुकसान से बचाया सकता है। लहसुन को विभिन्न मूल्य वर्धित उत्पादों में संसाधित किया जा सकता है जैसे कि न्यूनतम संसाधित छिला हुआ लहसुन, निर्जलित फ्लेक्स, पाउडर, पेस्ट, अचार, तेल आदि (चित्र 1)।

न्यूनतम संसाधित छिला हुवा लहसुन

हालांकि भारतीय घरों में लहसुन का नियमित रूप से उपयोग किया जाता है, लेकिन लहसुन को छीलना समय लेने वाला और बोझिल होता है। कामकाजी महिलाओं की संख्या में वृद्धि के साथ, रेडी–टू–यूज़ न्यूनतम प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग भी बढ़ रही है। छिले हुए लहसुन का उपयोग सुविधाजनक होता है और यह ताजा लहसुन ही भाती गुणात्मक विशेषताओं को भी बरकरार रखता है। हालांकि छिला हुआ लहसुन सुविधा प्रदान करता है, किन्तु छीलने से सुरक्षात्मक परत को हटाने के कारण इसका भंडारण जीवन कम हो जाता है। छिलके वाले लहसुन का भंडारण काल इसके किस्म के प्रकार, कंदों को छीलने से पहले की भंडारण अवधि और भंडारण की स्थिति (तापमान और सापेक्षिक आर्द्रता) पर निर्भर करता है। छिले हुए लहसुन में दिखाई देने वाले प्रमुख दृश्य गुणवत्ता परिवर्तन अंकुरण, सड़न और मलिनीकरण हैं। लहसुन को या तो हाथ से या यंत्रवत् छीला जा सकता है। भण्डारण के दौरान होने वाले वजन की कमी की रोकधाम हेतु श्वसन दर नियंत्रण करके भंडारण काल को बढ़ने में पैकेजिंग सामग्री का चयन बहुत महत्वपूर्ण है। छिले हुए लहसुन की अच्छी गुणवत्ता बनाए रखने के लिए 0 से 5 डिग्री सेल्सियस पर भंडारण अनिवार्य है, 5 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के भंडारण तापमान के परिणामस्वरूप क्षतिग्रस्त जगह पर गुलाबी या भूरे रंग का मलिनकिरण होता है और साथ ही यह सड़न और अंकुरण को लिए भी बढ़ावा देता है ।

संग्रहित लहसुन की कलियों की गुणवत्ता को बनाए रखने में संशोधित वातावरण पैकेजिंग (एमएपी) भी प्रभावी हो सकती है। व्यावसायिक रूप से छिला हुआ और संशोधित वातावरण में पैक किए गए लहसुन का एक उचित अपेक्षित भंडारण जीवन 0 डिग्री सेल्सियस पर 3–4 सप्ताह, 5 डिग्री सेल्सियस पर 2–3 सप्ताह; और 10 डिग्री सेल्सियस पर 1–2 सप्ताह है। लहसुन को 55 डिग्री सेल्सियस गर्म पानी में 10 मिनट के लिए डुबोकर बाद में 10 डिग्री सेल्सियस और > 95%

आर.एच. आपेक्षिक अद्रिता पर संग्रहीत करने पर कुर और अतिरिक्त सड़न को कम किया जा सकता है।

चित्र 1: लहसुन के विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पाद

निर्जलित लहसुन फ्लेक्स

निर्जलीकरण ताजा उत्पादों की तुलना में संवेदी विशेषताओं को बनाए रखते हुए शेल्फ–लाइफ को भी बढ़ाता है। निर्जलीकरण, सामग्री की जल गतिविधि एवं सूक्ष्मजीव गतिविधि को कम करता है, और इसके भंडारण के दौरान होने वाले भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों को कम करता है। हालांकि लहसुन एक अर्ध–नाश योग्य फसल है, लेकिन इसकी निर्जलित फ्लेक्स और पाउडर के रूप में उपलब्धता इसके शेल्फ–जीवन को बढ़ाने के अलावा मूल्य में वृद्धि करती है। लहसुन के फ्लेक्स को बनाने के लिए इसे छीलना, काटना, चयनात्मक पूर्व– उपचार एवं सूखने की अलग अलग तकनीकों (सूर्य/सौर, गर्म हवा/वैक्यूम ओवन, माइक्रोवेव, द्रवीकृत बैड़, फ्रीज सुखाने, इन्फ्रा–रेड आदि) का उपयोग करके तैयार किया जाता हैं। सुखाने से पहले चयनात्मक पूर्व उपचार सूखे उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करता है, भूरापन रोकता है, सुखाने की दर को तेज करता है और वाष्पशील यौगिकों को भी बरकरार रखता है। सुखाने से पहले 0.5% मेटावाइसल्फ़ाइट के घोल में डुबोकर लहसुन का पूर्व उपचार, भूरे रंग की प्रतिक्रियाओं को रोक कर सूखे उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करता है।

लहसुन चूर्ण/ पाउडर

लहसुन पाउडर मुख्य रूप से भोजन तैयार करने में मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है, यह कई औषधीय तैयारियों में एक वायुनाशक और गैस्ट्रिक उत्तेजक के रूप में भी कार्य करता है। इसका उपयोग एवं, भंडारण करना आसान और सुविधाजनक है, और इसे बिना किसी कठिनाई के ले जाया जा सकता है। पाउडर के रूप में निर्जलित लहसुन अत्यधिक हाइड्रोस्कोपिक है, यह 20% आर.एच. पर भी नमी लेता है। लहसुन पाउडर (नमी 6%) के लिए, संतुलित सापेक्ष आर्द्रता (25 डिग्री पर) लगभग 13% है। केकिंग के संबंध में लहसुन पाउडर के लिए महत्वपूर्ण बिंदु 10.6% नमी का स्तर है, और खतरे का बिंदु 9.5% है। एल्युमिनियम लैमिनेट और भूरे रंग की कांच की बोतल में परिवेशी स्थिति में लहसुन पाउडर का 3 महीने के तक भंडारण किया जा सकता है। पॉलीप्रोपाइलीन (पीपी) की पैकेजिंग सामग्री लहसुन पाउडर के भंडारण के लिए उपयुक्त नहीं है। लहसुन पाउडर को अलग–अलग मूल्य–वर्धित उत्पादों जैसे रेडी–टू–यूज़ गार्लिक ब्रेड मिक्स, करी मसाला मिक्स, सूप मिक्स आदि के रूप में तैयार किया जा सकता है। स्वच्छ और प्रभावी सुखाने की तकनीकों का उपयोग करके तैयार किए गए पाउडर का उपयोग औषधीय संरचना तैयार करने में भी किया जाता है।

लहसुन का पेस्ट

लहसुन का पेस्ट छीलकर और पीसकर तैयार किया जा सकता है। चूंकि पेस्ट में उच्च नमी होती है, इसलिए लंबे समय तक भंडारण हेतु उचित पैकेजिंग और भंडारण की तकनीक का चुनाव करना अनिवार्य होता है। इसके अलावा, भंडारण काल को बढ़ाने हेतु परिरक्षकों या उष्मा (थर्मल) उपचारों का उपयोग जा सकता है। आम तौर पर, लहसुन के पेस्ट का रंग हल्का टैन से क्रीम रंग का होना चाहिए, लेकिन तैयारी और भंडारण के दौरान लहसुन उत्पादों का हरापन एक प्रमुख गुणवत्ता समस्या के रूप में पहचाना गया है। हरे रंग की प्रक्रिया को एंजाइम एलिनेज की क्रिया से शुरू होने के लिए जाना जाता है; जो एक रंग निर्माण के रूप में जाना जाने वाला थायोसल्फिनेट को उत्पन्न करता है। यह रंग विकासकर्ता एक अमीनो एसिड के साथ रासायनिक रूप से प्रतिक्रिया करके वर्णक अग्रदूत बनाता है। तापमान और भंडारण की अवधि दोनों का लहसुन के पेस्ट के कुल रंग पर प्रभाव पड़ता है। लहसुन उत्पादों का हरापन लहसुन की किस्म और उत्पादों के निर्माण की स्थिति पर निर्भर करता है।

लहसुन का अचार

'बाजार में विभिन्न लहसुन–आधारित उत्पादों में, मसालेदार ब्लैंच्ड लहसुन को उपभोक्ताओं द्वारा काफी अधिक स्वीकार किया जाता है। मसालेदार, ब्लांच किए गए लहसुन में ऑर्गेनो सल्फर यौगिकों के कारण लाभकारी स्वास्थ्य प्रभावों के अलावा अच्छे संवेदी विशेषताओं के गुण होते हैं। हरे रंग के संभावित गठन को रोकने और तीखे स्वाद को दूर करने के लिए इष्टतम ब्लैंचिंग तकनीक 80 डिग्री सेल्सियस पर 1.1 मिनट के लिए उष्मा (थर्मल) उपचार किया जाता है। लंबे समय तक भंडारण के लिए, ब्लैंच किए गए लहसुन को आम तौर पर अम्लीकृत नमकीन का उपयोग करके छोटे कंटेनरों में पैक किया जाता है। भंडारण के दौरान इसे सूक्ष्मजीवों से सुरक्षित रखने के लिए पाश्चराइजेशन या सॉर्बेट्स / बेंजोएट्स प्लस रेफ्रिजरेशन तकनीक अपनायी जाती है।

लहसुन का तेल

लहसुन के कंदों में 0.06% से 0.1% वाष्पशील तेल होता है, जिसके सक्रिय घटक प्रोपाइल डाइसल्फ़ाइड, एलिन और एल्टिसिन होते हैं। लहसुन के तेल में एलिल सल्फाइड जैसे सल्फर कार्बनिक यौगिक होते हैं, जो अमीनो एसिड पर 'एंजाइम (एलीनेस) की क्रिया द्वारा निर्मित होते हैं। तेल का उपयोग न केवल एक स्वाद बनाने वाले यौगिक के रूप में किया जाता है, बल्कि एक न्यूट्रास्यूटिकल के रूप में भी किया जाता है। लहसुन का तेल मुक्त कणों (फ्री रेडिकल्स) को खत्म करने में प्रभावी है और इसमें शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट होने की क्षमता है। लहसुन के तेल को ताजा लहसुन के बल्बों से पारंपरिक हाइड्रो–डिस्टीलेशन या स्टीम स्ट्रिपिंग प्रक्रियाओं का उपयोग करके या वैकल्पिक रूप से नई तकनीकों जैसे उच्च दबाव निष्कर्षण को लागू करके निकाला जा सकता है। कार्बन डाइऑक्साइड पसंदीदा सुपरक्रिटिकल द्रव विलायक है, क्योंकि इसमें कम संकट बिंदु (ऊष्मगतिकी) तापमान होता है, यह गैर–विषाक्त, गैर–ज्वलनशील, आसानी से उपलब्ध और अपेक्षाकृत सस्ता होता है।

कालसिद्ध काला लहसुन (एज्ड ब्लैक गार्लिक)

लहसुन का उपयोग पुराने समय से लोक उपचार में एक औषधीय घटक के रूप में किया जा रहा है क्योंकि इसमें जैव–कार्यात्मक गुण होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं। हालांकि, इसकी अजीबोगरीब गंध के कारण यह कई लोगों को पसंद नहीं आता है। एज्ड ब्लैक लहसुन को उच्च तापमान (70°C) और उच्च आर्द्रता (90% RH) पर पूरे लहसुन को लम्बे समय तक भंडारण से तैयार किया जाता है, जिससे भूरे रंग के यौगिकों के कारण लहसुन काला हो जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान यौगिक एलिसिन, जो तीखी गंध के लिए जिम्मेदार होता है, पानी में घुलनशील एंटीऑक्सीडेंट जैसे एस–एलिलसिस्टीन, टेट्राहाइड्रो–ए–कार्बोलिन, जैविक रूप से सक्रिय एल्कलॉइड और फ्लेवोनोइड यौगिकों में बदल जाता है।

लहसुन के सेवन के लिए में सीमाएं

लहसुन का सेवन सैकड़ों वर्षों से किया जा रहा है, इसे एक सुरक्षित आहार माना जाता है। हालांकि, अधिक मात्रा में सेवन से कुछ प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है। आमतौर पर लहसुन के सेवन से जुड़ा मुख्य दुष्प्रभाव इसे कच्चे रूप में लेने पर सांस की दुर्गंध है। मतली और उल्टी अन्य प्रमुख दुष्प्रभाव हैं। लहसुन का कोई अनुशंसित दैनिक भत्ता निर्धारित नहीं है। ताजा लहसुन के रूप में रोजाना 1 से 2 फाँक खाना फायदेमंद और सुरक्षित दोनों है। कैप्सूल के रूप में, आमतौर पर सुझाई गई मात्रा 600 से 900 मिलीग्राम (लगभग 5,000–6,000 एमसीजी एलिसिन प्रदान करती है) को 2–3 बराबर मात्रा में विभाजित किया जाता है।

निष्कर्ष

लहसुन भोजन में स्वाद जोड़ने के अलावा इसके कई महत्वपूर्ण स्वास्थ एवं लाभप्रद गुणों के कारण यह प्रकृति से प्राप्त उपहारों में से एक है। औषधीय गुणों से भरपूर लहसुन का सेवन स्वास्थ्य लाभ के लिए अच्छा होता है। उपयोग एवं उपभोग के लिए तैयार रूप में लहसुन की उपलब्धता उपभोक्ताओं के लिए सुविधाजनक होती है। उपयोग के लिए प्रसंस्कृत रूप में तैयार लहसुन की उपलब्धता इसकी नियमित खपत में सहायक होगी। लहसुन को बेहतर भंडारण अवधि के साथ विभिन्न मूल्यवर्धित उत्पादों, जैसे कि न्यूनतम संसाधित छिले हुए लहसुन, निर्जलित फ्लेक्स, पाउडर, पेस्ट, अचार, आदि में संसाधित किया जा सकता है जो कि कटाई के बाद के नुकसान को कम करने में सहायक होता है।

पूर्वी भारत में खरीफ मक्का के मुख्य खरपतवार व उनकी रोकथाम

श्यामबीर सिंह[1], रियाज अहमद[2], अविनाश कुमार[2], दीपक पाल[2] एवं सचिन कुमार[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसन्धान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
[2]क्षेत्रीय मक्का अनुसन्धान व बीज उत्पादन केंद्र (भाकृअनुप–भामअनुसं), बेगुसराय (बिहार)
संवादी लेखक का ई–मेलः singhsb1971@rediffmail.com

खरपतवार क्या होता है ?

खरपतवार एक प्रकार का अवांछनीय पौधा होता है ,जो मुख्य फसल की उत्पादन और उत्पादकता को गहरी हानि पहुँचाता है तथा उस पर कीट और रोगो का आवाहन करता है और साथ ही साथ मिट्टी के पोषक तत्वों को भी बर्बाद करता है। पूर्वी भारत में खरीफ ऋतू में अधिक तापमान रहने व अधिक वर्षा होने के कारण खरपतवार भी अधिक पनपते है जोकि मक्का की फसल को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। नियंत्रण न करने की अवस्था में ये मक्का की फसल को पूरी तरह बर्बाद कर सकते है। खरपतवार वैसे तो सभी ऋतु में पाए जाते है किन्तु वर्षा ऋतु में अनुकूल वातावरण के कारण यह अत्यधिक मात्रा में पनपते है खरपतवार फसलों से पोषक तत्वों जल, प्रकाश, और हवा आदि के लिए संघर्ष करते है और कभी–कभी अपने द्वारा पैदा किये गए जहरीले पदार्थो से फसल उत्पादन और गुणवत्ता में कमी करते है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार का संघर्ष काफी अधिक और हानिकारक होता है। मक्का में खरपतवार शुरुआत के पोषक 35 से 45 दिनों तक महत्पूर्ण तत्व के लिए संघर्ष करते है तथा नष्ट नहीं किये जाने पर ये 50 से 60% तक क्षति पंहुचा सकते है।

- खरपतवारों के प्रकोप से मक्का के अनाज की उपज में भारी कमी आती है।
- खरपतवारों से होने वाला नुकसान फसल के बाद के चरणों की तुलना में प्रारंभिक अवस्था में अधिक होते हैं।
- फसल की प्रारांभिक अवस्था में पंक्तियों के बीच बैलों या ट्रैक्टर द्वारा की गई यांत्रिक निराई से फसल बहुत अच्छी तरह से बढ़ती है तथा बाद में पंक्तियों में हाथ से निराई कर सकते है।

ध्यान देने योग्य बातें :–

- फसल में निराई–गुड़ाई दो से तीन बार की जा सकती है, लेकिन फसल की घुटने की ऊंचाई के बाद नहीं करनी चाहिए।
- यांत्रिक निराई जड़वातन के लिए अच्छी है लेकिन खरीफ मौसम में लगातार बारिश एक गंभीर समस्या है जिससे मिट्टी गीली हो जाती है और कोई भी कृषि कार्य नहीं किया जा सकता है।
- किसी भी स्थिति में फसल की घुटने की ऊंचाई के बाद यांत्रिक निराई नहीं की जानी चाहिए क्योंकि इससे पत्तियों को नुकसान पहुंचता है।

मक्का में खरपतवार का प्रकोप अधिक क्यों है :–

- मक्के की फसल में ज्यादा उर्वरक दिया जाता है, इसलिए इसमें खरपतवार ज्यादा पनपते है।
- मक्का की फसल एक विस्तृत दूरी वाली फसल है। जिसक खरपतवारो की वृद्धि अधिक होती है।
- मक्का फसल की शुरुआती अवस्था में वृद्धि होने के कारण खरपतवारों की वृद्धि अधिक होती है।

कुछ मुख्य खरपतवार तथा उसका निवारण।

1. मोथा

वैज्ञानिक नाम :–Cyperus rotundus (साइपरस रोटंडस)

- इसे "दुनिया के सबसे खराब खरपतवारों" में से एक माना जाता है, जिसमें देशी पौधों को विस्थापित करके या देशी जानवरों के लिए भोजन या आश्रय की उपलब्धता को बदलकर कृषि और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने की क्षमता होती है।
- यह खरपतवार उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक है। जो लगभग हर प्रकार की मिट्टी, ऊंचाई, आर्द्रता इत्यादि पर उग सकता है।
- यह खरपतवार मक्का के अलावा 52 अन्य फसलों (सब्जी और बागवानी) को भी हानि पहुंचाता है।
- यह खरपतवार अपना प्रसार जड़ की गाठ के द्वारा करता है।

नियंत्रण

- रोपाई के 25 से 35 दिन बाद निराई तथा गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण कर सकते है तथा जड़ में हवा जाने के बाद मुख्य फसल के पौधों का अच्छे से विकास होता है।
- 1.5 से 2.2 किग्रा/हेक्टेयर एट्राजीन 50 wp का प्रयोग करने से इस खरपतवार का नियंत्रण कर सकते है।
- फसल 36 ग्राम हालोंसाल्फुरौन मिथायल 75 % WG + एट्राजिन 500 ग्राम प्रति एकड़ छिड़काव करने से मोथा जैसे खरपतवारों से छुटकारा पा सकते है।
- बुवाई 45 दिन पहले खेत में ग्लाइफोसेट 71% (राउंडफ, एक्सेलमेरा 71) छिड़काव करना चाहिए, जिससे मक्का की बुवाई के बाद कम खरपतवार निकले। जिसमें बुवाई के बाद 35 से 45 दिन बाद खुरपी के द्वारा निराई /गुड़ाई करने में आसानी होती है।
- बुवाई से पहले खेत से खरपतवारों को पूरी तरह से नष्ट कर गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे मिट्टी एकदम हल्की हो जाये।
- पैराक्वाट 0.5 लीटर प्रति हेक्टेअर का छिड़काव करना चाहिए।

2. दूबघास

वैज्ञानिक नाम :–Cynodon dactylon (साइनोडोन डैक्टिलॉन)

- इस घास की उत्पत्ति अफ्रीका के सवाना से हुई है और यह जमीन के साथ रेंगने और घास की घनी चटाई बनाने के लिए जानी जाती है जहाँ इस घास की गांठें छूती हैं।
- यह एक बारहमासी घास होता है।
- प्रकंद और स्टोलन के द्वारा इसकी प्रजाति का प्रसारण होता है।
- इसकी पत्ती 1 से 15 सेंटीमीटर तक लम्बी हो सकती है, तथा यह हरी तथा ज्यादा मजबूत होती है।
- यह तीनो ऋतुओं में फसल को क्षति पहुचाता है।
- फसल लगाने के 3 महीने बाद, यह घास लगभग 2 इंच लंबे और 20°C तापमान पर अंकुरित होने वाले बीज छोड़ना शुरू कर देती है।

नियंत्रण

- बुवाई से 45 दिन पहले खेत में 2 किग्रा./हेक्टेयर ग्लाइफोसेट 71% (राउंडफ) का छिड़काव करना चाहिए, जिससे मक्का की बुवाई के बाद कम खरपतवार निकलते है और 35 से 45 दिन बाद खुरपी के द्वारा निराई /गुड़ाई करने में आसानी रहती है।

- एट्राज़िन + 2,4–डी 0.50 + 0.50 किग्रा/हेक्टेयर बुवाई के 30 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए।
- टेम्बोट्रियोन 42% एससी को 115 मिली /एकड़ की दर से छिड़काव करने से इस खरपतवार को अच्छे से नियंत्रण कर सकते है, जो की बाजार में लॉडीस के नाम से ज्यादा प्रचलित है।

3. गाजर घास (कांग्रेस ग्रास, सफेद टोपी, चांदनी इत्यादि नामो से जाना जाता है)

वैज्ञानिकनाम :– Parthenium hysterophorus (पार्थेनियम हिस्टोफोरस)

- भारत में सबसे पहले यह गाजर घास पूना (महाराष्ट्र) में पाया गया था।
- यह एक वर्षीय शाकीय पौधा है, जिसकी लम्बाई लगभग 1 से 1.5 मीटर तक हो सकती है।
- इसका तना रोयेदार तथा अत्यधिक शाखा युक्त होता है।
- इसकी पत्तियां गाजर की पत्तियों जैसे नजर आती है इस लिए इसे गाजर घास कहते है।
- यह एक वर्ष में दो से तीन पीढ़ी पूरा कर लेती है।
- प्रत्येक पौधा 10000 से 25000 तक छोटे छोटे बीज पैदा कर सकते है।
- इस खरपतवार का मूल स्थान वेस्टइंडीज़ तथा उत्तरी अमेरिका माना जाता है।
- आज यह खरपतवार पूरे भारत भर में करीब 35 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में फैल चूका है।
- इसके बीज में सुषुप्ता अवस्था नहीं होने के कारण तथा सही वातावरण मिलने पर यह कहीं पर भी अंकुरित हो सकते है।

नियंत्रण

- नमी वाली भूमि में गाजर घास के फूल आने से पहले उखाड़ कर या तो आप वर्मीकम्पोस्ट बना सकते है या जला सकते है अतः उखाड़ने से पहले अपने हाथो में दस्तानो का प्रयोग करे ताकि किसी प्रकार की एलर्जी न हो।
- फसल की बुवाई के 25 से 35 दिन बाद निराई तथा गुड़ाई करने से खरपतवार को नियंत्रित कर सकते है तथा जड़ में हवा जाने के बाद फसल के पौधों का अच्छे से विकास होता है।
- बुवाई से 45 दिन पहले खेत में ग्लाइफोसेट 71% (राउंडफ) का छिड़काव करना चाहिए, जिससे मक्का की बुवाई के बाद कम खरपतवार निकले तथा 35 से 45 दिन बाद खुरपी के द्वारा निराई/गुड़ाई करने में आसानी रहती है।
- 1.5 से 2.2 किग्रा/हेक्टेयर एट्राजीन का प्रयोग करने से खरपतवार नियंत्रण कर सकते है।
- टेम्बोट्रियोन 42% एससी का 115 मिली/एकड़ प्रयोग करने से अच्छे से नियंत्रण कर सकते है , जो की बाजार में लॉडीस के नाम से ज्यादा प्रचलित है।

4. चौलाई घास

वैज्ञानिक नाम :–Amaranthus viridi (ऐमारैंथस विरिडी)

- चौलाई दुनिया के सभी गर्म क्षेत्रों तथा महानगरीय क्षेत्र में पाया जाता है।
- यह उष्ण कटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय और गर्म समशीतोष्ण क्षेत्रों में सबसे आम खरपतवारों में से एक है।

- चौलाई एक वार्षिक जड़ी बूटी है जो 6 से 100 सेमी तक ऊँची होती है।
- यह पूरे साल उपोष्ण कटिबंधीय और उष्ण कटिबंधीय जलवायु में बीज और फूलों द्वारा फैलता है।
- बीज समय के साथ व्यवहार्यता खो देते हैं और व्यवहार्यता में यह नुकसान उच्च तापमान पर तेज होता है।

नियंत्रण

- एक या दो बार हाथ से निराई करने से नियंत्रण किया जा सकता है।
- प्रभावी शाकनाशी की उपलब्धता के आधार पर, ऐमारैंथस विरिडिस को हाथ से हटाना नियंत्रण का एक प्रभावी साधन है।
- 2,4–D 400 ग्राम प्रति हेक्टेअर की दर से प्रयोग करने पर नियंत्रण हो जाता है।

5. पारा घास

वैज्ञानिक नाम :–Brachiariareptans (ब्राचिरियारेप्टेन्स)

- यह एक उष्ण कटिबंधीय बारहमासी या वार्षिक घास है, आमतौर पर बहुत शाखाओं वाली, शीर्ष पर रेंगने और नोड्स पर जड़ें जमाने के लिए। फर्टाइलकल्म 10 से 50 सेंटीमीटर तक की लंबाई वाली गांठों पर सीधा और जीनिकुलेटेड होता है।
- अफ्रीका में उत्पन्न, यह खरपतवार मध्य पूर्व, भारतीय और दक्षिणपूर्व एशियाई उपमहाद्वीप, चीन, फिलीपींस, इंडोनेशिया ऑस्ट्रेलिया और प्रशांत द्वीप समूह जैसे नई और पुरानी दुनिया के उष्ण कटिबंधीय तक पहुंच गया है।
- यह समुंद्री तट से 1200 मीटर की ऊंचाई तक और सड़कों के किनारे तथा सभी जगह पाया जाता है (बाढ़ के बाद धीरे–धीरे गायब हो जाती है)

नियंत्रण

- रोपाई के 25 से 35 दिन बाद निराई तथा गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण कर सकते है तथा फसल की जड़ों में हवा जाने के बाद पौधों का अच्छे से विकास होता है।

अंकुरण से पहले।

- 1.5 से 2.2 किग्रा/हेक्टेयर एट्राजीन का प्रयोग करने से खरपतवार नियंत्रण कर सकते है।

अंकुरण के बाद।

- टेम्बोट्रियोन 42% एससी / 115 मिली /एकड़ की दर से अच्छे से नियंत्रण कर सकते है ,जो की बाजार में लॉडीस के नाम से ज्यादा प्रचलित है।
- टोप्रामेज़ोन 33.6% एससी / 30 मिली /एकड़ की दर से अच्छे से नियंत्रण कर सकते है , जो की बाजार में गैलार्डो तथा टिन्जेर के नाम से ज्यादा प्रचलित है।

खरपतवार नाशियों का प्रयोग करते समय सामान्य सावधानियाँ :

- हमेशा सही प्रमाणित खरपतवारनाशी का प्रयोग करे तथा उससे पहले दिए गए निर्देशों को अच्छी तरह पढ़े और तत्पश्चात उपयोग करे।
- खरपतवारनाशी सही मात्रा में उपयोग करे।कम मात्रा का प्रयोग करने पर खरपतवार अच्छे से नष्ट नहीं होंगे, और ज्यादा मात्रा देने पर फसल को हानि पहुंचेगी।
- छिड़काव तेज हवा में नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव के लिए कट नोजल तथा फ्लेट फैन का प्रयोग करे।

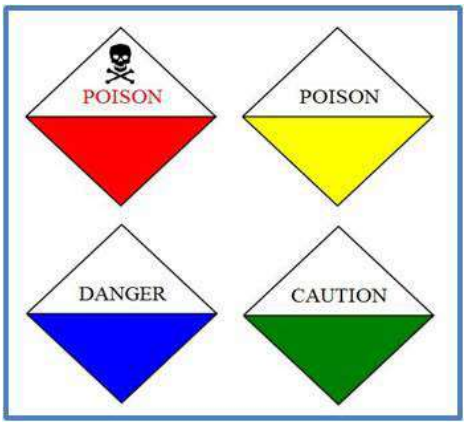

- पम्प को प्रयोग में लेन से पहले तथा इस्तेमाल के बाद अच्छी तरह से धोना चाहिए।
- छिड़काव करने से पहले कुछ सावधानी बरतनी चाहिए जैसे की अपने मुँह, नाक तथा अपने पूरे शरीर को अच्छी तरह से ढक लेना चाहिए, और छिड़काव करने के बाद अच्छे से साबुन लगा के नहाना चाहिए।

खरपतवारनाशी खरीदते समय सावधानी

1. लाल रंग प्रतीक (चिन्ह) अत्यंत जहरीला होता है।
2. पीला रंग प्रतीक (चिन्ह) लाल से कम जहरीला होता है।
3. नीला रंग प्रतीक (चिन्ह) जहरीला होता है।
4. हरा रंग प्रतीक (चिन्ह) मित्र कीट तथा वातावरण के अनुकूल होता है जो किसी प्रकार से जैव–विविधता को हानि नहीं पहुँचाता।

अतः प्रयास करना चाहिए कि यदि खरपतवारनाशियों का प्रयोग करना है, तो हरा रंग प्रतीक चिन्ह वाले खरपतवारनाशियों का ही प्रयोग करे। तथा लाल चिन्ह वाले खरपतवार नाशियो का प्रयोग करने से बचा जाए।

भारत के विकास में हिंदी का योगदान अति महत्वपूर्ण हैं, यदि हम भारत को विकसित देश के रूप में देखना चाहते हैं तो हिंदी के महत्व को हम सबको समझना होगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।

– सुमित्रनंदन पंत

हिन्दी की एक निश्चित धारा है, निश्चित संस्कार है। – जैनेन्द्र कुमार

डेटा विश्लेषण में अंतर्दृष्टि

पंकज दास, भारती एवं राहुल बनर्जी
भाकृअनुप–भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेखक का ई–मेलः pankaj.iasri@gmail.com

पिछले कुछ दशकों में प्रौद्योगिकी में बदलाव आने के कारण हर क्षेत्र में बड़ी मात्रा में डेटा एकत्रित हो रहे है। यह डेटा उस क्षेत्र के बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है। हालाँकि एकत्रित डेटा का उपयुक्त विश्लेषण करने की आवश्यकता है। व्यवसायों और उद्योगों के एकत्रित डेटा से मिली जानकारी को समझने और उचित निर्णय लेने में डेटा एनालिटिक्स मदद करता है।

डेटा विश्लेषण क्या है?

डेटा विश्लेषण डेटा एकत्र करने, मॉडलिंग और विश्लेषण करने की प्रक्रिया है जो निर्णय लेने के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। विश्लेषण के उद्देश्य के आधार पर विश्लेषण करने के लिए कई तरीके और तकनीकें हैं। डेटा विश्लेषण की विभिन्न विधियां मुख्य रूप से दो मुख्य क्षेत्रों पर आधारित हैंः अनुसंधान में मात्रात्मक विधियां और गुणात्मक विधियां। डेटा विश्लेषण के लिए विभिन्न तकनीकों, और मात्रात्मक अनुसंधान के तरीकों के साथ–साथ गुणात्मक अंतर्दृष्टि की जानकारी के द्वारा विश्लेषण के प्रयासों को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित दिशा मिलेगी, इसलिए इस विशेषज्ञान के लिए समय निकालना उचित है। डेटा विश्लेषण असंगठित डेटा को सार्थक जानकारी में परिवर्तित करने में मदद करता है। डेटा विश्लेषण प्रक्रिया के दौरान तीन आवश्यक चीजें होती हैं। i) डेटा संगठन, ii) सारांशीकरण और वर्गीकरण जो आँकड़ा लघुकरण के लिए उपयोग की जाने वाली विधि है iii) डेटा विश्लेषण– शोधकर्ता इसे टॉप–डाउन या बॉटम–यू दोनों विधियों से करते है।

डेटा विश्लेषण क्यों महत्वपूर्णहै?

डेटा विश्लेषण, डेटा की जाँच, पुनः क्रम और प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है जो कि योग्य जानकारी उपलब्ध करवाने के लिए महत्वपूर्ण है। शोधकर्ता को डेटा से सार्थक निष्कर्ष निकालने के लिए यह आवश्यक है। यह शोध का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है ताकि परिणामों को ठीक से इस्तेमाल और लागू किया जा सके। यदि किसी अनुसंथान में उपयुक्त डेटा विश्लेषण नहीं किया जाता है, तो यह शोध कार्य के अनुप्रयोग में त्रुटि उत्पन कर सकता है। एक शोध पत्र में डेटा विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए प्रत्येक शोधकर्ता को यह सुनिश्चित करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि शोध कार्य के दौरान जो भी डेटा एकत्रित हुआ है उसका ठीक से विश्लेषण किया जाये। शोध कार्य में, अनुसंधान के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विभिन्न माध्यमों का उपयोग करके डेटा एकत्र किया जा सकता है, लेकिन डेटा एकत्र करने के बाद उसकी व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए डेटा का सही विश्लेषण करना गंभीर रूप से महत्वपूर्ण है। डेटा संग्रह की उचित विधियों का उपयोग करने के बावजूद, यदि डेटा का सही विश्लेषण नहीं किया जाता है, तो यह शोध कार्य वास्तव में अच्छा नहीं होगा। एक उचित डेटा विश्लेषण विश्वसनीय जानकारी, डेटा जटिलता, मानव पूर्वाग्रह का प्रभाव आदि को सही तरीके से समझने में मदद कर सकता है।

अनुसंधान में डेटा के प्रकार

प्रत्येक प्रकार के डेटा में एक विशिष्ट मूल्य निर्दिष्ट करने के बाद चीजों का वर्णन करने का गुण होता है। विश्लेषण के द्वारा, इसे उपयोगी बनाने के लिए, इन मूल्यों को किसी दिए गए संदर्भ में संसाधित और प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। डेटा विभिन्न रूपों में हो सकता है। इस खंड में प्राथमिक डेटा के प्रकारों का वर्णन किया गया है।

गुणात्मक डेटा (Qualitative dat): जब प्रस्तुत डेटा में गुणों का विवरण होता है, तो हम इसे गुणात्मक डेटा कहते हैं। गुणात्मक डेटा में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के महत्वपूर्ण गुणों की व्याख्या होती है, जिसे मात्रात्मक रूप से

नहीं मापा जा सकता है। उदाहरणः लिंग, स्वाद, अनुभव, बनावट, व्यवहार, इत्यादि। हालांकि इस डेटा का अवलोकन किया जा सकता है लेकिन अनुसंधान में विशेष रूप से तुलना के लिए इस डेटा का विश्लेषण करना कठिन है। इस प्रकार का डेटा आमतौर पर फ़ोकस समूहों, व्यक्तिगत साक्षात्कारों या सर्वेक्षणों में प्रश्नों का उपयोग करके एकत्र किया जाता है।

मात्रात्मक डेटा (Quantitative data): संख्यात्मक आंकड़ों में व्यक्त किए गए किसी भी डेटा को मात्रात्मक डेटा कहा जाता है। इस प्रकार के डेटा को श्रेणियों में वर्गीकृत, समूहीकृत, परिकलित या रैंक किया जा सकता है। उदाहरणः उम्र, रैंक, लागत, लंबाई, वजन, अंक आदि इस प्रकार के डेटा के अंतर्गत आते हैं। आप इस तरह के डेटा को ग्राफिकल प्रारूप, चार्ट में प्रस्तुत कर सकते हैं और इस डेटा पर सांख्यिकीय विश्लेषण विधियों को भी लागू कर सकते हैं।

श्रेणीबद्ध डेटा (Categorical data) : यह समूहों में प्रस्तुत डेटा है। हालाँकि, श्रेणीबद्ध डेटा में एक वस्तु का एक से अधिक समूहों से संबंध नहीं हो सकता है। उदाहरणः एक व्यक्ति की जीवन शैली, वैवाहिक स्थिति, धूम्रपान की आदत या शराब पीने की आदत श्रेणीबद्ध डेटा के अंतर्गत आता है।

डेटाविश्लेषण के चरण

- **चरण 1: अध्ययन का उद्देश्य परिभाषित करना:** उद्देश्य को परिभाषित करना अर्थात एक परिकल्पना बनाना और यह पता लगाना कि इसका परीक्षण कैसे किया जाए। उद्देश्य स्पष्ट और संक्षिप्त होना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि एक किसान अपने उत्पाद की बिक्री को बढ़ाना चाहता है तो वह पूछ सकता है कि क्या ग्राहक उत्पाद की गुणवत्ता से संतुष्ट है?
- **चरण 2: डेटा संग्रहण:** उद्देश्य को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने और आपकी माप प्राथमिकताओं को निर्धारित करने के बाद दूसरा चरण डेटा एकत्र करना है। सबसे पहले यह निर्धारित करना आवश्यक है कि डेटा किस स्त्रोत से प्राप्त होगा। क्या डेटा किसी संगठन या वेबसाइट से प्राप्त होगा या एक शोध प्रयोग/सर्वेक्षण करने की आवश्यकता है। इस चरण का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि आप जिस समस्या को हल करना चाहते हैं उस के लिए आपके पास सम्पूर्ण डेटा हो।
- **चरण 3: डेटा क्लीनिंग, वर्गीकरण और सारणीकरण:** डेटा एकत्र करने के पश्चात् अगला चरण इसे विश्लेषण योग्य बनाना है अर्थात उच्च गुणवत्ता वाला डेटा जैसे कि त्रुटियों, डुप्लिकेट और आउटलेर्स, अवांछित डेटा बिंदुओं को हटाना आदि। एकत्रित डेटा, हमेशा एक असंगठित रूप में होते हैं और उन्हें संगठित करने की आवश्यकता होती है। इसे सांख्यिकीय विश्लेषण के योग्य बनाने के लिए इसे सार्थक और आसानी से समझने योग्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। कुछ विशेषताओं के आधार पर डेटा को विभिन्न वर्ग या उपवर्ग में समूहबद्ध करने की प्रक्रिया को वर्गीकरण कहा जाता है।
- **चरण 4: डेटाविश्लेषण:** इस चरण का उद्देश्य डेटा से सार्थक अंतर्दृष्टि निकालना है। डेटा विश्लेषण की तकनीकों और विधियों का उपयोग करके, डेटा में छिपे हुए पैटर्न और संबंधों की तलाश, अंतर्दृष्टि और भविष्यवाणियां की जा सकती है। डेटा विश्लेषण की तकनीकों और विधियों काफी हद तक शोध कार्य के उद्देश्य पर निर्भर करती है। अविभाज्य या द्विचर विश्लेषण, समय–श्रृंखला विश्लेषण और प्रतिगमन विश्लेषण आमतौर पर प्रयोग होने वाली डेटा विश्लेषण विधियों हैं।
- **चरण 5: परिणामों की व्याख्या:** डेटा विश्लेषण के बाद अगला चरण परिणामों की व्याख्या करना और उनसे सार्थक अंतर्दृष्टि प्राप्त करना है। यदि आप चाहते हैं कि आपके मूल्यवान शोध कार्य को लागू किया जाए, तो आपको इसे स्टेकहोल्डर्स और निर्णय लेने वालों के सामने इस तरह से प्रस्तुत करना चाहिए जो समझने में आसान हो।

डेटा विश्लेषण की चुनौतियाँ

शोधकर्ताओं और डेटाविश्लेषकों को लगातार और गुणवत्तापूर्ण डेटा एकत्र करने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। डेटा संग्रह प्रथाओं को बेहतर बनाने के तरीकों को विकसित करने के लिए, पहले डेटा संग्रह के लिए बाधाओं की पहचान करना आवश्यक है। सबसे प्रचलित चुनौतियों में से कुछ इस प्रकार हैं–

1. असंगत डेटा संग्रह मानक

डेटामानक इस बात की रूप रेखा तैयार करते हैं कि सामान्य डेटा आइटम और जनसांख्यिकीय जानकारी कैसे एकत्र की जानी चाहिए। स्थापित मानकों में आम तौर पर डेटा परिभाषाएं, मानकीकृत प्रश्न और स्वीकृत प्रतिक्रिया विकल्प होते हैं जो लगातार संग्रह प्रथाओं का मार्गदर्शन करते हैं। वर्तमान में, कई राष्ट्रीय और राज्य–व्यापी डेटामानक हैं जिनका उपयोग प्रशासनिक डेटा एकत्र करने के लिए किया जाता है। ये मानक हमेशा व्यापक रूप से लागू नहीं होते हैं, और स्वयं असंगत हो सकते हैं, और यह डेटा संग्रह की तुलना को प्रभावित कर सकता है।

2. डेटा संग्रह का संदर्भ

डेटा संग्रह विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है और एकत्रित डेटा भिन्न स्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकता है। कई परिस्थितियों में पूर्ण व् सटीक जानकारी प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है जैसे कि आय का डेटा संग्रह, आपराधिक मामलों का डेटा, इत्यादि। ज्यादातर मामलों में, डेटा एकत्र करने वाले व्यक्ति की प्राथमिक भूमिका होती है उदाहरण के लिए, एक पुलिस अधिकारी, सहायक कार्यकर्ता या चिकित्सा व्यवसायी के रूप में। संकट या आपातकालीन आदि स्थितियाँ में डेटा संग्रह सीमित हो सकते हैं जहाँ कार्यकर्ता किसी व्यक्ति की सुरक्षा को प्राथमिकता दे रहे हैं, या ऐसी परिस्थितियाँ जहाँ किसी व्यक्ति की गोपनीयता से समझौता नहीं किया जा सकता है।

3. डेटा संग्रह व्यावसायिक कार्य के लिए मूल नहीं है

संगठन के मुख्य कार्य और सेवा वितरण में समय का दबाव संगठन द्वारा एकत्र किए जाने वाले डेटा के प्रकार और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। प्रशासनिक डेटा को आम तौर पर परिचालन आवश्यकताओं के उप–उत्पाद के रूप में या आंतरिक व्यावसायिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए एकत्र किया जाता है और इसमें केवल ग्राहक के संपर्क विवरण जैसे सेवा करने के लिए आवश्यक मुख्य जानकारी शामिल हो सकती है। ऐसे मामलों में, किसी व्यक्ति की यौन अभिविन्यास, सांस्कृतिक पृष्ठभूमिया विकलांगता की जानकारी को विशेष सेवाओं की पेशकश नहीं करने वाले संगठनों के लिए एक परिचालन आवश्यकता के रूप में नहीं देखा जा सकता है। नतीजतन, संगठन केवल डेटा आइटम की एक संकीर्ण श्रेणी एकत्र कर सकते हैं, जिसमें व्यापक माध्यमिक उपयोग के उद्देश्यों के लिए पर्याप्त विवरण की कमी होती है, जैसे कि राज्य–व्यापी सेवाविश्लेषण, निगरानी या अनुसंधान करना।

4. डेटा जटिलता

कुछ मामलों में, एक डेटा आइटम के माध्यम से किसी व्यक्ति की पृष्ठ भूमि के बारे में पर्याप्त जानकारी का पता नहीं लगाया जा सकता है, उदाहरण के लिए विकलांग लोगों के लिए। जहां इसका प्रयास किया जाता है, यह अक्सर उन लोगों का कम प्रतिनिधित्व करता है जो सेवाओं तक पहुंचने के लिए उच्च जोखिम और बाधाओं का सामना करते हैं। इसमें विभिन्न अवधारणाओं के बारे में भ्रम जोड़ने की भी क्षमता है जो विशिष्ट समुदायों के बाहर के लोगों द्वारा पूरी तरह से समझ में नहीं आती हैं।

5. डेटा संग्रह में प्रशिक्षण का अभाव

चूंकि फ्रंट–लाइन सेवा और नैदानिक कर्मचारियों की प्राथमिक भूमिका आम तौर पर डेटा संग्रह नहीं होती है, उन्हें इस क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होती है। यदि कर्मचारी में प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता है तो वे संबंधित प्रश्न पूछने के लिए कम आत्मविश्वास महसूस कर सकते हैं। कुछ प्रकार के डेटा को कैसे और क्यों एकत्र किया जाए, इस बारे में प्रशिक्षण की कमी डेटा संग्रह को प्रभावित कर सकती है।

6. गुणवत्ता आश्वासन प्रक्रियाओं का अभाव

शुरू में एकत्र किए गए डेटा को सत्यापित नहीं किया जा सकता है क्योंकि किसी सेवा के संपर्क में रहने वाले व्यक्ति के साथ जानकारी की पुष्टि करने के सीमित अवसर हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, रिकॉर्ड रखरखाव सिस्टम का परिष्कार भिन्न हो सकता है और डेटा की गुणवत्ता अक्सर डेटा को सही ढंग से दर्ज करने वाले व्यक्ति पर निर्भर होती है। किसी भी संगठन में संसाधन की उपलब्धता के आधार पर, कर्मचारियों को पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का समय नहीं मिलता है।

7. आर्थिक और आईटी प्रतिबंध

कुछ संगठनों के पास डेटा संग्रह प्रणालियों और प्रक्रियाओं में सुधारों का बुनियादी ढांचा नहीं होता। यह बजट की कमी के कारण हो सकता है। कई आईटी सिस्टम सरकारी विभागों द्वारा प्रदान किए जाते हैं, जो सिस्टम अपडेट और संचालन की जिम्मेदारी लेते हैं। ये अपडेट महंगे हो सकते हैं और इसमें समय लग सकता है। कुछ मामलों में, इन आईटी प्रणालियों में कई प्रतिक्रिया मूल्यों या गतिशील पूछताछ को शामिल करने की सीमित क्षमता हो सकती है, जो परिष्कृत डेटा संग्रह का समर्थन करती है। एकाधिक प्रतिक्रिया विकल्प डेटा विश्लेषण के लिए समस्याएं पैदा कर सकते है।

इन चुनौतियों से निपटने के उपाय

उपरोक्त चुनौतियाँ सबसे अधिक प्रचलित हैं। कुछ समस्याएं प्रकृति में अंतर्निहित हैं, उनके लिए 100 प्रतिशत सुधार संभव नहीं हो सकता है। लेकिन कुछ समस्याएं दोषपूर्ण तरीकों या तकनीकों के कारण होते हैं जिन्हें सुधारा जा सकता है। सामान्य तौर पर, समस्याओं को दूर करने के लिए कुछ कदम उठाए जा सकते हैं जैसे कि डेटा संग्रह में सुधार

- डेटा संग्रह में सुधार के लिए संगठन के सभी स्तरों से प्रतिबद्धता
- एक डेटा स्रोत के भीतर जनसांख्यिकीय डेटा की गुणवत्ता में सुधार
- एकाधिक डेटा स्रोतों में डेटा की गुणवत्ता में सुधार
- संबंधित कर्मियों का प्रशिक्षण
- आईटी मुकदमेबाजी के लिए सरकारी नीतियों में सुधार
- नियमित निगरानी और समीक्षा

निष्कर्ष

डेटा विश्लेषण, उपयोगी जानकारी की खोज, निष्कर्ष निकालनें और निर्णय लेने में मदद करता है। डेटा के अध्ययन को सरल और सटीक बनाने में डेटा विश्लेषण का महत्वपूर्ण योगदान है। यह शोधकर्ताओं को डेटा की व्याख्या करने और सार्थक जानकारी में परिवर्तित करने में मदद करता है।

अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबन्धु तो हो गया, किन्तु भारतबन्धु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूंगा ।

– बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजरा फसल की उन्नत खेती

दिनेश चौधरी
क्षेत्रीय केन्द्र, भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, शिमला (हिमाचल प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेलः dineshagmjrp@gmail.com

भारत दुनिया का अग्रणी बाजरा उत्पादक देश है। भारतवर्ष में लगभग 85 लाख हैक्टर क्षेत्र में बाजरे की खेती की जाती है, जिसमें से 87 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं हरियाणा राज्यों में है। राजस्थान में बाजरा, भारत के कुल क्षेत्र का 50 प्रतिशत भाग में उगाया जाता है तथा 1/3 भाग बाजरा कुल उत्पादन का लगभग पैदा किया जाता हैं। देश के शुष्क तथा अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में यह प्रमुख खाद्य हैं। मोटे दाने वाली खाद्यान्य फसलों में बाजरा एक महत्वपूर्ण फसल है इसे गरीबों का भोजन भी कहा जाता है।

पोषण की दृष्टि से इसके दाने में अपेक्षाकृत अधिक प्रोटीन (10.5 से 14.5 प्रतिशत) और वसा (4 से 8 प्रतिशत) मिलती है, वहीं कार्बोहाइड्रेट, खनिज तत्व, कैल्शियम, केरोटिन, राइबोफ्लेविन (विटामिन बी–2) और पाइरिडोक्सिन (विटामिन बी– 6) भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। गेहूं एवं चावल की अपेक्षा बाजरे में लौह तत्व भी अधिक होता है अधिक ऊर्जा होने के कारण बाजरे को सर्दियों के मौसम में खाने में अधिक प्रयोग किया जाता है। बाजरे के पौधे का प्रयोग हरे तथा सूखे चारे के रूप में पशुओं को खिलाने के लिये किया जाता है। बाजरा के चारे में प्रोटीन, कैल्शियम, फॉस्फोरस और खनिज लवण उपयुक्त मात्रा में एवं हाइड्रोरासायनिक अम्ल सुरक्षित मात्रा में पाया जाता है। यह मुर्गीपालन व पशुपालन में भी दाना एवं चारा के तौर पर काफी उपयोगी है। भारत के कुल बाजरा क्षेत्र का लगभग 95 प्रतिशत असिंचित है, जिससे मानसून की अनिश्चितता की तरह बाजरा की उत्पादकता में भी उतार–चढ़ाव रहता है।

जलवायु

इसकी खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि पर हो सकती है परंतु जल भराव के प्रति सवेदनशील है। इसकी खेती के लिये बालू दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो, सर्वाधिक अनुकूल पायी गयी है। इसकी खेती गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में जहां 400–650 मिली मीटर बारिश हो करना लाभदायक है। इसकी फसल तेजी से बढने वाली गर्म जलवायु की फसल है। इसमे सूखा सहन करने की अदभुत शक्ति होती है। फसल वृद्धि के समय नम वातावरण अनुकूल रहता है साथ ही फूल अवस्था पर वर्षा का होना इसके लिए हानिकारक होता है क्योंकि वर्षा से परागकरण घुल जाने से बालियो मे कम दाने बनते है।

भूमि

बाजरे को कई प्रकार की मृदाओ जैसे– काली मिट्टी, दोमट, एवं लाल आदि मे सफलता से उगाया जा सकता है, लेकिन पानी भरने की समस्या के लिए यह बहुत ही संवेदनशील है। अम्लीय भूमि बाजरा की खेती के लिये उपयुक्त नहीं होती है।

खेत की तैयारी

बाजरा की फसल के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो–तीन जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से खेत को अच्छी तरह भुरभुरा बनाकर पाटा लगाना चाहिए। जिससे खेत मे पानी न रुक सके, साथ मे पानी के निकास की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। बुवाई के 15 दिन पूर्व 10–15 टन प्रति हेक्टेयर सडी हुई गोबर की खाद डालकर हल द्वारा उसे भली–भॉती मिट्टी मे मिला देते हैं। दीमक के प्रकोप की संभावना होने पर 1.25 कि.ग्रा./हेक्टेयर क्लोरोपायरीफॉस 1.5 प्रतिशतचूर्ण खेत मे मिलाये।

बुवाई का समय एवं विधि

बाजरे की बुवाई के लिये 15 जुलाई से 15 अगस्त तक का समय उपयुक्त होता है। जहां थोड़ी ज्यादा वर्षा होती है, वहां पर जुलाई के अंत में बुवाई करने से मानसूनी वर्षा से

परागण पर होने वाले दुष्परिणाम से फसल बची रहती है। सामान्य तौर पर बीजों की बुवाई कतारो मे पौधे से पौधे 15 सें.मी. एवं कतारों के मध्य 45–50 सें.मी. की दूरी रखकर बीज को 2–3 सेमी. गहराई पर बोना चाहिए। इस तरह से प्रति हे. पौधों की संख्या 1,75,000 से 2,00,000 तक होती है।

फसल चक्र

मिटटी की उर्वरता बनाए रखने के लिए फसल चक्र अपनाना महत्वपूर्ण है। बाजरे के लिए निम्न एकवर्षीय फसल चक्रों को अपनाना चाहिए, जैसे–

1. बाजरा–गेहूं/जौ
2. बाजरा–सरसों/तारामीरा
3. बाजरा–चना, मटर/मसूर
4. बाजरा–गेहूं/सरसों ग्वार, ज्वार/मक्का (चारे के लिए)
5. बाजरा–सरसों–ग्रीष्मकालीन मूंग

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर खेत की बुवाई के लिये 4 से 5 किग्रा. बीज पर्याप्त होता है। किसानो को सदैव प्रमाणित बीज और जल मांग के अनुसार ही किस्मों (सारणी 1.) का इस्तेमाल करना चाहिए।

बीज शोधन

बीज को बुवाई से पूर्व थीरम एग्रोसन जी एन, कैप्टान या सेरेसान मे से किसी एक दवा की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए। अर्गट के दानों को अलग करने के लिये बीज को 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोकर अलग कर लेना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बाजरे की फसल में जैविक खाद प्रयोग करने से भूमि में पानी को रोकने की क्षमता बढ़ जाती है। अतः प्रति हे. 100 से

सारणी 1. बाजरा की जल मांग के अनुसार प्रमाणित किस्में

ज्यादा पानी की मांग वाली किस्में		
किस्में	**फसल की अवधि**	**उपज(क्विंटल/हेक्टेयर)**
बायर 9444	80–85 दिन	30–35
पूसा 145	70–80 दिन	50
रासी 1827	70–80 दिन	35
कावेरी सुपर बॉस	80–90 दिन	32
श्री राम 8494	85–90 दिन	35
पायनियर 86m84	80–90 दिन	40
पायनियर 86m88	80–90 दिन	35–40
राज 167	80–90 दिन	30–40
पायनियर 86m11	85–90 दिन	40
कम पानी की मांग वाली किस्में		
एचएचबी 67	65–70 दिन	25–30
बलवान 4903	80–90 दिन	40–45
नंदी 70	85–90 दिन	25–30
एमएच 1609	80–85 दिन	30
नंदी 72	85–90 दिन	25–30
एचएचबी 67	65–70 दिन	25–30

150 क्विंटल कम्पोस्ट/सड़ी गोबर की खाद खेत में जुताई के समय मिला देना चाहिए। उर्वरको का प्रयोग भूमि परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। यदि भूमि परीक्षण नहीं कराया है तो संकर प्रजातियों के लिए 60 से 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश तथा देशी या हाइब्रिड बाजरा प्रजातियों के लिए 40 से 50 किलोग्राम नाइट्रोजन, 25 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 25 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर प्रयोग करते है। फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की कुल मात्रा की एक तिहाई मात्रा बुवाई के समय अन्य खादो के साथ मिलाकर देते है। एक तिहाई भाग बुवाई के 20–25 दिन बाद खड़ी फसल में टॉप ड्रेसिंग के रूप में तथा एक तिहाई भाग बालियां निकलते समय देने से बेहतर उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई

बाजरा ऐसी फसल है जिसको कम पानी की आवश्यकता होती है। जब वर्षा न हो तब फसल की सिंचाई करनी चाहिए। यदि बालीयां निकलते समय नमी कम है तो इस समय सिंचाई की आवश्यकता होती है क्योंकि इस समय पर नमी की बहुत आवश्यकता होती हैं। बाजरा की फसल अधिक देर तक पानी भराव को सहन नही कर सकती इसलियें पानी के निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

बाजरे की बुवाई के तीन से पांच सप्ताह के बाद पतली खुरपी या कसोले से खरपतवार की निराई करना उचित रहता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण एक अच्छा विकल्प है।

बेहतर बीज के चयन से अधिक पैदावार

इसके लिए एट्राजीन (50 डब्ल्यूपी) का 500 ग्राम (हल्की मृदा) एवं 750 ग्राम (दोमट अथवा भारी मृदा) को 250–300 लीटर पानी में घोलकर बाजरा बुवाई के दो–तीन दिनों के अंदर खेतों में छिड़काव करें। इससे चौड़ी व संकरी दोनों तरह की खरपतवार का प्रभावी नियंत्रण होता है।

फसल सुरक्षा

बाजरे में कोई खास कीट एवं बीमारियों का प्रकोप नहीं होता फिर भी कुछ रोग एवं कीट हानि पहुचाते हैं जिसका समय से नियंत्रण करके बेहतर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

बाजरे में लगने वाले प्रमुख रोग

हरित बाली रोग

यह रोग बीज और मिट्टी दोनो के द्वारा फैलता है इस रोग में पहले लक्षण पत्तियों पर और फिर बालियां पर दिखाई पड़ता है। पत्तियों का रंग पहले पीला या सफेद और बाद में कत्थई भूरा हो जाता है। रोगग्रस्त पौधों की बढ़वार रूक जाती है रोगरोधी किस्म के बीज को ऐप्रो एस डी–35 दवा 6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करके बोएं। खड़ी फसल में रोग दिखने पर बुवाई के 21 दिनों बाद मेंकोजेब 2–2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें।

कण्डुआ रोग

इस रोग के कारण से दानों के स्थान पर काला चूर्ण (फफूद के जीवाणु) भर जाता है। इस रोग के जीवाणु हवा द्वारा फैलते हैं और फसल में इसका संक्रमण फूल आने के समय होता है। इसके नियंत्रण के लिये 1 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से प्लान्ट वैक्स का बालियों पर छिड़काव करना भी प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। कण्डुआ रोग से ग्रसित बालियो को काटकर जला देना चाहिए और एक ही खेत में प्रत्येक वर्ष बाजरे की फसल लगातार नहीं उगानी चाहिए।

अर्गट रोग

ये बिमारी *क्लेविसेप्स फ्यूजोफॉरमींस* नामक फफूंद के संक्रमण के कारण होती है। इसमें बाजरा की बालियों से शहद की तरह गीला चिपचिपा पदार्थ निकलता है। जो बाद में बाली पर चिपक जाता है। इससे बचाव के लिए बाजरा की लेट

बुवाई से बचें। रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए। बीज उपचार के साथ ही दाना बनने की अवस्था में मैंकोजेब का 600–800 ग्राम/एकड़ 10 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। इस रोग से ग्रसित पौधों की बालियां और तनो का प्रयोग पशु चारे में न करें।

दीमक

इसके नियंत्रण के लिये बुवाई के समय ही 5 प्रतिशत एल्ड्रिन रसायन की 20 से 25 किग्रा./हे. की दर से कीडों में डालना चाहिए।

कटाई एंव मड़ाई

बाजरे की विभिन्न प्रजातियां 75–95 दिन में पककर कर तैयार होती हैं। खड़ी फसल में हसिया की सहायता से बाली काट कर या खेत से पहले फसल काटकर खलिहान में लायें इसके बाद बालियां काट ली जाती है। दानों में नमी की मात्रा 20 प्रतिशत रहने पर बालियां खेत से काटनी चाहिए। बालियों को खेत में सुखाकर मड़ाई थ्रेशर से करना चाहिए।अनाज का भंडारण करने के लिये दानों में 10 से 12 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं रहनी चाहिए।

उपज

देशी उन्नतशील प्रजातियो से दाने की उपज 10 से 20 क्विंटल व संकर प्रजातियों से दाने की औसत उपज 25 से 35 क्विंटल प्रति हे. तक प्राप्त हो जाती है। हरा चारा 200 से 300 क्विंटल प्राप्त हो जाता है। सूखी कड़बी की उपज 100 से 150 क्विंटल प्रति हे. प्राप्त हो जाती है।

फल के आने से वृक्ष झुक जाते हैं, वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं, संपत्ति के समय सज्जन भी नम्र होते हैं। परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा है।

– तुलसीदास

स्वयं सहायता समूहः ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम

आकाँक्षा सिंह[1], दिव्यता जोशी[2], प्रियंका शर्मा[2] एवं प्रियाजोय कर[3]
[1]तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मोरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
[2]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)
[3]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेलः singhakanchha3@gmail.com

सारांश

स्वयं सहायता समूह (एस एस जी) एक ऐसा कदम है जो महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण महिलाएं जो आज भी बिना आय के काम कर रहीं हैं, स्वयं सहायता समूह के माध्यम से वो आर्थिक तौर पर स्वतंत्रता की अनुभूति करती हैं। स्वयं सहायता समूह न सिर्फ महिलाओं को आर्थिक तौर पर स्वतंत्रता प्रदान करता है अपितु उनमे बचत की आदत को भी विकसित करता है। स्वयं सहयता समूह के माध्यम से महिलाएं अनेक प्रकार के उद्यम भी शुरू कर सकती है, इस प्रकार स्वयं सहयता समूह महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने के साथ साथ उनके सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए भी प्रतिबद्ध है।

परिचय

महिलाएं हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिला के चल रही हैं, ऐसे में उनकी योग्यता और महत्ता की अनदेखी करना संभव नहीं है। जहाँ महिलाएं देश विदेश में परचम लहरा रही हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसी भी महिलाएं हैं जिनका जीवन आज भी दूसरों पर निर्भर हैं, जैसे कि ग्रामीण महिलाएं जो विभिन्न प्रकार की कृषि सम्बंधित गतिविधियों में सम्मिलित होती हैं पर जो वित्तीय समावेशन में अभी भी पीछे हैं। आंकड़ों की बात करें तो 80 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएं दुग्ध उद्योग से सम्बंधित क्रियाओं में व्यस्त रहती हैं, 90 प्रतिशत महिलाएं मछली की लेन देन प्रक्रिया में सलंग्न रहती हैं। 60–70 प्रतिशत महिलाएं कृषि सम्बंधित अन्य कार्यों में व्यस्त रहती हैं, किन्तु आय एवं अधिकारों की बात की जाएँ तो आज भी वे पुरुषों से बहुत पीछे हैं। इस बात का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 51 प्रतिशत ग्रामीण महिलाए आज भी बिना आय के काम कर रही हैं। सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के लिए अनेक कदम उठाए हैं, जिनमें नवी पंचवर्षीय योजना (1997–2002) प्रमुख है क्योंकि इसमें महिलाओं के सशक्तिकरण पर विशेष जोर दिया गया। ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाना नारी सशक्तिकरण का सबसे अहम् बिंदु है क्योंकि ऐसा माना जाता है की महिलाओं की आर्थिक आत्मनिर्भरता देश कि प्रगति में अहम् भूमिका निभाती है। इसी दिशा में एक ठोस कदम है "स्वयं सहायता समूह", जो कि महिलाओं के जीवन में बदलाव लाने में कारगर शामिल हो सकता है।

ग्रामीण योजना एवं ऋण विभाग (RPCD)

स्वयं सहायता समूह आर्थिक रूप से ग्रामीण योजना एवं ऋण विभाग लोगों का एक छोटा सा समूह होता है जिसमे 10–20 सदस्य होते हैं। इस समूह में लोग स्वेच्छा से शामिल होते हैं। इस समूह की ये खासियत होती है कि हर सदस्य अपने बचत किये हुए पैसे इसमें जमा करता है, ताकि आवश्यकता पडने पर इसका इस्तेमाल किया जा सके। स्वयं सहायता समूह एक अनौपचारिक समूह है और (आरपीसीडी) के तहत किसी भी सोसायटी अधिनियम, राज्य सहकारी अधिनियम या साझेदारी फर्म के तहत इसका पंजीकरण अनिवार्य नहीं है। स्वयं सहायता समूह, 1992 में बैंकों के साथ मिलकर नाबार्ड द्वारा पायलट कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया था तथा शुरुआत में 255 स्वयं सहायता समूहों को जोड़ा गया था , अब यह कार्यक्रम 69.5 लाख बचत–लिंक्ड एसएचजी और 48.5 लाख क्रेडिट–लिंक्ड एसएचजी को जोड़ने तक पहुंच गया है और इस प्रकार लगभग 9.7 करोड़ परिवार इस कार्यक्रम के तहत जोड़े जा चुके हैं। इस समूह

की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं

1. समूह छोटा होता जिसमे 10–20 सदस्यों की सहभागिता आवश्यक है।
2. यह समूह आर्थिक और सामाजिक रूप से समान लोगों के बीच में बनता है।
3. प्रत्येक सदस्य की नियमित बचत इस समूह की प्रमुख विशेषता है।
4. जरूरत पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करना इस समूह की विशेषताओं में से एक है विपरीत परिस्तिथियों में ये समूह एक दूसरे को आर्थिक सहायता भी प्रदान करने पर बल देता है।
5. स्वयं सहायता समूह सामूहिक निर्णयों को बल देता है, इस से आपसी तालमेल एवं सबको साथ लेकर चलने की भावना जागृत होती है।
6. यह समूह महिलाओं को खुद के जीवन में ज्यादा नियंत्रण देने पर जोर देता है,ताकि वह अपने निर्णयों को आत्मविश्वास के साथ लेने में सक्षम हो।
7. यह समूह महिलाओं को सामाजिक, व्यक्तिगत और आर्थिक मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला पर सामूहिक कार्यवाही के लिए प्रेरित करता है।
8. सदस्यों में आपसी मतभेद होने पर वार्तालाप को सबसे सफल समाधान माना गया है।
9. इस समूह के बनने के 6 महीने के बाद तक इसके कार्य को देखा जाता है तत्पश्चात यह किसी बैंक, एन॰ जी॰ ओ॰ अथवा सरकारी विभाग से जुड़ जाता है

स्वयं सहायता समूह के सिद्धांत

1. स्वयं सहायता समूह 'आपसी सहयोग' को महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक विकास की महत्वपूर्ण कड़ी मानते हुए कार्य करता है।
2. यह समूह आपसी सहयोग एवं सहभागिता को आर्थिक स्वावलम्बन के लिए एक महत्वपूर्ण कदम मानता है और इसी दिशा में कार्यकरता है।
3. इस समूह के सिद्धांत ग्रामीण महिलाओं को बचत करने की आवश्यकता के बारे में बताने के लिए भी प्रतिबद्ध है।
4. इस समूह के माध्यम से गरीब एवं जरूरतमंद बचत करके आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति कर सकते हैं।
5. स्वयं सहायता समूह एक समूह होने के कारण ज्यादा से ज्यादा लोगों के समीप पहुंच सकता है, इसके अलावा समूह होने के कारण इसके लेन देन का क्रय कम हो जाता है, साथ ही जोखिम की संभावनाएं भी सूक्ष्म हो जाती हैं।
6. अनौपचारिक जमा धन सहायता, महिलाओं की आत्मनिर्भरता एवं उनके अधिकारों की दिशा में अनेक द्वार खोल देता है।
7. यह महिलाओं में सामजिक नेतृत्व की भावना को भी प्रेरित करता है एवं उन्हें पहचान दिलाने में सहायक भूमिका निभाता हैं।

स्वयं सहायता समूह बनाने की प्रक्रिया

स्वयं सहायता समूह किसी सरकारी संस्था, एन.जी.ओ या बैंक की शाखा की सहायता द्वारा निर्मित होता है। समान आवश्यकताओं और रुचि वाली महिलाओं को पहचान की जाती है एवं एक समूह का निर्माण होता है। यह समूह अपनी रूचि अनुसार कुछ कार्य की शुरुआत करता है एवं नियमित मिलता जुलता है। यह समूह अपने बनाये हुए नियमो का पालन करता है । सरकारी संस्था अथवा एन जी ओ इस समूह की गतिविधियों पर नज़र रखती है और गतिविधियों से संतुष्ट होने पर वित्तीय सहायता प्रदान करती है। प्रत्येक स्वयं सहायता समूह अपने स्वयं के नेता, सचिव और कोषाध्यक्ष का चयन करता है और नियमित बैठकें करता है। गैर सरकारी संगठनों द्वारा स्वयं सहायता समूह को क्षमता निर्माण इनपुट प्रदान किए जाते हैं, ताकि वे स्वतंत्र और प्रभावी तरीके से इकाइयों को संचालित करने में सक्षम हो सकें। बचत गतिविधि स्वयं सहायता समूह गतिविधियों की अनिवार्य विशेषता है। यह बचत गतिविधि पूंजी के संचय की अनुमति देती है। बचाई जाने वाली राशि समूह के सदस्यों द्वारा स्वयं तय की जाती है। एक या दो महीने की लगातार बचत की अवधि के बाद, स्वयं सहायता समूह अपनी बचत को सूक्ष्म उद्यमों की गतिविधि और उपभोग सहित अन्य उद्देश्यों के लिए छोटे आंतरिक ऋणों के रूप में बदलना शुरू कर देता

है, जैसा कि सदस्यों द्वारा तय किया जा सकता है। अधिकांश निर्णय लेने के कार्य जैसे कि आंतरिक ऋणों के लिए ब्याज दर, चुकौतीअनुसूची, जुर्माना आदि जैसे कार्य समूह के निर्णय पर छोड़ दिए जाते हैं। केवल वे स्वयं सहायता समूह जिन्होंने आंतरिक बचत को छोटे आंतरिक ऋणों के रूप में बदलने में अच्छा प्रदर्शन किया है, उन्हें बैंकों और अन्य वित्तीय मध्यस्थों के साथ जुड़ाव के माध्यम से बाहरी निधियों से सहायता प्रदान की जाती है। एन.जी.ओ. प्रमोटर और उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं, सूक्ष्म वित्त प्रणाली की स्थापना की सुविधा प्रदान करते हैं जो गरीब ग्राहकों को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत सशक्तिकरण लाने में सक्षम है।

स्वयं सहायता समूह को बनाने के लिए समूह को विभिन्न चरणों से होकर गुजरना पड़ता है, ये चरण समूह के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इनमे से कुछ प्रमुख चरण इस प्रकार हैं:

फॉर्मिंग: इस चरण में समान आवश्यकता वाले लोग इक्कट्ठा होते हैं और इस बात पर चर्चा करते हैं कि वह एक साथ काम क्यों करना चाहते हैं और किस प्रकार उनकी जरूरते एक प्रकार की है।

स्टॉर्मिंग: दूसरा चरण आपसी मतभेद और निराशा प्रकट करने के लिए होता है और इस चरण में समूह के सदस्य एक दूसरे की बातों का खंडन करते हैं और अपनी निराशा व्यक्त करते हैं।

नॉर्मिंग: इस चरण में महिलाएं अपने मतभेदो को आपसी सहमति से निपटाती हैं और कुछ प्रमुख विषयों पर निर्णय लेते हुए समूह के लिए कुछ प्रमुख नियम और कानून बनाती हैं

परफार्मिंग: इस चरण में महिलाएं नियमों के अनुसार अपने कार्यों को शुरू करती हैं और समूह की महत्ता और एकता को धयान में रखते हुए अपना सफल योगदान देती हैं।

उदाहरण

- **फुकादलानी स्वयं सहायता समूह (2002–03):** यह समूह स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार के अंतर्गत असम के नाव वोइचा ब्लॉक में कार्यरत है। यह 11 महिलाओं का समूह है जिनके लिए एक 1.05 हेक्टेयर का तालाब निर्मित किया गया। इस तालाब के माध्यम से महिलाएं मछली पालन करती हैं एवं इसे समीप अथवा दूसरे राज्यों के बाज़ारों में बेचती हैं । इस कार्य के द्वारा महिलाओं ने आपार सफलता हासिल की है एवं एक अच्छी राशि जमा की है।
- **जागृति स्वयं सहायता समूह:** यह समूह 2004 में खेड़ा जिले के पोरडा गांव मे बनाया गया। इस समूह के माध्यम से महिलाओं ने बैंक खाते खुलवाए एवं एक अच्छी राशि जमा की, इस राशि का प्रयोग महिलाएं अपने निजी कार्यों को करने एवं कृषि से जुडी समस्याओं को हल करने में करती हैं। जमा की गयी राशि की सहायता से समूह के सभी सदस्यों ने 1–1 भैस खरीदी और उस से हर प्रकार का लाभ ले रहे है।

निष्कर्ष:

इस प्रकार स्वयं सहायता समूह महिलाओं के उत्थान में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह न सिर्फ महिलाओं को आर्थिक रूपसे आत्मनिर्भर बनाता अपितु उनको नवीन व्यवसायों का विकल्प भी देता है। इसलिए स्वयं सहायता समूह बनाना मतलब महिलाओं के उत्थान की ओर एक नया कदम बढ़ाना है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से केवल महिलाओं का ही नहीं बल्कि समग्र रूप से उनके परिवार और समुदाय का सशक्तिकरण हुआ है।

हिन्दी देश की एकता की कड़ी है। – डॉ. जाकिर हुसैन

पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की आवश्यकता, कमी एवं स्रोत

इन्दु चोपड़ा[1], कपिल आत्माराम चोभे[1], विनोद कुमार शर्मा[1] हरनारायण मीना[2] एवं रघुनाथ पाण्डेय[1]
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग संभाग
[1]भा.कृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]भाकृअनुप– कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान जोधपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेलः tinaindu@gmail.com

पौधों द्वारा उनकी वृद्धि एवं विकास को बनाये एवं बचाए रखने के लिए विभिन्न क्रियाएं प्रयुक्त की जाती हैं। साथ ही पौधों को सही अनुपात में खनिज पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का पर्ण हरिमा (क्लोरोफिल) संश्लेषण, प्रजनन वृद्धि, पौधों के चयापचय जैसी विभिन्न गतिविधियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव होते हैं। ये पोषक तत्व मृदा में उचित मात्रा में मौजूद हो सकते हैं किन्तु पौधों द्वारा ये अपेक्षाकृत कम मात्रा में प्राप्त किए जाते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों पर पड़ने वाले जैविक और अजैविक प्रभावों को कम करने में मदद करते हैं। और इनकी कमी से पौधों में कई रोग होते हैं जिसके परिणामस्वरूप भोजन की गुणवत्ता और मात्रा में कमी आ जाती है। इन सभी बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए यहाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका और पौधों की वृद्धि और विभिन्न कार्यों पर उनकी कमी के प्रभाव को रेखांकित किया गया है।

पौधों को 7 पोषक तत्वों की सूक्ष्म रूप से आवश्यकता होती है जिसमें बोरॉन (B), क्लोरीन (Cl), कॉपर (Cu), आयरन (Fe) मैंगनीज़ (Mn), मोलिब्डेनम (Mo) और जिंक (Zn) शामिल हैं। सूक्ष्म पोषक शब्द का प्रयोग पौधों द्वारा आवश्यक पोषक तत्वों की सापेक्ष मात्रा को इंगित करता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इन पोषक तत्वों का प्रयोग न किया जाए तो काम चल सकता है। यदि ये पोषक तत्व पौधों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होंगे, तो पौधों की वृद्धि धीमी हो जाएगी जिससे उत्पाद की मात्रा के साथ गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के स्रोत एवं मृदा में उनकी उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

वह मूल जगह जहां से मिट्टी विकसित होती है और मिट्टी बनाने के लिए होने वाली विभिन्न प्रक्रियाएं मिट्टी के अकार्बनिक सूक्ष्म पोषक तत्व की मात्रा निर्धारित करती हैं। मिट्टी के निर्माण के दौरान खनिजों के टूटने पर धीरे–धीरे उनमें से सूक्ष्म पोषक तत्व निकलने लगते हैं जो पौधों को उपलब्ध हो सकते हैं। मृदा के कार्बनिक पदार्थ सूक्ष्म पोषक तत्वों के द्वितीयक स्रोत के रूप में कार्य करता है। जब कार्बनिक पदार्थ विघटित होते हैं, तब ये धीरे–धीरे सूक्ष्म पोषक तत्वों को पौधों के लिए आसानी से उपलब्ध रूपों में छोड़ता है जो कि अन्यथा जटिल कार्बनिक यौगिकों के साथ मजबूती से जुड़े होते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता और अवशोषण क्षमता निम्नलिखित कारकों से प्रभावित होती हैः

- ऐसी मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम होती है जिसमें या तो कम कार्बनिक पदार्थ सामग्री (0.75 प्रतिशत से कम) है या फ़िर बहुत उच्च स्तर के कार्बनिक पदार्थ (> 30 प्रतिशत) हैं।
- चिकनी मिट्टी की तुलना में रेतीली मिट्टी में पौधों को उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा कम प्राप्त होने की संभावना होती है।
- मिट्टी का तापमान और नमी भी सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करती है। जैसे ठंडी मिट्टी में पौधों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है।
- मोलिब्डेनम को छोड़कर, मिट्टी का पीएच बढ़ने पर सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम हो जाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के कार्य और कमी के लक्षण

विभिन्न फसलों के पोषण स्वास्थ्य का मूल्यांकन करने के लिए, दिखाई देने वाले लक्षण उस क्षेत्र में पौधों की पोषण संबंधी कमियों को जानने के लिए एक महत्वपूर्ण नैदानिक

उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों में किसी पोषक तत्व के लिए कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं, लेकिन इनको आमतौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है: i) अवरुद्ध विकास, ii) क्लोरोसिस, iii) अंतःस्रावी क्लोरोसिस, iv) बैंगनी–लालरंग और v) परिगलन। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारण पौधों की वृद्धि रुक सकती है या उनमें किसी अन्य पोषक तत्व की कमी या अधिकता हो सकती है। इसलिए, सूक्ष्म पोषक तत्वों के कार्यों और लक्षणों के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी/अधिकता के लक्षणों की आंशिक सूची निम्नलिखित है:

तालिका 1: विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की विशेषता, कमी तथा अधिकता के लक्षण

सूक्ष्म पोषक तत्व	पौधों को उपलब्ध आयोनिक रूप	विशेषता	कमी के लक्षण	अधिकता के लक्षण
बोरॉन (B)	BO_3^{2-}, $B_4O_7^{2-}$	फलों और सब्जियों की उपज और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। बोरॉन, कैल्शियम के उपयोग और धनायन अवशोषण से भी जुड़ा है। यह पौधों में अत्यंत गतिहीन होता है जो नई वृद्धि के लिए स्थानांतरित नहीं होता है, लेकिन मिट्टी में यह काफ़ी गतिशील रहता है	बढ़ते हिस्सों में (मेरि स्टेमेटिक ऊतक) असामान्य विकास पाया जाता है। शिखर वृद्धि रूक जाती है। फूल और फल गिर जाते हैं। कुछ अनाज और फलों की फसलों में, उपज और मात्रा काफी कम हो जाती है	पत्तियों के सिरे और कोने भूरे हो जाते हैं और अंततः वह मर जाते है
मैंगनीज (Mn)	Mn^{2+}	यह कैल्शियम, मैग्नीशियम, और फॉस्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाता है। साथ ही यह क्लोरोफिल संश्लेषण और प्रकाश संश्लेषण के लिए भी आवश्यक है। मैंगनीज कई एंजाइम प्रणालियों का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह पौधों में गतिहीन होता है और पीएच बढ़ने पर मिट्टी में इसकी गतिशीलता कम हो जाती है।	पौधे और पत्ते हरे रंग के रहते हैं लेकिन छोटी पत्तियों के अंतः शिरा में क्लोरोसिस होता है।	पुराने पत्तों में भूरे रंग के धब्बे दिखाई देने लगते हैं जो कि एक क्लोरोटिक क्षेत्र और सर्कल से घिरे होते हैं।
जस्ता/ जिंक (Zn)	Zn^{2+}	जिंक, पादप एंजाइम प्रणाली के कार्य, बीज उत्पादन, स्टार्च उत्पादन और ऑक्सिजन संश्लेषण के लिए आवश्यक है। यह पौधों में गतिशील होता है लेकिन जैसे–जैसे पीएच बढ़ता है मिट्टी में गतिशीलता कम होती जाती है। उच्च पीएच, मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के निम्नस्तर, मिट्टी संघनन, पीकी अत्यधिक दर, और कम तापमान और गीली मिट्टी से जस्ता की उपलब्धता कम हो जाती है	अंत में प्रभावित पत्तियों के सफेद होने के साथ ऊपरी पत्तियों द्वारा इंटरवेनल क्लोरोसिस दिखाई देता है। पत्तियां छोटी हो सकती हैं और रोसेट के रूप में विकृत हो सकती हैं।	आयरन की कमी हो सकती है

मोलिब्डेनम (Mo)	MoO_4^{2-}	यह नाइट्रोजन चयापचय का महत्वपूर्ण घटक है। मोलिब्डेनम पौधों और मिट्टी में गतिशील है परन्तु कम पीएच पर इसकी उपलब्धता कम होती है। आमतौर पर 6.0 से अधिक पीएच पर मोलिब्डेनम की कोई कमी नहीं होती है।	लक्षण नाइट्रोजन की कमी के समान दिखाई देते हैं। पुरानी और बीच की पत्तियाँ क्लोरोटिक हो जाती हैं। कुछ मामलों में, पत्ती के किनारे मुड़ जाते हैं जिससे पौधे का विकास और फूल बनना सीमित हो जाता है।	सामान्यतः अधिकता नहीं होती
आयरन (Fe)	Fe^{2+}, Fe^{3+}	आयरन क्लोरोफिल के रखरखाव के लिए आवश्यक है। लेकिन पौधों में यह गतिशील नहीं है और मिट्टी में भी पीएच में वृद्धि होने के साथ इसकी गतिशीलता कम हो जाती है। मिट्टी में पर्याप्त आयरन होने पर भी खराब जल निकासी वाली मिट्टी, उच्च कैल्शियम, मैंगनीज़, फॉस्फोरस, उच्च पीएच और ऑक्सीजन की कमी के कारण पौधों में इसकी उपलब्धता की कमी हो सकती है।	नई और उभरती पत्तियों पर अंतः स्रावी क्लोरोसिस होता है जो आगे नई वृद्धि के विरंजन की ओर जाता है। गंभीर परिस्थितियों में, पूरा पौधा हल्का हरा हो जाता है।	छोटे भूरे धब्बों के साथ पत्तियों का रंग बदलने लगता है।
कॉपर (Cu)	Cu^{2+}	कॉपर विभिन्न एंजाइम प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है। यह प्रकाश संश्लेषण, श्वसन और लिग्निन के निर्माण में शामिल है। कॉपर मिट्टी और पौधों में गतिशील नहीं होता है। खनिज मिट्टी की तुलना में जैविक मिट्टी में और भारी मिट्टी की तुलना में रेतीली मिट्टी में इसकी कमी अधिक होती है।	विच ब्रूम नामक बीमारी हो जाती है। इसके कारण नई पत्तियों विकृत हो जाती हैं तथा पौधों की वृद्धि रूक जाती है।	जड़ों की वृद्धि रूक जाती है। आयरन की कमी हो जाती है जिससे विकास की गति धीमी हो जाती है।
क्लोरीन (Cl)	Cl^-	पौधे को लीफ टर्गर और प्रकाश संश्लेषण के लिए क्लोराइड की आवश्यकता होती है। यह लवणीय मिट्टी में उगने वाले पौधों के ऑस्मो–विनियमन से भी जुड़ा है।	नई पत्तियाँ क्लोरोटिक हो जाती हैं और पौधे आसानी से मुरझाने लगते हैं।	निचली पत्तियाँ समय से पहले पीली हो जाती हैं और पत्तियों के सिरे और किनारे जल जाते हैं। पत्तियाँ फट जाती हैं और पौधा आसानी से मुरझा जाता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के निदान के लिए कदम

एक पोषकतत्व की उपलब्धता, मिट्टी की पीएच, हवा और मिट्टी का तापमान, उपलब्ध नमी, अन्य पोषकतत्वों की अधिकता, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ और मिट्टी की खनिज सामग्री के बीच अंतर्संबंध काफ़ी जटिल हैं। यद्यपि दिखाई देने वाले लक्षणों का उपयोग संभावित समस्याओं की पहचान करने के लिए किया जा सकता है लेकिन आदर्श रूप से, कमियों का निर्धारण मिट्टी परीक्षण और / या पौधे के ऊतक विश्लेषण द्वारा किया जा सकता है। निम्नलिखित कदम सूक्ष्म पोषकतत्वों की कमी की पहचान करने में मदद कर सकते हैं:

- सबसे पहले, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि फसल की ख़राब वृद्धि का कारण मैक्रोन्यूट्रिएंट की कमी, सूखा, लवणता, रोग या कीटसमस्या, शाकनाशी चोट या शारीरिक समस्या तो नहीं है।
- इस बात की जानकारी भी इकट्ठी करनी चाहिए कि क्षेत्र में पहले किसी विशेष फसल या मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की पहचान तो नहीं की गई है।
- विशिष्ट सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों के लिए प्रभावित फसल की सावधानी पूर्वक जांच की जानी चाहिए।
- संपूर्ण विश्लेषण के लिए सूक्ष्म पोषकतत्वों सहित प्रभावित और अप्रभावित दोनों क्षेत्रों से अलग–अलग मिट्टी के नमूने इकट्ठे करें।
- यदि सभी संकेत सूक्ष्म पोषकतत्वों की कमी की ओर इशारा करते हैं, तो विशेषज्ञ द्वारा सुझाए गए तरीके के अनुसार सूक्ष्म पोषकतत्व को भूमि के एक विशिष्ट, स्पष्ट रूप से चिह्नित प्रभावित क्षेत्र पर लागू करें ताकि बाद में इनके असर को सही तरीके से जांचा जा सके।

ध्यान रखने योग्य बातें

- कम पोषकतत्वों के स्तर के संकेत असामान्य अंकुरण वृद्धि और पत्ती के आकार द्वारा बेहतर रूप से मिल सकते हैं
- अधिक गतिशीलता वाले पोषकतत्व पहले पुराने पत्तों पर कमी के लक्षण दिखाएंगे और कम गतिशील पोषक तत्व पहले छोटे पत्तों पर कमी के लक्षण दिखाएंगे।
- चूंकि नए लगाए गए और छोटे पौधों से तेजी से विकास की उम्मीद है, इसलिए उनके विकास के लिए पोषक तत्वों की कमी को दूर करने की आवश्यकता है
- मृढा परीक्षण कमी के निदान के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। परन्तु इसके साथ ही पोषक तत्वों के लक्षणों को कीड़ों या बीमारी से प्रभावित अन्य लक्षणों, प्रतिकूल मिट्टी की स्थिति जैसे संघनन या असंतुलित बनावट और अनुचित सिंचाई प्रथाओं से अलग करना बहुत मुश्किल है।

हिन्दी का आन्दोलन समूचे देश को आत्म निर्भर और समृद्ध बनाने का संकल्प है।

– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

बदलते जलवायु परिवेश में मृदा उर्वरता संरक्षण

अश्वनी कुमार वर्मा[1], आकाश[1], प्रमोद कुमार[1], अर्जुन प्रसाद वर्मा[2], लक्ष्मीकांत कन्नौजिया[3] एवं शान्तनु कुमार दुबे[4]
[1]चंद्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
[2]बाँधा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बाँधा (उत्तर प्रदेश)
[3] कृषि विज्ञान केन्द्र, बुलन्दशहर, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय मोदीपुरम, मेरठ, (उत्तर प्रदेश)
[4]भाकृअनुप–कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेल : ashwanikumar761994@gmail.com

देश में बढ़ती जनसँख्या के कारण खाद्यान्न फसलों में लगातार कमी आती जा रही है, इसको देखते हुए आज भी हमारे देश के किसान खेतो से अधिक उपज लेने हेतु अत्यधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल करते है। जिसका दुष्परिणाम यह है कि सघन खेती में पोषकतत्वों का अत्यधिक दोहन हो रहा है एवं मृदा को उन पोषक तत्वों का सहीमात्रा में लाभ नहीं मिल पा रहा है। जिसके कारण आज मृदा में विभिन्न पोषक तत्वों की व्यापक रूप से कमी आ गयी है। आज हमारे देश में मुख्यतः छः पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश , जस्ता, गन्धक एवं बोरान) की बड़ी पैमाने पर मृदा में कमी पायी जाती है। इसके अलावा अन्य पोषकतत्व जैसे आयरन, मैगनीज आदि सभी की भी कमी पायी जाती है। अगर सही समय पर इन पोषक तत्वों का मृदा में सही रूप से इस्तेमाल न किया गया तो किसान को अपने द्वारा कृषि में लगायी गयी लागत का शुद्ध लाभ तक मिल पाना मुश्किल होगा तथा मृदा का स्वास्थ्य खराब होने के साथ साथ कृषि उत्पादन में भी भारी मात्रा में कमी आएगी।

मृदा प्रबन्धन कैसे करें

मृदा प्रबन्धन का मतलब है कि भूमि के कटाव को रोक कर मृदा की उर्वरा शक्ति को बनाये रखना है। भूमि कटाव के कारण खेत की ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी पानी के साथ बह जाती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। मृदा प्रबंधन करने के लिए कई सारे उपचार उपलब्ध है परन्तु इन उपचारो का मृदा पर ठीक समय में प्रयोग करना भी अतिआवश्यक है जैसे–

- खेत को समतल करके मेड़बंदी करना चाहिए जिससे वर्षा के पानी का पूरे खेत में समान वितरण हो और ज्यादा देर तक खेत में ठहरा रहे।
- मृदा के कटाव को रोकने के लिए मेड़ पर घास तथा झाड़ीनुमा लाभदायक पौधे आदि उगाना चाहिये।
- जहां पर ढलानदार जमीन है वहां पर सभी कृषि क्रियाएँ जैसे जुताई, बुवाई, निराई–गुड़ाई आदि ढलान के विपरीत दिशा में करना चाहिये।
- यदि ढलान बहुत ज्यादा है तो इस दशा में सीढ़ीनुमा खेती करना चाहिये।
- सिंचाई की उन्नत तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए जिसके द्वारा पानी की उपयोग क्षमता में वृद्धि की जा सके।

कृषि वैज्ञानिको द्वारा अनुमान लगाया गया है कि जलवायु परिवर्तन से भी मृदा की उर्वरता शक्ति घट रही है वायुमंडलीय तापमान के बढ़ने से कार्बिनक पदार्थ का अपघटन तेज होने लगता है और मृदा में जैविक कार्बन का स्तर लगातार घटने लगता है जिसका मृदा के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है मृदा में पोषकतत्वों के संतुलन बनाये रखने से ही उसकी उपजाऊ शक्ति बनी रहती है।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें–उर्वरक प्रयोग का मूल उद्देश्य पौधों की समुचित बढ़वार और पैदावार के लिए

मृदा में अनुकूल पोषण दशाएं बनाये रखना होता है खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करना अतिआवश्यक है तथा उर्वरक प्रयोग का उचित समय निर्धारण, पोषक तत्व, मृदा स्वाभाव, जलवायु एवं फसल स्वाभाव को ध्यान में रखकर करना अच्छा रहता है।

मृदा परीक्षण—जब तक किसान यह नहीं जानेगे कि मृदा में किन पोषक तत्वों की कमी है व किन पोषक तत्वों की अधिकता है तब तक सही रूप से मृदा प्रबंधन करना आसान नहीं होगा। इन पोषक तत्वों की उपलब्धता जानने के लिए किसान द्वारा अपने खेत की मिट्टी का मृदा जाँच प्रयोगशाला द्वारा समय समय पर परीक्षण करवाना चाहिए। मृदा परीक्षण की रिपोर्ट के अनुसार ही हमें जैविक व रासायनिक उर्वरको का संतुलित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए आज भारत में 9243 मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएं स्थापित की जा चुकी है तथा इन प्रयोगशालाओं में मृदा का परीक्षण कुशल वैज्ञानिको द्वारा किया जाता है तथा बाद में वैज्ञानिको द्वारा ही किसान के खेत की मृदा का रिपोर्ट कार्ड बनाकर किसान को दे दिया जाता है जिसके आधार पर पोषक तत्वों का इस्तेमाल कर किसान लाभान्वित हो सकते है।

रासायनिक उर्वरको का प्रयोग कम करें—रासायनिक उर्वरक महंगे होने के साथ–साथ मृदा एवं मनुष्य दोनों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। रासायनिक उर्वरको के अत्यधिक प्रयोग से मृदा की उर्वरा शक्ति में कमी आने के साथ साथ मृदा की आन्तरिक संरचना तथा भौतिक व रासायनिक गुण पर भी काफी गहरा असर पड़ता है। जिसके विपरीत किसान मृदा में पोषकतत्वों की पूर्ति के लिए संतुलित मात्रा में जैविक व रासायनिक उर्वरकों को मिला जुलाकर इस्तेमाल करें। जैविक खाद जैसे–केचुए की खाद, गोबर की खाद, हरी खाद (सनई, ढैंचा आदि) इस्तेमाल कर किसान न सिर्फ पोषकतत्वों की पूर्ति कर सकता है बल्कि मृदा के सेहत में भी काफी अच्छा सुधार कर सकता है एवं मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवो की गतिविधियों में भी सुधार होता है।

हरी खाद का इस्तेमाल करें—जँहा पर सिंचाई के पर्याप्त साधन उपलब्ध है वहाँ हरी खाद का ही इस्तेमाल करें तो आने वाली फसल में नाइट्रोजन की आधी मात्रा हरी खाद के इस्तेमाल से पूरी की जा सकती है जैसे कि यदि धान की फसल के पहले ढैंचा की हरी खाद दी गयी है तो धान में यूरिया की मात्रा को आधा कम किया जा सकता है शोधकार्यों से यह सिद्ध हो गया है कि रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का संतुलित उपयोग, रासायनिक उर्वरकों या जैविक खादों के अकेले उपयोग की तुलना में अधिक प्रभावी होता है।

जैव उर्वरक

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चूका है कि जैव उर्वरक एक प्रकार की जीवाणु खाद है एवं जैव उर्वरक से आमतौर पर 30 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर भूमि को प्राप्त होती है यह भी देखा गया है कि जैव उर्वरकों के प्रयोग से उपज में 10 से 20 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों के पूरक होने के साथ–साथ उर्वरकों उपयोग क्षमता में भी वृद्धि करत`है।

जैव उर्वरकों के लाभ—जैव उर्वरक एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है जैव उर्वरक नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस के लिए वायुमण्डल

में उपस्थित नाइट्रोजन का मृदा में स्थरीकरण करते है, यह फॉस्फोरस जो कि मिट्टी में घुलनशील नहीं है, उसे भी घुलनशील कर पौधों में फॉस्फोरस की आवश्यकता को पूरा कर सकते है। इन उर्वरकों के द्वारा वृद्धि कारक रासायनों (ग्रोथ हारमोन एवं विटामिन) का रिसाव होता है जो पौधों की वृद्धि के लिए अत्यन्त लाभकारी होते हैं। जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों का स्थान कभी नही ले सकते हैं परन्तु इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में कमी अवश्य लायी जा सकती है। जैव उर्वरको द्वारा मृदा की संरचना, स्वास्थ्य एवं भौतिक गुण पर इनके अनुकूल प्रभाव के कारण उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।

फसल अवशेषों का इस्तेमाल—फसल अवशेषों में पोषक तत्वों का एक अच्छा संग्रह होता है। धान्य फसलों में जैसे—गेंहू, मक्का आदि के फसल अवशेषो में जितना कुल पोटाश मृदा से फसल ग्रहण करती है उसका लगभग तीन चौथाई इस फसल के अवशेषों जैसे भूंसे आदि में रह जाता है। यदि किसान इसको न जलाकर के मृदा में चाहे तो कम्पोस्ट के

रूपमें या चाहे तो ऐसे ही बिखेर कर जुताई कर मिलाये मृदा में पोटाश की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है जिससे कृषि लागत को भी कम किया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन योजना—

मृदास्वास्थ्य प्रबन्धन योजना के अन्तर्गत 10825 मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें मंजूर की गयी, जो की वर्ष 2009—14 में मंजूर 171 प्रयोगशालाओं से 63 गुना अधिक है, वर्ष 2009—14 में केवल 43 मृदा परीक्षण प्रयोगशालायें स्थापित की गयी थी, जिसकी तुलना में 2014—19 के दौरान 9243 प्रयोगशालायें स्थापित की जा रही है।

- इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण युवा एवं किसान जिनकी उम्र 18 वर्ष से 40 वर्ष है ग्राम स्तर पर मिनी मृदा परीक्षण प्रयोगशाला स्थापित कर सकते है।
- प्रयोगशाला को स्थापित करने में लगभग 10 लाख रूपए का खर्च आता है, जिसका 40 प्रतिशत (4 लाख) सरकार वहन करती है।
- अगर कोई स्वयं सहायता समूह, कृषक सहकारी समितियाँ, कृषक समूह एवं कृषक उत्पादक संगठन इस प्रयोगशाला को स्थापित करता है तब सरकार की तरफ से 80 प्रतिशत (8 लाख) सहायता मिलती है।
- सरकार द्वारा मिट्टी नमूना लेने, परीक्षण करने एवं मृदास्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराने हेतु 300 रूपए प्रति नमूना प्रदान किया जाता है।
- इच्छुक युवा किसान या अन्य संगठन जिले के उपनिदेशक (कृषि), अथवा इनके कार्यालय में सम्पर्क कर अपना प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते है।

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।
– महात्मा गांधी

भारत में मक्का फसल उत्पादन की अपार संभावनाएं

अभिषेक[1], प्रेमलता मीना[2], अंकुर भाकर[2], सुन्दर आंचरा[3], ममता[2], सी एम परिहार[2] एवं चिरंजीव कुमावत[1]
[1]श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]महाराणा प्रताप कृषि एंव प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई – मेल : ankurbhakar@gmail.com

भारत में चावल और गेहूं के बाद मक्का तीसरी सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। आधुनिक भारत में घास कुल का पौधा मक्का अपनी बहुउपयोगी पहचान बना रहा है। मक्का की फसल को केरल के अतिरिक्त भारत के सभी राज्यों में किसानों द्वारा बोया जाता है। नौ राज्य अर्थात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात का भारत के मक्का उत्पादन में 85 प्रतिशत और खेती के तहत क्षेत्रफल में 80 प्रतिशत योगदान है। मुख्यतः मक्का खरीफ ऋतु की फसल है लेकिन मक्का की फसल को क्षेत्र अनुसार तीनों कृषि ऋतुओं (खरीफ, रबी व जायद) में भी लिया जा सकता है। मक्का को दोमट रेत से लेकर चिकनी दोमट मिट्टी तक विभिन्न प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। 2018–19 वर्ष में मक्का को भारत के 9.03 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल पर उगाया गया था एवं मक्का का उत्पादन 27.72 मिलियन टन रहा। मक्का की उत्पादकता 3070 किलो प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई। मक्का एक चमत्कारी फसल है जिसकी उत्पादन क्षमता अधिकतम है एवं पृथ्वी पर मक्का के समतुल्य उत्पादन क्षमता वाली अन्य कोई अन्न फसल नहीं है, इसी कारण इसे अन्न फसलों की रानी कहा जाता है। मक्का के दाने में 10% प्रोटीन, 4% तेल, 70% कार्बोहाइड्रेट, 2.3% कच्चा रेशा आदि पाए जाते हैं। मक्का के दाने में पर्याप्त मात्रा में विटामिन ए, निकोटीनिक एसिड, राइबोफ्लेविन एवं विटामिन ई पाया जाता है। विभिन्न पोषक तत्वों से परिपूर्ण होने के कारण मक्का का उपयोग मनुष्य और जानवरों के भोजन के रूप में किया जाता है। मानव के लिए मुख्य भोजन और जानवरों के लिए गुणवत्ता वाले फीड के अलावा, मक्का हजारों औद्योगिक उत्पादों के लिए एक बुनियादी कच्चे माल के रूप में कार्य करता है जिसमें स्टार्च, तेल, प्रोटीन, मादक पेय, खाद्य मिठास, दवा, कॉस्मेटिक, फिल्म, कपड़ा, गोंद, पैकेज और कागज उद्योग आदि शामिल हैं। मक्का के छः प्रमुख प्रकार हैं डेंट कॉर्न, फ्लिंट कॉर्न, पॉड कॉर्न, पॉपकॉर्न, फ्लोर कॉर्न और स्वीट कॉर्न। आधुनिक भारत में मक्का के उपोत्पादों का प्रसंस्करण कर काफी मुनाफा कमाया जा रहा है एवं इसकी भविष्य में भी अपार संभावनाएं हैं।

1. पॉपकॉर्न (*ज़िया मेज एवर्टा*) - मक्का में अद्वितीय पॉपिंग गुण पाया जाता है। जब इस मक्का के दानों को गर्म किया जाता है तो करनैल के भीतर दवाब उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप अचानक विस्फोट होता है एवं अनाज अंदर से

बाहर की तरफ निकल जाता है। पर्ल पॉपकॉर्न, वी एल अम्बर एवं अम्बर पॉपकॉर्न की महत्वपूर्ण किस्में हैं। पॉपकॉर्न का उपयोग भारत में अल्पाहार के रूप में बढ़ता जा रहा है। पॉपकॉर्न एक स्वास्थ्य अनुरूपी अल्पाहार है क्योंकि यह एक साबुत अनाज है, और उच्च फाइबर वाले साबुत अनाज हृदय रोग, मधुमेह, कैंसर और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं के जोखिम को कम करते हैं। मल्टीप्लेक्स मॉल, सिनेमाघरों आदि में फ्लेवर पॉपकॉर्न भी आज के समय में काफी प्रचलित है।

2. स्वीट कॉर्न (*ज़िया मेज सेकेराटा*)- मक्का की फसल को दानों में 70% नमी पर ही काट दिया जाता है एवं इसके शुद्ध पदार्थ का 20% भाग शर्करा होती है। स्वीट कॉर्न विटामिन ए और सी का समृद्ध स्रोत है। स्वीट कॉर्न 70–75 दिनों की फसल अवधि के साथ एक जल्दी पकने वाली फसल है। परागण के 18–20 दिन बाद हरे रंग के भुट्टों को तोड़ लिया जाता है। पंजाब स्वीट मक्का 1, माधुरी, विन ऑरेंज और प्रिया स्वीट कॉर्न की कुछ किस्में है। मसालेदार उबले हुए अतिरिक्त मीठे मक्की के दाने एक लोकप्रिय स्नेक (नाष्ता) बन गया है। स्वीट कॉर्न की चाट बच्चों के साथ साथ बड़ों द्वारा भी काफी पसंद की जाती है। इसी कारण भारत के विभिन्न राज्यों में बड़े शहरों और शहरों के आसपास के क्षेत्रों में इसकी खेती बढ़ गई है।

3. बेबी कॉर्न–बेबी कॉर्न, पॉपकॉर्न एवं स्वीट कॉर्न की तरह कोई प्रजाति नहीं होती बल्कि इसमें मक्की के भुट्टे को युवावस्था में काट लिया जाता है खासकर उस समय जब रेशम या तो उभरा नहीं होता है या सिर्फ उभरा होता है और कोई निषेचन नहीं हुआ होता (बेबी कॉर्न को काटने का समय उगाई गई किस्म पर निर्भर करता है)। एक अच्छे आकार का बेबी कॉर्न 6–11 सेमी लंबाई और 1.0–1.05 सेमी व्यास का होता है। इसका सबसे पसंदीदा रंग मलाईदार हल्का पीला होता है। यह फॉस्फोरस का सबसे समृद्ध स्रोत है और फाइबर की अच्छी मात्रा होने के कारण इसका पाचन भी आसानी से हो जाता है। इसकी परिपक्वता अवधि 60 दिन है। बेबी कॉर्न को छिलका रहित कर सलाद, पकोड़े व सब्जी इत्यादि बनाकर खाया जाता है। इसका नाजुक मीठा स्वाद और कुरकुरा पन सभी को लुभाता है।

4. साइलेज –मक्का के पूरे पौधे में कोई विषैला पदार्थ नहीं होने के कारण जानवरों के चारे के लिए हर अवस्था पर उपयोगी है। चारे के लिए मक्का की ऊँची, पत्तेदार और लंबी अवधि की किस्मों को पसंद किया जाता है। अफ्रीकन टाल, प्रताप चरी 6 और जे 1006 चारा मक्का की किस्में है। हरे चारे के अतिरिक्त मक्का के दानों को भी जानवरों (मुख्यतः कुकुट पक्षियों) को खिलाने हेतु काम में लिया जाता है। अधिक गर्मी एवं सर्दी में हरे चारे की कमी को दूर करने के लिए जानवरों को साइलेज खिलाया जा सकता है। साइलेज एक किण्वित चारा है जिसे साइलो (एक संरचना) में उच्च नमी वाली फसलों को अवायवीय परिस्थितियों में भंडारण करके बनाया जाता है। साइलेज में 20–40% शुष्क पदार्थ एवं 14–16% कच्चा प्रोटीन होता है। प्रोटीन की कम मात्रा एवं कार्बोहाइड्रेट की अधिक मात्रा मक्का को साइलेज बनाने के लिए सर्वोत्तम विकल्प बनाती है।

चित्रः बबी कॉन से तैयार पकवान

5. जैव ईंधन – जैव ईंधन जीवाष्म ईंधन के साथ एक निश्चित प्रतिशत में एथेनॉल के मिश्रण का उत्पाद है। यह एथेनॉल आमतौर पर फसलों, तिलहन और कचरे से निकाला जाता है और एक अनुपात में जीवाष्म ईंधन के साथ मिश्रित किया जाता है ताकि ईंधन के गुणों को प्रभावित नहीं करे एवं साथ ही साथ यह दहन के दौरान उत्सर्जित होने वाली ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा को कम करता है अतः पर्यावरण के अनुकूल है। पर्याप्त मात्रा में स्टार्च का होना एवं तुलनात्मक रूप से एथेनॉल में आसानी से रूपांतरण मक्का को एक अच्छा जैव ईंधन फीडस्टॉक बनाता है। एथेनॉल में रूपांतरण हेतु पिसाई, एंजाइम के साथ पकाना, खमीर के साथ किण्वन और पानी निकालने के लिए आसवन की क्रियाएं शामिल हैं। ईंधन एथेनॉल हेतु पानी को निकालने के लिए आणविक छलनी का प्रयोग किया जाता है एवं विकृत करके एथेनॉल को न पीने योग्य बनाया जाता है। भारत में फिलहाल मक्का का उपयोग ईंधन एथेनॉल बनाने हेतु नहीं किया जा रहा है।

6. अन्य उपयोग -

- **भुट्टा** –मक्की के भुट्टे को सेक कर नमक और निंबू लगाकर खाया जाता है। बारिश के दिनों में यह अधिक प्रचलित रहता है।
- **आटा**– गेहूं के बाद मक्की का आटा ही लोगों द्वारा सर्वाधिक खाया जाता है। मक्की के आटे को रोटी बनाने के अतिरिक्त ब्रेड, मफिन, डोनट्स, पैन केक मिक्स, शिशु आहार, बिस्कुट, वेफर्स और मांस उत्पादों में भराव, बांधने हेतु एवं वाहक के रूप में प्रयोग में लिया जाता है। मक्की के आटे को कॉर्न फ्लेक्स बनाने हेतु भी काम में लिया जाता है, जो कि नाष्ते के रूप में काफी प्रचलित है।
- **क्वालिटी प्रोटीन मक्का**– उच्च लाईसीन और ट्रिप्टोफैन अमीनो अम्ल होने के कारण क्वालिटी प्रोटीन मक्का, मक्का मूल भोजन होने वाले बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार करने की क्षमता रखता है। यह आहार में प्रोटीन पूरक के लिए एक वैकल्पिक भोजन है।

पश्चिमीकरण के कारण पैक और प्रसंस्कृत भोजन की मांग भारत में बढ़ती जा रही है। अन्य डिब्बाबंद एवं फास्ट फूड खाद्य पदार्थों से बढ़ती बीमारीयों के मध्यनजर लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता आयी है जिसके फलस्वरूप वे प्राकृतिक नाष्ते एवं चाट को प्राथमिकता देने लगे हैं। अतः विभिन्न प्रकार का मक्का इस क्षेत्र में अपनी अनूठी जगह बना सकता है। किसान मक्का की फसल उगाकर प्रसंस्करण करके विभिन्न उत्पाद बनाकर मुनाफा कमा सकता है एवं साथ ही साथ अन्य लोगों को भी रोजगार प्रदान कर सकता है। इसके अतिरिक्त सीमित जीवाष्म ईंधन के घटते स्त्रोतों, बढ़ती तेल की कीमतों एवं पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए जैव ईंधन को अपनाया जा सकता है। मक्का का उपयोग जैव ईंधन हेतु काम में आने वाले एथेनॉल को बनाने के लिए भी किया जा सकता है। अतः भारत में मक्का के फसल उत्पादन से आमदनी बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं।

हिंदी और नागरी का प्रचार तथा विकास कोई भी रोक नहीं सकता।

– गोविन्दवल्लभ पंत।

कृषि में नैनो–प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग

दिनेश कुमार यादव[1], प्रशान्त कौशिक[2], ध्रुबा ज्योति सरकार[3], जितेंद्र कुमार[1], प्रियागुरव[1], भारत प्रकाश मीणा[1], दीप मोहन महला[4] सी एम परिहार[2] एवं जे के साहा[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[3]भाकृअनुप–केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

[4]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)

संवादी लेखक का ई – मेल : dinesh.yahoo1@icar.gov.in

नैनो–प्रौद्योगिकी ग्रीक शब्द" नैनो" से लिया गया है, जिसका मतलब "अतिसूक्ष्म" होता है, तथा यह मुख्यतः अभियांत्रिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स, भौतिक और भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों पर लागू होता है। नैनो–प्रौद्योगिकी की उत्पत्ति का श्रेय रिचर्ड फेनमैन को जाता है। रिचर्ड फेनमैनने 1959 में प्रकाशित उनके एक पेपर में नैनो–प्रौद्योगिकी का जिक्र किया तथा मशीनों और डेटासंग्रहण उपकरणों के आकार को कम करने के लिए अनुसंधान का आह्वान किया था।1986 में, एरिकड्राक्सलर ने "नैनो–प्रौद्योगिकी" शब्द दिया। नैनो–प्रौद्योगिकी, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नया क्षेत्र है जो भारतीय कृषि में दूसरी हरित क्रांति के लिए तकनीकी मंच के रूप में उभर रहा है। नैनो–प्रौद्योगिकी मुख्यतः परमाणु और आणविक स्तरों पर मौलिक रूप से नए आणविक संगठन के साथ नई संरचना या उपकरण बनाने का विज्ञान है मूल रूप से, नैनोकण का आकार 1–100 नैनोमीटर तक होता है। नैनोकणों को कार्बनिक संरचना, अकार्बनिक संरचना और कार्बन आधारित संरचना के आधार पर वर्गीकृत किया गया है (चित्र–2)। नैनोकणों का उपयोग विभिन्न क्षेत्रो में किया जाता है (तालिका–1)।

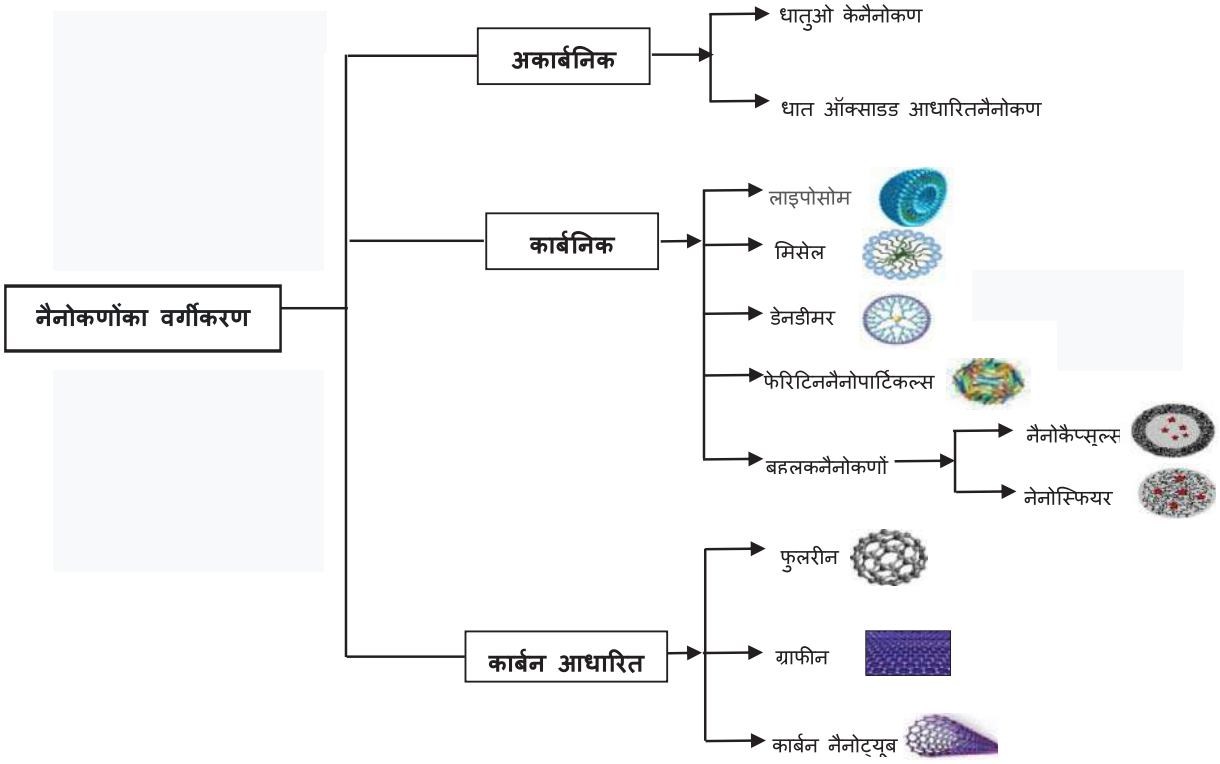

चित्र–1: नैनो कणों का वर्गीकरण

तालिका–1: नैनोमटेरियल्स के विशिष्ट अनुप्रयोग

क्षेत्र	अनुप्रयोग
ऊर्जा	उच्च ऊर्जा घनत्व, अधिक टिकाऊ बैटरी, हाइड्रोजन भंडारण अनुप्रयोगों में धातु नैनोकलस्टर्स का उपयोग, उच्च दक्षता वाले ईंधन इकाइयों में, नवीकरणीय ऊर्जा में और अति उच्च प्रदर्शन के लिए सौर इकाइयों में इलेक्ट्रो उत्प्रेरक के रूप में
जैव चिकित्सा	घाव ड्रेसिंग पर जीवाणुरोधी सिल्वर कोटिंग्स, रोग का पता लगाने के लिए सेंसर के रूप में
पर्यावरण	मृदा संदूषण, प्रदूषण, और बायोडिग्रेडेबल पॉलिमर की सफाई, औद्योगिक उत्सर्जन का उपचार, और प्रभावी जल निस्पंदन
अन्य	उत्प्रेरक की गतिविधि, प्रभावी सनस्क्रीन के रूप में

कृषि में नैनो–प्रौद्योगिकी

कृषि एवं खाद्य उद्योगों के लिए नैनो का प्रयोग पहली बार संयुक्त राज्य के कृषि विभाग (यूएसडीए) ने सितंबर 2003 (यूएसडीए, 2003) में प्रकाशित रोडमैप में बनाया था। वर्तमान समय में, यह क्षेत्र कृषि एवं खाद्य प्रणालियों में क्रांति लाने में मुख्य भूमिका निभा सकता है। भारत में भी, पारंपरिक कृषि प्रौद्योगिकियों के पूरक के रूप में नैनो–प्रौद्योगिकी को कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प के तौर पर देखा जा रहा है। अब तक, कृषि में नैनो प्रौद्योगिकी का प्रयोग ज्यादातर सैद्धांतिक रहा है, लेकिन अब खाद्य उद्योग, नई कार्यात्मक सामग्री का विकास, उत्पाद विकास, खाद्य सुरक्षा एवंजैव–सुरक्षा के लिए पद्धति और उपकरणों की रूपरेखा बनाने के मुख्य क्षेत्रों में नैनो प्रौद्योगिकी का प्रयोग शुरू हो गया है। इसमें कीटों, बीमारियों एवं रोगों का तेजी से पता लगाने, कीट नाशकों और पोषक तत्वों की स्मार्टडिलीवरी के लिए नए उपकरणों के साथ कृषि और खाद्य उद्योग में क्रांति लाने की क्षमता है। पोषक तत्वों की स्मार्ट डिलीवरी से तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता बढ़ेगी। समर्थकों का तर्क है कि, नैनो–प्रौद्योगिकी से कीटनाशको का अधिक सटीक का उपयोग किया जा सकता है। नैनो प्रौद्योगिकी का उपयोग कृषि में विभिन्न रूप में जैसे कवकनाशी, शाकनाशी, कीटनाशी, उर्वरक, सूक्ष्म पोषक, सेंसर्स और अन्य नैनो के रूप में किया जा सकता है। (चित्र–2)

चित्र–2: कृषि में नैनो–प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग

तालिका–2: नैनो–प्रौद्योगिकी के कृषि–खाद्य विषयगत क्षेत्र में संभावित अनुप्रयोग

क्र. संख्या	कृषि–खाद्य विषयगत क्षेत्र
1.	प्राकृतिक संसाधनों के कुशल प्रबंधन में उपयोग
2.	पादप/पशु रोग निदान में
3.	पादप प्रणालीके वितरण तंत्र में
4.	मृदा प्रणाली के वितरण तंत्र में
5.	पशु प्रणाली के वितरण तंत्र में
6.	कृषि अपशिष्ट/ उपोत्पादों के उपयोग में
7.	खाद्य प्रसंस्करण में
8.	जैव–औद्योगिक प्रक्रियाओं में
9.	जोखिम मूल्यांकन / सुरक्षा में
10.	नए आनुवांशिक नस्ल को विकसित करने में
11.	पशुधन प्रजनन और सुधार में
12.	नैतिक, सामाजिक, कानूनी और पर्यावरणीय निहितार्थ में

परिशुद्धता कृषि (सटीक खेती) में नैनो–प्रौद्योगिकी

बदलते पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए, निवेश (यानी उर्वरक, कवकनाशी, शाकनाशी, कीटनाशी और सूक्ष्म पोषक आदि) को न्यूनतम और उत्पादन (यानी, फसल की पैदावार) अधिकतम करने के लिए परिशुद्धता कृषि का एक दीर्घकालिक वांछित लक्ष्य रहा है। परिशुद्धता कृषि में कंप्यूटर, वैश्विक उपग्रह पोजीशनिंग सिस्टम और रिमोट सेंसिंग यंत्र का प्रयोग होता है ताकि उच्च स्थानीयकृत पर्यावरणीय परिस्थितियों को मापा जा सके। केंद्रीकृत ऑकडो के उपयोग द्वारा मृदा स्वास्थ्य और पौधे के विकास, बीज लगाने, उर्वरक, रासायनिक और पानी के उपयोग को उचित रूप से निर्धारित करके कम लागत में उत्पादन में संभावित वृद्धि किया जा सकता है। निगरानी के लिए जीपीएस सिस्टम से जुड़े स्वायत्त सेंसर की दक्षता को बढाने में नैनो–प्रौद्योगिकी सक्षम डिवाइस एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इन नैनो–सेंसर को पूरे क्षेत्र में वितरित किया जा सकता है, जहां वे मिट्टी की स्थिति और फसल वृद्धि की निगरानी कर सकते हैं। वायरलेस सेंसर का उपयोग पहले से ही यू.एस.ए और ऑस्ट्रेलिया जैसे कई देशों में किया जा रहा है। सेंसर में जैव–प्रौद्योगि की और नैनो–प्रौद्योगिकीके संयुक्त प्रयोगसे, अधिक संवेदनशीलता वाला उपकरण बनाया जा सकता है, जिससे पर्यावरणीय में होने वाली प्रतिक्रियाओं का जल्दी अनुमान लगाया जा सकता है।

उदाहरण के लिए:

- कार्बन नैनोट्यूब का उपयोग करने वाले नैनोसेंसर व्यक्तिगत प्रोटीन या यहां तक कि छोटे अणुओं को मापने में सक्षम होते है।
- नैनोकणों का उपयोग, संदूषक जैसे बैक्टीरिया में उपस्थित रसायनों के संकेत को ट्रिगर करने के लिए किया जा सकता है।
- नैनोसेंसर ट्रिगरिंग और एंजाइमैटिक रिएक्शन द्वारा टार्गेट रसायनों और प्रोटीन का पता किया जा सकता हैं।

अंततः सटीक खेती (परिशुद्धता कृषि), स्मार्टसेंसरों की मदद से उत्पादकता बढ़ाने के लिए सटीक जानकारी प्रदान करने में सक्षम होगा, जिससे किसान भाइयों को जल्दी एवं बेहतर निर्णय लेने में मदद मिलेगी।

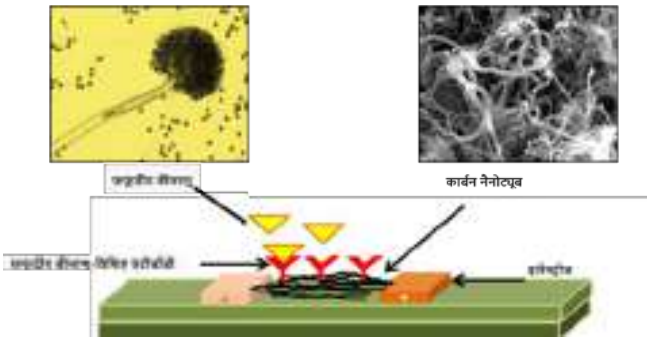

चित्र–3: खेत में शुरूआती फफूंदीय संक्रमण का पता लगाने के लिए नैनोसेंसर

कीट प्रबंधन के लिए नैनोकण

नैनो–प्रौद्योगिकी कीट प्रबंधन के लिए एक आकर्षक शोध क्षेत्र के रूप में उभर रहा है नैनो–कीटनाशक का प्रयोग फसल सुरक्षा में किया जा सकता है। इस व्यापक नैनो–पीड़कनाशीओं अनुसंधान से मौजूदा कीट नियंत्रण की मुख्य समस्या का समाधान करने की उम्मीद है, और इससे नए उन्नत नैनो–फ़ॉर्मुलेशन बनाये जा सकते है, जो की वातावरण में स्थिर और लंबे समय तक सक्रिय रहते हैं। इसी समस्या का समाधान करने की दिशा में, नैनो–सिलिका का उपयोग संग्रहित अनाज के कीड़ों के खिलाफ प्रभावी देखा गया है। ग्लाइफोसेट नैनोफ़ॉर्मुलेशन, बिना फ़ॉर्मुलेशन सहायको के शाकनाशी की जैव उपलब्धता में वृद्धि करता है। फैटी एसिड मिथाइलएस्टर, ऑर्गोसिलिकॉन और अल्काइल ग्लूकोसाइड्स के विभिन्न अनुपातों के द्वारा बनाया गया ग्लाइफोसेटनैनो–इमल्शन, वाणिज्यिक ग्लाइफोसेट फ़ॉर्मुलेशन की तुलना में समान या अधिक प्रभावी देखा गया है।

तालिका–3: नैनो–पीड़कनाशीओंके कुछ उदाहरण

नैनोमटेरियल्स	कीटनाशकों	पॉलिमर
कैप्सूल	इमिडाक्लोप्रिड	लिग्निन–पॉलीइथिलीनग्लाइकोल–एथिलसेलुलोज
	नीमतेल	एल्जिनेट –ग्लुटारालिडहाइड
क्ले (मृत्तिका)	इमिडाक्लोप्रिड / साइरोमाइजन	एल्जिनेटबेंटोनाइट

ग्रैन्यूलॅ (कनिका)	इमिडाक्लोप्रिड / साइरोमाइजन	लिग्निन
जेल	साइपरमेथ्रिन	मिथाइलमेथाक्रायलेट
झिल्ली	एंडोसल्फान	स्टार्चआधारित पॉलीइथिलीन
फाइबर	फीरोमोन	पॉलिएमाइड
मिसेल	रोटिनोन	एन–ऑक्टाडेकोनॉल–1–ग्लाइसीडिलईथर–ओ–सल्फेटकाइटोसान ऑक्टाडेकानोल ग्लाइसीडिल ईथर
रेजिन	फीरोमोन	विनाइलएथिलीन और विनाइलएसीटेट
सस्पेन्शन	कार्बोफ्यूरान	पाली (मिथाइलमेथैक्रिलेट)–पाली (एथिलीनग्लाइकॉल)

निष्कर्ष

नैनो–प्रोद्योगिकी, भारतीय कृषि में दूसरी हरित क्रांति लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। खाद्य फसलों के उत्पादन और भंडारण में नैनोटेक्नोलाजी के योगदन से बहुत प्रगति हुई है। अदृश्य, अप्रकाशित और अनियमित रूप से नैनो मे स्केलएडिटिव्स व्यावसायिक रूप से खाद्य और पोषण उत्पादों पहले से ही उपलब्ध हैं। इसी तरह, नैनोस्केलपर तैयार अनेक कीटनाशक बाजार में उपलब्ध होने के लिए तैयार हैं। नैनोटेक्नोलॉजी के प्रकाशनों और पेटेंटों में बढ़ते रुझान के बावजूद भी, इसको कृषि अनुप्रयोगो और बाजार में अभी तक भी नहीं लाया गया है जिससे कृषि में अभी भी नैनो–टेक्नोलॉजीएक मामूली क्षेत्र है। उच्च उत्पादन लागत, अस्पष्ट तकनीकी लाभ, विधान–संबंधी अनिश्चितताओं आदि कृषि क्षेत्र में नैनोटेक उत्पादों की कमी के मुख्य कारण है। नैनोमटेरियल्स के बारे में बहुत सी जानकारी उपलब्ध होने के बावजूद, कई नैनोकणों की विषाक्तता का स्तर अभी भी अनिश्चित है, जोखिम मूल्यांकन और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव के ज्ञान की कमी के कारण इन नैनो मटेरियल्स के अनुप्रयोग सीमित है।

आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते है, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

बेहतर फसल उत्पादन के लिए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता

अभिषेक[1], प्रेमलता मीणा[2], अंकुर भाकर[2] एवं सी एम परिहार[2]
[1]श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेखक का ई–मेल : abhigodara33@gmail.com

वर्तमान में बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति हेतु उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण में संतुलन बनाए रखना भी आवश्यक है। पिछले कुछ दशकों में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों और पादप सुरक्षा रसायनों का अंधाधुंध उपयोग हुआ जिसके कारण उत्पादन तो बड़ा लेकिन वातावरणीय असंतुलन, मृदा उर्वरा शक्ति का ह्रास एवं मृदा अपरदन जैसी समस्याएं सामने आई है। रासायनिक उर्वरकों के अनियोजित उपयोग के कारण आज कृषि के हालात यह है कि उर्वरकों के भरपूर प्रयोग से भी वांछित पैदावार नहीं मिल रही है। इसलिए टिकाऊ फसल उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य संतुलन बनाए रखना राष्ट्रीय कृषि प्रणाली के लिए आज एक प्रमुख चिंता का विषय बना हुआ है। इस चिंता के समाधान के लिए मृदा उर्वरता तथा मृदा स्वास्थ्य का प्रबंधन ''समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन'' प्रणाली से करना होगा तथा यही प्रणाली सतत कृषि के विकास की कुंजी है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन सदियों पुरानी प्रणाली है लेकिन हरित क्रांति से पहले जीवन निर्वाह खेती में फसलों द्वारा पोषक तत्वों का निष्कासन बहुत कम था। इस कारण से इस प्रणाली के महत्व को पहचाना नहीं गया। कृषि एक मृदा आधारित उद्योग हैं, जिसके दीर्घावधि सफल संचालन के लिए पोषक तत्व मुख्य भूमिका निभाते हैं। अतः समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य पोषक तत्वों के सभी प्रमुख कार्बनिक, अकार्बनिक एवं जैविक स्रोतों का मिश्रित रूप से कुशल एवं आवश्यकतानुसार उपयोग है। इसके फलस्वरूप उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा को सुधार कर एवं लंबे समय तक स्थाई रखकर अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता

- निरंतर रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम हो रही हैं। उदाहरण के लिए, हरियाणा और पंजाब के चावल उगाने वाले क्षेत्रों में मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पिछले 20 वर्षों में सघन फसल प्रणाली के दौरान 0.5 प्रतिशत से घटकर 0.2 प्रतिशत हो गई है।
- समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा उर्वरक उपयोग क्षमता को बढ़ाया तथा तत्वों की हानि को कम किया जा सकता है।
- उच्च विश्लेषण रसायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग करने से वायु, मिट्टी और पानी का प्रदूषण बढ़ रहा है जिससे ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्याएं उत्पन्न हो रही है।
- अकेले रसायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग से एक या अन्य पोषक तत्वों की मात्रा मृदा में कम हो जाती है।
- रासायनिक उर्वरकों के लगातार बढ़ती कीमतों के कारण किसान की शुद्ध आय कम हो रही है।
- समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सहायक हैं।
- जैविक खादों का प्रयोग पर्यावरण व मानवता की दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण है लेकिन बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थों की आपूर्ति करने के लिए केवल इनका उपयोग ही उपयुक्त नहीं माना

गया है क्योंकि जैविक खादों में पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में मौजूद होते हैं। इसलिए व्यावहारिक रूप से कार्बनिक स्रोतों का उपयोग रासायनिक उर्वरकों के साथ मिश्रित रूप से करना उपयुक्त माना गया है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य घटक

- अकार्बनिक/रसायनिक उर्वरक
- कार्बनिक खाद
- जैविक खाद

अकार्बनिक उर्वरक –

सघन खेती के अंतर्गत उर्वरक, पोषक तत्व आपूर्ति का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। उर्वरकों में एक या एक से अधिक पोषक तत्व होते हैं जो कि पौधे को तुरंत उपलब्ध हो जाते हैं। वर्तमान में किसानों के द्वारा नाइट्रोजन (यूरिया), फॉस्फोरस (सिंगल सुपर फास्फेट, डाई अमोनियम फास्फेट) और पोटाश (म्युरेट ऑफ पोटाश) के उपयोग पर जोर दिया जाता है जबकि अन्य गोण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग को नजरअंदाज कर दिया जाता है। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय मृदा के 50 प्रतिशत में जिंक और सल्फर की विभिन्न मात्राओं में कमी 125 जिलों में दर्ज की गई है। भारतीय मृदा की यह स्थिति समन्वित पोषक प्रबंधन को विकसित करने पर बल देती है।

कार्बनिक खाद –

कार्बनिक खाद पशु, मानव और पौधों के अवशेषों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ है जिसमें जटिल कार्बनिक रूपों में पौधों के पोषक तत्व पाए जाते हैं। इससे कार्बनिक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक अवस्था ठीक बनी रहती है।

उर्वरकों के साथ निम्नलिखित कार्बनिक खादों का स्माकालित उपयोग किया जा सकता है।

गोबर खाद – अच्छी सड़ी गली गोबर की खाद में नाइट्रोजन 0.5–1.0 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.25–0.5 प्रतिशत और पोटाश 0.5–1.0 प्रतिशत मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

केंचुआ खाद – केंचुए फसलों के अवशेष, घास फूस, कूड़ा, फल–फूल आदि को खाकर केंचुआ खाद में परिवर्तित करते हैं। केंचुआ खाद में पोषक तत्वों की मात्रा उपयोग में आने वाले फसल अवशेषों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

हरी खाद – हरी खाद उस दलहनी या अन्य फसल को कहते है जिसे उसी खेत में उगा कर या कही से लाकर हरियाली की अवस्था में ही हल या किसी अन्य यंत्र द्वारा मिट्टी में मिला दिया जाता है। जिससे उस खेत की मिट्टी में पोषक तत्वों तथा जैविक पदार्थो की पूर्ति हो सके।

हरी खाद के लिए प्रयुक्त होने वाली मूख्य फसलों का विवरण :–

क्र.	साधारण नाम	वानस्पतिक नाम	बुवाई का समय	वृद्धि काल (दिन)	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हे॰)	नाइट्रोजन का प्रतिशत
1.	सनई	*क्रोटोलेरिया जुन्शिया*	अप्रेल–जुलाई	45	20–30	0.43
2.	ढैंचा	*सेस्बेनिया एक्यूलिएटा*	अप्रेल–जुलाई	45	20–25	0.42
3.	ग्वार	*साइमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा*	जून–जुलाई	49	20–25	0.34
4.	लोबिया	*विगना साइनेसीस*	अप्रेल–जुलाई	45	15–18	0.49
5.	मूंग	*विगना रेडिएटा*	जून–जुलाई	45	8–10	0.48
6.	उड़द	*विगना मूंगो*	जून–जुलाई	45	10–12	0.41

जैविक खाद– जैविक खाद विशेष लाभदायक सूक्ष्म जीवों एवं किसी नमी धारक पदार्थ (चारकोल, लिगराइट आदि) का मिश्रण है। यह प्राय बाजार में ''कल्चर'' के नाम से उपलब्ध होते हैं। जैविक खाद का उपयोग बीज उपचार, पौध उपचार और भूमि उपचार के माध्यम से किया जा सकता है। यह निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

(क)	**नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले**	**सूक्ष्म जीवों का नाम**
	दलहनी फसलें	*राईजोबियम*
	अन्न फसल	*एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम , एसीटोबैक्टर* आदि
	चावल/धान	नीली हरी अनोला
(ख)	**फॉस्फोरस घुलनशीलता के लिए**	*एसपर्जिलस, पैनिसिलियम, सयूडोमोनॉस, बैसिलस* आदि
(ग)	**पोटाश व लोहा घुलनशीलता के लिए**	*बैस्लिस, फ्रैच्युरिया, एसीटोबैक्टर* आदि
(घ)	**माइकोराईजल कवक**	*एक्टोमाईकोराईजा* तथा *अरवस्कुलर माईकोराईजा*

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन हेतु कुछ सुझाव

- उर्वरकों एवं जैविक खादों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर ही करें।
- फसल चक्र में अन्न फसलों के साथ दलहनी फसलों का भी चुनाव करें।
- दलहनी फसल के बाद उगाई जाने वाली फसल में नाइट्रोजन की मात्रा में 15 से 20 प्रतिशत की कटौती करें।
- आवश्यकता अनुसार उपलब्ध फसल अवशेष गोबर तथा कूड़े करकट का प्रयोग कर कंपोस्ट बनाई जाए।
- उन्नत फसल उत्पादन के लिए उचित फसल व प्रजाति का चयन, प्रमाणित बीज का प्रयोग, समय पर बुवाई, उचित बीज दर, लाइनों में बुवाई, समुचित जल प्रबंधन, खरपतवार व रोग प्रबंधन अपनाएं।

सारांश

अकार्बनिक उर्वरकों को कार्बनिक एवं जैविक खाद के साथ मिलाकर उपयोग करने से वातावरण को प्रदूशित किए बिना लंबे समय तक अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इसी के साथ द्वितीयक पोषक तत्व एवं सूक्ष्म पोषक तत्व का उपयोग एवं उपलब्धता विकसित करने तथा कार्बनिक एवं जैविक उर्वरकों का उपयोग कर मृदा स्वास्थ्य संरक्षण को सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन, तकनीकी रूप से परिपूर्ण, आर्थिक रूप से आकर्षक, व्यवहारिक रूप से संभव और पर्यावरण के दृष्टिकोण से सुरक्षित होना अनिवार्य है।

हिंदी भाषा की उन्नति का अर्थ है राष्ट्र और जाति की उन्नति।

– रामवृक्ष बेनीपुरी।

फसल अवशेषों को जलानाः कारण, प्रभाव और प्रबंधन

प्रेमलता मीना[1], ममता[1], अंकुर भाकर[1], अजीत कुमार मीना[2], राजेंद्र बैरवा[3], सी एम परिहार[1], एवं दीप मोहन महला[4]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली
[2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
[3]डॉ. राजेंद्रप्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्याल, पूसा (बिहार)
[4]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई-मेल : premlatameena2597@gmail.com

देश के विभिन्न क्षेत्रों में फसल अवशेषों के उत्पादन और उनके उपयोग में व्यापक परिवर्तनशीलता है जो इन क्षेत्रों में उगाई गई फसलों, फसल की सघनता और उत्पादकता पर निर्भर करती है। फसल अवशेष पौधों का वह भाग होता है जो फसलों की कटाई और थ्रेसिंग के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है। गहन कृषि एवं उसमें मशीनीकरण को अपनाने तथा श्रम की घटती उपलब्धता से खेतों में बड़ी मात्रा में फसल अवशेष बच जाता है। फसल अवशेषों को जलाना स्वास्थ्य के लिए एक प्रमुख खतरा बन गया है। फसल अवशेषों को जलाना हानिकारक वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन में योगदान देता है, जो मानव स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है जैसे हृदय रोग और फेफड़ों की बीमारियां, इसके अलावा अस्थमा, खांसी जैसी सांस की समस्याएं पैदा हो सकती हैं। वायु प्रदूषण से होने वाले नुकसान के अलावा अवशेषों को जलाने से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों की हानि होती है और मिट्टी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फसल अवशेष पौधों के पोषक तत्वों और मिट्टी में जोड़े जाने वाले कार्बनिक पदार्थों का प्राथमिक स्रोत हैं। फसल अवशेषों में पोषक तत्वों की मात्रा अत्यधिक होती है, जैसे एक टन धान के भूसे में लगभग 2–3 किग्रा फॉस्फोरस (P_2O_5), 5–5 किग्रा नाइट्रोजन (N), 25 किग्रा पोटेशियम (K_2O), 1–2 किग्रा सल्फर (S) चावल द्वारा अवशोषित सूक्ष्म पोषक तत्वों का 50–70% और 400 किग्रा कार्बन होता है, जो केवल धान के पराली को जलाने से नष्ट हो जाता है। फसल अवशेष कार्बन प्रोद्भवन और मिट्टी की उत्पादकता में सुधार के लिए एक प्राथमिक घटक है। अतः इसका समुचित प्रबंधन बहुत आवश्यक है।

फसल अवशेष जलाने के कारण

फसल अवशेषों को जलाने का मुख्य कारण चावल की कटाई और गेहूं की बुवाई के बीच उपलब्ध कम समय सीमा (20–30 दिन) है। उत्तर पश्चिम भारत में चावल और गेहूं की कटाई के लिए कंबाइन हार्वेस्टर मशीन का उपयोग एक आम बात है, जो खेत में खड़े और साथ ही खुले फसल अवशेषों को पीछे छोड़ देती है, जिनका कम समय में निपटान करना बहुत मुश्किल है। मानव श्रम की कमी, श्रम लागत में वृद्धि और परंपरागत तरीके से फसल अवशेषों को हटाने की उच्च लागत के कारण हाल के वर्षों में फसल अवशेषों को जलाने की समस्या तीव्र होती जा रही है। विभिन्न क्षेत्रों में फसल अवशेषों के प्रबंधन की समस्याएं विविध रहती हैं जैसे कुछ क्षेत्रों में किसानों को उचित शिक्षा की कमी के कारण फसल अवशेष जला दिया जाता है और अन्य जगहों पर हर कोई खेत के स्तर पर धान की पराली जलाने के प्रतिकूल प्रभावों से अवगत होता है लेकिन वेस्वीक कार्य मशीनरी आर्थिक रूप से व्यवहार्य और धान के अवशेषों के निपटान के विकल्पों की कमी से विवश हैं।

फसल अवशेष जलाने के प्रमुख प्रभाव

- ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन
- पौधों के पोषक तत्वों और जैवविविधता की हानि
- सक्रिय लाभकारी मिट्टी बैक्टीरिया की मृत्युदर में बढ़ोतरी
- मिट्टी के पोषक तत्वों और उर्वरता की हानि
- मिट्टी का सख्त होना और आवरण न होने के कारण कटाव।

फसल अवशेष का प्रबंधन

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि फसल अवशेषों को मिट्टी में लौटाना कृषि की दृष्टि से अच्छा है। भारत सरकार ने खेतों में पराली जलाने पर प्रतिबंध लगाने की दिशा में कई कदम उठाए हैं। फसल अवशेष जलाने को, वायु अधिनियम 1981, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और विभिन्न उपयुक्त अधिनियमों के तहत एक अपराध के रूप में अधिसूचित किया गया है। फसल अवशेष जलाने को कम करने के लिए किए जा रहे प्रयासों के संदर्भ में, विभिन्न राज्य और केंद्रीय प्रशासन और नियामक निकायों द्वारा विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया गया है। नेशनलग्रीन ट्रिब्यूनल, कृषि मशीनीकरण पर उप मिशन के लिए स्वीकृत बजट से केंद्र और राज्य के बीच 60: 40 साझाकरण पैटर्न पर धन राशि जारी की गई है।

पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश और दिल्ली के एनसीटी राज्यों में फसल अवशेषों के इन–सीटू प्रबंधन के लिए कृषि मशीनीकरण को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष योजना बनायी गयी है। इस योजना का उद्देश्य पर्यावरण को वायु प्रदूषण से बचाना और फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले पोषक तत्वों और मिट्टी के सूक्ष्म जीवों के नुकसान को रोकना है। हालांकि, बहुत प्रयासों के बाद भी सम्पूर्ण सफलता नही मिली हैं, अभी भी और रोकथाम की आवश्यकता है। फसल अवशेष को जलाने से रोकने के लिए जनजागरूकता अभियान, कृषि–उपकरणों पर सब्सिडी, फसल विविधीकरण, धान के भूसे के लिए एक बाजार का निर्माण और धान के भूसे को बायोमास पेलेट ईंधन के रूप में उपयोग जैसे प्रयास करने चाहिए।

फसल अवशेष पौधों के पोषक तत्वों और मिट्टी में जोड़े जाने वाले कार्बनिक पदार्थों का प्राथमिक स्रोत हैं। फसल अवशेषों का उपयोग पशुओं के चारे के विकल्प के रूप में, पोषण वर्धित खाद, और मशरूम की खेती और ग्रामीण आपूर्ति के लिए जैव–ऊर्जा पैदा करने में किया जा सकता है। हालांकि, मौजूदा कंबाइन हार्वेस्टर, हैप्पीसीडर, स्ट्रॉ चॉपर/ मल्चर, रोटरीस्लेशर, रिवर्सिबल एमबीप्लॉ, रोटावेटर जैसी विभिन्न मशीनो का उपयोग फसल अवशेष प्रबंधन में किया जाता है। इसके अलावा मिट्टी की सतह पर फसल अवशेष के बने रहने से मिट्टी में भौतिक सुधार होता है। मिट्टी की रासायनिक और जैविक विशेषताओं, कम खरपतवार वृद्धि के कारण खरपतवारनाशी लागत को बचाता है, और पौधों के पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण और अगली क्रमिक फसलों में उर्वरक के उपयोग को कम करता है।

बेहतर फसल अवशेष प्रबंधन के लिए निम्नलिखित सुझाव कारगर साबित हो सकते हैं

- फसल अवशेषों का चुनाव हवा, मिट्टी की गुणवत्ता के उन्नयन, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और ग्लोबल वार्मिंग के लिए अक्षय ऊर्जा का उत्पादन करने के अनुसार करना चाहिए।
- सरंक्षित कृषि को अपनाना।
- ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना द्वारा ऊर्जा उत्पादन के लिए फसल अवशेषों का उपयोग करना चाहिए।
- खेत में यथास्थान प्रबंधन प्रथाओं, रासायनिक या जैविक तरीकों से तेजी से अपघटन और यांत्रिक तरीकों से पुआल मल्चिग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- जीरो टिलेज, डबल डिस्ककल्टर और हैप्पी सीडर जैसी मशीनों से फसल की पराली को मल्चिग करने में मदद मिलेगी।
- धान के अवशेषों को एकत्रित करके, उनका उपयोग उपयोगी उत्पाद जैसे जैविक खाद, बायो–चारा बनाना और बिजली उत्पादन के लिए वैकल्पिक ईंधन के रूप में गैसीकरण आदि के लिए किया जा सकता है।
- धान की फसल की कटाई के तरीके में बदलाव और फसल के तने को उपयुक्त रीपर कम हार्वेस्टर की मदद से जड़ स्तर से ही काटा जा सकता है जिसे स्वदेशी तकनीकों का उपयोग करके विकसित किया जाना चाहिए।

पराली जलाने पर अंकुश लगाने के लिए पूसा डीकंपोजर

हाल ही सितंबर 2020 के अंत में, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली ने पूसा डीकंपोजर"नामक

एक जैव–अपघटक तकनीक विकसित की है, जो कि फसल अवशेषों को सड़ाने के लिए एक सूक्ष्म जीवाणु कैप्सूल है। किसान 4 कैप्सूल, गुड़ और चने के आटे से 25 लीटर तरल मिश्रण तैयार कर सकते हैं। इसे 8–10 दिनों में किण्वित करें और फिर मिश्रण को खेतों में छिड़कें। यह मिश्रण एक हेक्टेयर भूमि के लिए पर्याप्त है।

फसल अवशेष प्रबंधन के लिए पूसा डीकंपोजर

यह मिश्रण सामान्य परिस्थितियों में लगने वाले विघटन के समय से लगभग आधे समय (20 दिन) में पराली को विघटित करता है

''भेड़–बकरी अपनाओ''

पवन कुमार माहोर
भाकृअनुप – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान,
अविकानगर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेल: vatskamal21@gmail.com

बचना है किसानों को आत्महत्या के वार से
ते अपना लो भेड़–बकरी मन की पुकार से
आजीविका का साधन है थोड़े से प्रयास से
आसानी से पाल सकते है थोड़े से अभ्यास से

जो जन है भूमिहीन वो भी पाल सकते है
बहुत कम मेहनत में जीवन निकाल सकते है।
घर में बची हुई दाल–रोटी इनको डाल सकते है।
घर–आंगन की परिस्थिति में आसानी से ढ़ाल सकते है।
भेड़–बकरी के अपशिष्टो से वर्मी कम्पोस्ट बना सकते है।
फसल पैदावार की ताकत उर्वरक से नहीं खाद से जुटा सकते है।

भेड़ पालन से गरीब के हालात बदल जायेंगे
और दुर्गति के दिन प्रगति की ओर मुड़ जायेंगे
गरीब के बच्चे भी घी–दूध खायेंगे
खाते थे जो सूखी रोटी वो घी लगाकर खायेंगे

पाल ली जिसने बकरी और भेड़
मुनाफा देने लगेगी खेत की मेड़
भेड़–बकरी झरबेरी के पत्तों से पाली जावेगी
घास–फूंस और लतायें इनके काम आवेगी।

कच्चे आम का प्रसंस्करण

रुपेंद्र कौर, संदीप कुमार रस्तोगी, सुशील कुमार शर्मा एवं पी के राय
कृषि विज्ञानं केंद्र गुंता, अलवर
भाकृअनुप–सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेल: ext_rupender@rediffmail.com

परिचय

आम के प्रयोग से बहुत सारी खाने की चीजे बना सकती हैं। आम में कैरोटीन पाया जाता है । जो शरीर में विटामिन 'ए' की कमी को पूरा करता है और खाद्य रेशों का अच्छा स्रोत माना जाता है। आम खाने के अनेको स्वास्थ्य वर्धक फायदे हैं। यह बीटा कैरोटीन, विटामिन 'ए', विटामिन सी, पोटैशियम का बहुत अच्छा स्रोत है आम के फल का उपभोग सीमित है, क्योंकि यह मौसमी है, आम एक जल्दी खराब होने वाला फल है, पूरे वर्ष उपभोग के लिए विशेष प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है। आम मात्र फल ही नहीं है यह घरेलू चिकित्सा के भी काम आता है। कच्चा–पका आम, छाल, गुठली, पत्तियों और फूल सभी औषधि बनाने के काम आती है। यह वात, कफ, अतिसार, दस्त, कब्ज, पेचिस, बवासीर आदि रोगों को नष्ट करता है । पोलियों के रोगी के लिए आम का सेवन लाभप्रद है। आम के अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ है जैसे– कच्चे आम को सुखाकर अमचूर, आम के रस को अनेक बार सुखाकर आम पापड़, आम के नए कोमल पत्तों को सुखाकर चूर्ण, अचार, चटनी, मुरब्बे, टॉफी, जैम, शर्बत आदि बनाए जाते हैं।

आम के पोषक मान

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन	1.4 ग्राम
ऊर्जा	3 कैलोरी
खनिज लवण	0.7 ग्राम
फॉस्फोरस	22 मि.ग्रा.
लोहा	0.23 मि.ग्रा.
विटामीन 'सी'	16 मि.ग्रा.
कैल्सियम	45 मि.ग्रा.
मैग्नीज	270 मि.ग्रा.
सोडियम	26 मि.ग्रा.
पोटैशियम	205 मि.ग्रा.

कच्चे आम प्रसंस्करण के उद्देश्य

- बेमौसम में उपयोग करने के लिए
- भोजन में विविधता लेन के लिए
- परिवार को पोषण सुरक्षा प्रधान कररने के लिए
- आम प्रसंस्करण द्वारा आय मे वृद्धि करने के लिए
- कटाई उपरांत होने वाली क्षति को काम करने के लिए
- ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर प्रधान करने के लिए
- आम के स्वाद में वृद्धि करने के लिए

आम की फांको को सुखाना

आवश्यक सामग्री :– अधिक सुगन्धयुक्त, कम रस वाले सख्त गूदे वाले आम

विधि :– कच्चे आम को पहले पानी से अच्छी तरह धो लें। छिलका उतार कर मोटी फांके काट लें। फिर तुरंत पोटैशियम मेटावाई सल्फाइड के घोल में डालकर रखें। 16 घंटे के बाद निकाल कर जल निसारकर सुखाया जाता है। इन्हें धूप में या ड्रायर द्वारा सुखाया जाता है। अच्छी सूख जाने के बाद पॉलिथीन लिफाफे में वायुरूद्ध अवस्था में पैक करके रखना चाहिए। इन सूखी फांकों से आवश्यकतानुसार चटनी, अचार, अमचूर आदि का निर्माण किया जा सकता है।

कच्चे आम (कैरी) का शर्बत

आवश्यक सामग्री :–कच्चे आम 500 ग्राम, चीनी 750 ग्राम, पोटैशियम मैटा बाई सल्फाईड 1 चम्मच, पानी 2 गिलास ।

विधि :– कच्चे आम को धोकर छिलका व गुठली को हटा दें। चीनी में 1 गिलास पानी मिलाकर चाष्नी बनायें।आम के

टुकडों को 1 गिलास पानी डालकर उबाल लें। पकने पर ठंडा करने के बाद पीस लें। तैयार जूस को छानकर स्टील के बर्तन में निकालें। एक बोतल में चाष्नी भरकर, कैरी का जूस मिलायें। अब इसमें पोटैशियम मैटा बाई सल्फाईड डाले तथा अच्छे से हिलाकर बोतल को ढक्कन बंद करके रखें।

कच्चे आम व पोदीने का शर्बत

आवश्यक सामग्री :–कच्चे आम व पोदीने का रस 1 किलो, चीनी 2 किलो, काला नमक 2 चम्मच, सैंधा नमक 2 चम्मच, सामान्य नमक 2 चम्मच, साइट्रिक एसिड 1 चम्मच, जीरा 3 चम्मच, सोडियम बेन्जोइट 3 चम्मच, पोटैशियम मेटाबाई सल्फाइड 1 चम्मच।

विधि :– यह गर्मियों में लू लगने से बचाता है। इसको बनाने के लिए कच्चे आम व पोदीने का रस निकाल लें। चीनी में 1/4 किलो पानी डालकर चाशनी बना लें। चाशनी में साइट्रिक एसिड, तीनों तरह के नमक काला, सैंधा व साधारण 2–2 चम्मच डाल दें। जीरा सेक कर पीसकर मिला दें। चाशनी ठण्डी होने परे उसमें आम व पोदीने का रस मिला दें। सोडियम बेन्जोइड, पोटाषियम मेटाबाई सल्फाइड डालकर बोतल में भर दें।

कच्चे आम का मुरब्बा

आवश्यक सामग्री :– छोटे आम 2 किग्रा, इलायची पिसी हुई 1 चम्मच, चीनी 2 किग्रा, केसर 3 ग्राम, गरम दूध 40 मि. ली, चूना 100 ग्राम, सोडियम बेंजोएट 5 ग्राम।

बिधिः– आमों को छीलकर उनके गूदे की फांके कर लें। चूना पानी में घोलकर फांकों को पन्द्रह–बीस मिनिट भिगोंऐ। फिर साफ पानी से अच्छी तरह धोकर एक साफ कपड़े पर फैलाकर पानी सूखा लें। गरम दूध में केसर डालकर रख दें। चीनी में तीन गिलास पानी डालकर आंच पर चढ़ाएं और एक तार की चाशनी बना लें। चाशनी बन जाए, तो आम की फांके डाल दें और धीमी आंच पर पकाएं । फांके नरम पड़ जाएं, तो दूध में घुली हुई केसर व इलायची मिला दें। चाशनी गाढ़ी होने लगे, तो आंच बन्द कर दें। ठण्डा होने पर इसमें सोडियम बेंजोएट डालकर मर्तबान में में रखें ।

कच्चे आम की चटनी

आवश्यक सामग्री :– कच्चे आम का गूदा –1 किलो, नकम 40 से 50 ग्राम, अदरक –20 ग्राम, पिसी लाल मिर्च– 10 ग्राम, पानी –250 ग्राम, चीनी–1 किलो, गर्म मसला– 20 से 25 ग्राम, ग्लेषिएल एसिटिक एसिड– 4 ग्राम।

विधिः– कच्चे आम लेकर उन्हें धोकर छिलका उतार लें। फिर उन्हें कद्दूकस कर लें। पानी मिलाकर कद्दूकस किये हुए आम को गल जाने तक पकाऐं। इसमें चीनी, लाल मिर्च व गरम मसाला डालकर गाढ़ा होने तक पकाएं अर्थात् यह प्लेट टैस्ट करने पर पानी न छोड़े। आग से उतार कर इसमें ग्लेषिएल एसिटिक एसिड मिला दें। तथा गर्म–गर्म चटनी को साफ व चौड़े मुंह की बोतलों में डाल दें। ठंडा होने पर ढक्कन लगाकर बन्द कर दें तथा ठंडे स्थान पर रखे।

कच्चे आम अदरक की चटनी

आवश्यक सामग्री :– आच कच्चे 1 किलो (लम्बी व पतली फांके), अदरक –250 ग्राम, नमक 100 ग्राम, चीनी 250 ग्राम, भुना जीरा 25 ग्राम, लाल मिर्च–50 ग्राम, काला नमक 10 ग्राम।

विधिः– अदरक आम की फांकों में नमक लगाकर तीन से चार घटें तक रख दें। पानी निकाल दें। चीनी डालकर पांच से दस मिनट पकायें, मंदी आंच पर जब आम अदरक नरम न हो जाये। जीरा, लाल मिर्च, काला नमक मिला दें। किसी जार में भर दें तथा ठंडे स्थान पर रखे। यह चटनी 10–15 दिन न खाने योग्य रहती है। ठण्डी होने पर फ्रीज में रखा जा सकता है।

आम का आचार

आवश्यक सामग्री :– कच्चे आम 1 किग्रा, नमक 30 ग्राम, हल्दी पाउडर 10 ग्राम, हींग पाउडर 3 ग्राम, लाल मिर्च पाउडर 10 ग्राम, काला नमक 5 ग्राम, कलौंजी 10 ग्राम, सरसों का तेल 200 मि.ली.

विधिः–कच्चे और अच्छे गूदे वाले आम लेकर साफ पानी से धो लें। सुखाकर, छील लें, आम से गूदा निकालें और छोटे छोटे टुकड़े में काटें। सुखे साफ बर्तन में आम के टुकड़े डालिये, नमक और हल्दी पाउडर डाल दें। चम्मच से अच्छी तरह मिलाये और बन्द करके रख दें। धूप हो तो ये धूप में रखा जा सकता है। अचार को रोजाना सूखे साफ चमचे से चला कर ऊपर नीचे करें। 5–6 दिन में आम के टुकड़े गल कर नरम हो जायेंगे। सरसों का तेल गरम करें और ठंडा करके बाद में इस अचार में पीसी हींग, लाल मिर्च पाउडर, नमक और कलौंजी मिलाये। आम का हींग वाला अचार तैयार है।

पॉपकॉर्न मक्काः एक स्वस्थ स्नैक्स

सीमा श्योराण[1], संदीप कुमार[1] एवं प्रियाजोय कर[2]
[1]भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2]भाकृअनुप– भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेल: Sheoranseema9@gmail.com

मक्का बहुरूपी उपयोग जैसे कि दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मुख्य भोजन, खाद्य प्रसंस्करण, स्टार्च और फ़ीड उद्योग में सबसे बहुमुखी फसल है। इनके अलावा, मक्का का उपयोग विभिन्न विशिष्ट उपयोगों जैसे बेबी कॉर्न, पॉपकॉर्न, स्वीट कॉर्न, चारा और साइलेज के लिए किया जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में, यह खाद्य सुरक्षा में योगदान दे रहा है। अनाजों में क्षेत्र में मक्का तीसरे स्थान पर है लेकिन दुनिया में उत्पादन में सबसे ऊपर है। इसकी खेती उष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण क्षेत्रों तक फैली हुई है। विविध जलवायु और मिट्टी के गुणों वाले लगभग 165 देशों में 190 मिलियन हेक्टेयर में इसकी खेती की जाती है, और प्रबंधन संचालन दुनिया भर में 39% अनाज उत्पादन में योगदान देता है। विश्व के कुल उत्पादन का 36 प्रतिशत के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएसए) दुनिया में मक्का का सबसे बड़ा उत्पादक है। भारत में, 2018–2019 के दौरान 27.8 मिलियन टन के उत्पादन के साथ 9.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में मक्का की खेती की है। विश्व औसत (5.6 टन/हेक्टेयर) की तुलना में कम उत्पादकता (2689 किग्रा/हेक्टेयर) के कारण विश्व में भारत का क्षेत्रफल में चौथा और उत्पादन में 7वां स्थान है।

मक्के के छह प्रमुख प्रकार हैं डेंट कॉर्न, फ्लिंट कॉर्न, पॉड कॉर्न, पॉपकॉर्न, मैदा कॉर्न और स्वीट कॉर्न। सबसे आम प्रकार है डेंट कॉर्न जहां कर्नेल के शीर्ष पर सफेद या पीले रंग का दांत होता है जो नरम स्टार्च के तेजी से सूखने और सिकुड़ने के परिणामस्वरूप होता है। फ्लिंट कॉर्न में कठोर बाहरी परत में संलग्न नरम स्टार्चयुक्त भ्रूणपोष होता है। यह भारत में व्यापक रूप से उगाया जाता है। आटा मकई में नरम भ्रूणपोष होता है और इसे कई अलग–अलग रंगों में उगाया जाता है। एक अन्य स्वीट कॉर्न है जिसमें एंडोस्पर्म मुख्य रूप से चीनी और स्टार्च से बनता है, जो इसे परिपक्वता से पहले एक मीठा स्वाद देता है और परिपक्वता के बाद इसमें झुर्रीदार दाने होते हैं। पॉड कॉर्न पॉड्स में बंद कर्नेल (दाना) रखती है। पॉपकॉर्न एक विशेष प्रकार का मकई है जिसका उपयोग कई खाद्य पदार्थों के लिए पॉपकॉर्न फ्लेक्स बनाने के लिए किया जाता है। पॉपकॉर्न की विशेषता गोल चकमक कर्नेल के साथ छोटे दाने है।

पॉपकॉर्न सबसे आदिम मक्का है। यह 2500 ईसा पूर्व का है, जिसे न्यू मैक्सिको में बैट गुफा में खोजा गया था। प्राचीन काल में पोपिंग मुख्य विधि थी जिसके द्वारा मक्का को उपभोग के लिए तैयार किया जाता था। 1880 से पहले न तो फार्म पेपर्स में और न ही बीज कैटलॉग में पॉपकॉर्न का उल्लेख किया गया था। पहले इसे बगीचे की फसल के रूप में उगाया जाता था। 1900 के दशक में यह आमतौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका में उगाया जाता था, 1998 तक यूएस पॉपकॉर्न उद्योग कुल स्नैक्स उद्योग का 3.8% था। आहार फाइबर, प्रोटीन और चीनी और सोडियम की कम सामग्री के साथ एक स्वस्थ साबुत अनाज होने के कारण, यह अच्छी तरह से संतुलित भोजन के बीच एक आदर्श नाश्ता है। पॉप्ड कर्नेल का पोषण मूल्य इस प्रकार हैः कैलोरी 93, वसा 10 से कैलोरी, कार्बोहाइड्रेट, आहार फाइबर, प्रोटीन, आयरन, कोलेस्ट्रॉल और वसा क्रमशः 18.7 ग्राम, 15 ग्राम, 3.1 ग्राम, 2.7 मिलीग्राम, 0 मिलीग्राम और 1.1 ग्राम हैं। इसके अलावा पॉपकॉर्न फेनोलिक एसिड (एंटीऑक्सिडेंट) का एक समृद्ध स्रोत है। जब कच्चे और पॉप्ड कर्नेल अर्क की मात्रा निर्धारित की गई थी, तो एंटीऑक्सिडेंट पूरी तरह से ओलिगोसेकेराइड से बंधे बीज के पेरिकार्प में पाए गए थे। यह पाया गया कि पॉपिंग प्रक्रिया एंटीऑक्सिडेंट सामग्री को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित नहीं करती है, जो पॉपकॉर्न की खपत पर काफी मात्रा में पॉलीफेनोल्स की जैव–पहुंच का संकेत देती है। एंटीऑक्सिडेंट की यह उच्च सांद्रता पॉपकॉर्न को आहार एंटीऑक्सिडेंट का एक प्रमुख स्रोत बनाती है। पॉपकॉर्न गर्म होने पर पॉप करने के लिए अपनी अनूठी विशेषता के साथ इसे अन्य प्रकार के मक्का से अलग करता है। पॉपकॉर्न कर्नेल में एंडोस्पर्म के भीतर नरम स्टार्च में संग्रहीत पानी की एक थोड़ी मात्रा होती है। जब कर्नेल को गर्म किया जाता है, तो

पानी फैलता है जिससे कर्नेल के भीतर दबाव बनता है और पेरिकार्प फट जाता है। पॉपकॉर्न परत दो प्रकार की होती है– तितली (बटर–फ्लाई) या मशरूम प्रकार। घरेलू खपत के लिए तितली–प्रकार को सबसे अधिक पसंद किया जाता है क्योंकि इसके गुच्छे कोमल होते हैं और मशरूम के प्रकार की तुलना में छोटे पतवार के टुकड़े होते हैं। जबकि, वाणिज्यिक पूर्व–पॉप्ड बाजारों के लिए मशरूम प्रकार बहुत लोकप्रिय है क्योंकि प्रसंस्करण के दौरान इसमें गुच्छे के टूटने की संभावना कम होती है। पॉपकॉर्न उद्योग को दो समूहों में बांटा गया है: कच्चे पॉपकॉर्न का उत्पादन और प्रसंस्करण; और कच्चे पॉपकॉर्न का इस्तेमाल करने हेतु। कुछ बड़ी कंपनियां जैसे वीवर पॉपकॉर्न बल्कू, पॉपकर्निका, डॉक् पॉपकॉर्न, गर्रेटस पॉपकॉर्न आदि दोनों प्रक्रियाओं में शामिल हैं।

परंपरागत रूप से, पॉपकॉर्न को लौ पर लोहे के तवे पर डाला जाता है। लेकिन हाल के दिनों में बाजार में कई पॉपिंग मशीनें उपलब्ध हैं। घरेलू खपत के लिए, सबसे सुविधाजनक 'एयर पॉपर' है जिसमें कर्नेल को पॉप करने के लिए गर्म हवा का संचलन शामिल है। आजकल माइक्रोवेव पॉपिंग भी चलन में है। पॉपिंग के कुछ सामान्य तरीके हैं: तेल पॉपिंग – एक कंटेनर में मकई और तेल 3: 1 के अनुपात में लिया जाता है और शुरुआती बिंदु से लगभग 2.5 मिनट में पॉपिंग होने पर नियंत्रित गर्मी लागू होती है। ड्राई पॉपिंग: हॉट एयर पॉपपर्स जो कर्नेल के माध्यम से गर्म हवा के संचलन के सिद्धांत पर संचालित होते हैं, का उपयोग किया जाता है। माइक्रोवेव पॉपिंग: इसे पॉपिंग का सबसे आसान लेकिन महंगा तरीका माना जाता है। कर्नेल को विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए कंटेनरों में रखा जाता है और पॉप करने के लिए माइक्रोवेव ओवन में रखा जाता है। पॉपकॉर्न के दाने छोटे और सख्त होते हैं जिनमें हॉर्नी स्टार्च की मात्रा अधिक होती है। पॉपकॉर्न में रोग और कीट प्रतिरोध, डंठल की ताकत और अनाज की उपज जैसे अधिकांश उत्पादन लक्षणों के लिए डेंट मक्का की तुलना में एक छोटा जीन पूल होता है। पॉपकॉर्न में कम आनुवंशिक भिन्नता के कारण इसमें सुधार सीमित है। इसके पॉपिंग विस्तार को बढ़ाने के लिए चयन की प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जाता है। पॉपकॉर्न के एलीट जीन पूल को आनुवंशिक स्रोत के रूप में डेंट मक्का का उपयोग करके सुधारा जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से परिणामी पॉपकॉर्न इनब्रेड लाइनों ने कर्नेल वजन में वृद्धि की है, अनाज की उपज में वृद्धि हुई है, और स्टेम और रूट लॉजिंग के प्रतिरोध में वृद्धि हुई है।

तालिका: भारत में पॉपकॉर्न की अधिक उपज देने वाली किस्में

किस्म	उपज (टन/हेक्टेयर)	वर्ष	क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
एलपीसीएच 2 (आईएमएचपी 1535)	3.0 (खरीफ में)	2020	राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और गुजरात
एलपीसीएच 3 (आईएमएचपी 1540)	3.5–4.0 (खरीफ में)	2020	बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और गुजरात
डीएमआरएचपी 1402	3.0–3.5 (खरीफ में); 4.5–5.0 (रबी में)	2018	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश (पश्चिमीक्षेत्र), राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेशऔरछत्तीसगढ
शालीमार पॉपकॉर्न–1 (केडीपीसी–2)	3.9	2017	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडिशा, झारखंड, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा और नागालैंड
बीपीसीएच–6	3.2	2015	देशभर के सभी जोन
जवाहर पॉपकॉर्न–11	2.3	2007	मध्यप्रदेश
पर्ल पॉपकॉर्न	2.6	1996	पंजाब राज्य के सिंचित क्षेत्र
वीएलएम्बरपॉपकॉर्न	3	1982	उत्तरप्रदेश और हिमालयी बेल्ट

फसल सिमुलेशन मॉडल एवं कृषि में उनका अनुप्रयोग

जितेंद्र कुमार[1], निशांत कुमार सिन्हा[1], धीरज कुमार[1], बृजेश यादव[2], दिनेश कुमार यादव[1] एवं रणजीत सिंह चौधरी[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)
[2]भाकृअनुप–खुम्ब अनुसन्धान निदेशालय, सोलन (हिमाचल प्रदेश)
संवादी लेखक का ई–मेल: jitendra.iari@gmail.com

फसल मॉडलिंग एक गणितीय समीकरण है जो फसल और पर्यावरण के सम्बन्ध का मात्रात्मक ज्ञान कराता है। ये मॉडल फसल के विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे कि दैनिक मौसम के मापदंड (सौर विकिरण, अधिकतम और न्यूनतम तापमान, और वर्षा) का उपयोग इनपुट के रूप में करते है फसल सिमुलेशन के लिए आवश्यक अन्य जानकारी में मिट्टी की विशेषताएं, फसल की विशेषताएं और फसल प्रबंधन शामिल हैं (चित्र 1) । इन विभिन्न आंकड़ों का उपयोग करते हुए, मॉडल फसल विकास (या फेनोलॉजी), बायोमास संचय, उपज, मृदा जल, मृदा तापमान और पोषक तत्वों की गतिशीलता को सिमुलेट करते है। फसल सिमुलेशन मॉडल एग्रोनॉमी और फिजियोलॉजी प्रयोगों की मात्रात्मक जानकारी को इस तरह पकड़ने के लिए एक शक्तिशाली साधन है जो फसल विकास और उसकी भविष्यवाणी करने में मदद कर सकता है। इन मॉडलों ने कृषि में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। फसल मॉडल वायुमंडल, फसलों और मिट्टी के बीच की गतिशीलता का पता लगाने में मदद करते हैं, और इसका उपयोग वास्तविकता के खिलाफ मात्रात्मक परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावाशोधकर्ता डेटा को एक्स्ट्रापलेशन करके जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आकलन कर सकते हैं और जलवायु परिवर्तन के लिए परीक्षण का अनुकूलन कर सकते हैं। फसल मॉडल कृषि के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली का भी एक केंद्रीय हिस्सा है, जो कि मौसम आधारित निर्णय लेने में किसानों की सहायता के लिए डिज़ाइन किया गया कंप्यूटर मॉडल हैं।

मॉडल के प्रकार

जिस उद्देश्य के लिए यह डिज़ाइन किया गया है उसके आधार पर मॉडल को निम्न श्रेणियों में बांटा गया है

1) सांख्यिकीय मॉडलः ये मॉडल फसलों और मौसम मापदंडों और घटकों के बीच संबंध को व्यक्त करते हैं। इन मॉडलों में रिग्रेशन, सहसंबंध, आदि सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

2) यांत्रिकी मॉडलः ये मॉडल न केवल मौसम के मापदंडों और उपज के बीच के संबंध को समझाते हैं, बल्कि मॉडल क्रिया विधि को भी बताते है। ये मॉडल शारीरिक चयन पर आधारित हैं।

3) नियतात्मक मॉडलः ये मॉडल उपज या आश्रित चर के सटीक मूल्य का अनुमान लगाते हैं। इन मॉडलों में गुणांक भी परिभाषित किया गया है।

4) स्टोकेस्टिक मॉडलः एक संभाव्यता तत्व प्रत्येक आउटपुट से जुड़ा होता है। मॉडल इनपुट के प्रत्येक सेट के लिए अलग–अलग आउटपुट, संभावनाओं के साथ दिए गए हैं। ये मॉडल दिए गए दर पर आश्रित चर की उपज या स्थिति को परिभाषित करते हैं।

5) गतिशील मॉडलः समय को एक चर के रूप में शामिल किया गया है। आश्रित और स्वतंत्र चर दोनों के मान होते हैं जो किसी निश्चित समय तक स्थिर रहते हैं।

6) स्टेटिक मॉडलः समय को एक चर के रूप में शामिल नहीं किया गया है। आश्रित और स्वतंत्र चर वाले मान किसी निश्चित समय तक स्थिर रहते हैं।

7) सिमुलेशन मॉडलः कंप्यूटर मॉडल, सामान्य रूप से, एक वास्तविक विश्व प्रणाली का गणितीय प्रतिनिधित्व करते हैं। फसल सिमुलेशन मॉडल का मुख्य लक्ष्य, मौसम और मिट्टी की स्थिति के साथ–साथ फसल प्रबंधन का उपयोग करके कृषि उत्पादन का अनुमान लगाना है। ये मॉडल अंतरसमीकरणों के एक या अधिक सेट का उपयोग करते हैं, और समय के साथ दर और स्थिर चर दोनों की गणना करते हैं।

8) वर्णनात्मक मॉडलः एक वर्णनात्मक मॉडल एक प्रणाली के व्यवहार को सरल तरीके से परिभाषित करता है। ये मॉडल बहुत कम या न के बराबर क्रियाविधि को बताते है जो घटना के कारण हैं। लेकिन, एक या एक से अधिक गणितीय समीकरण होते हैं। इस तरह के समीकरण का एक उदाहरण एक फसल की क्रमिक रूप से मापी गई तौल से प्राप्त होता है। ये मॉडल उस फसल के वजन का शीघ्रता से निर्धारण करने में सहायक होता है जहाँ कोई अवलोकन नहीं किया गया था।

9) व्याख्यात्मक मॉडलः इसमें क्रियाविधि और प्रक्रियाओं का मात्रात्मक विवरण शामिल है जो सिस्टम के व्यवहार का कारण बनता है। इस मॉडल को बनाने के लिए, एक प्रणाली का विश्लेषण किया जाता है और इसकी प्रक्रियाओं और क्रियाविधि को अलग–अलग मात्रा में निर्धारित किया जाता है। पूरे सिस्टम के लिए इन विवरणों को एकीकृत करके मॉडल बनाया गया है। इसमें विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे पत्ती क्षेत्र विस्तार, टिलर उत्पादन, इत्यादि का वर्णन है। फसल वृद्धि इन प्रक्रियाओं का एक परिणाम है।

कृषि निर्णय में मॉडल की भूमिका

मॉडल एक या एक से अधिक विकल्पों के मूल्यांकन की अनुमति देते हैं जो उपलब्ध हैं। मॉडल निम्नलिखित कृषि निर्णय में सहायक है–

- इष्टतम रोपण तिथि निर्धारित करना ।
- खेती का सबसे अच्छा विकल्प निर्धारित करना ।
- मौसम के जोखिम का मूल्यांकन करना ।
- मृदा जल, तापमान एवं कार्बन का पता लगाना।
- निवेश के फैसले।

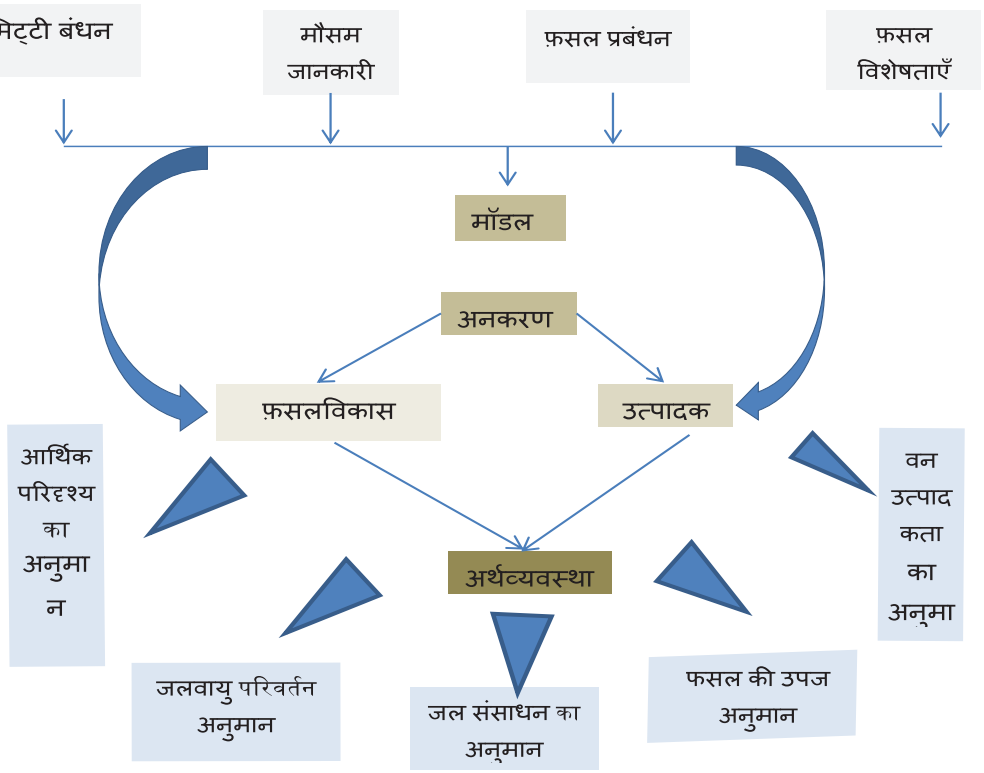

(चित्र 1) फसल विकास मॉडल और इसके संभावित अनुप्रयोगों के योजनाबद्ध आरेख

फसल विकास मॉडल का उपयोग उन क्षेत्रों में फसल के प्रदर्शन की भविष्यवाणी करने के लिए किया जा सकता है जहां फसल पहले विकसित नहीं हुई है या इष्टतम परिस्थितियों में नहीं उगाई गई है। इस तरह के अनुप्रयोग क्षेत्रीय विकास और कृषि की योजना बनाने वाले देशों वानकेयुलेन और वुल्फ (1986) के लिए मूल्य के हैं। एक मॉडल वर्षा किंरी और बॉकहॉट (1998) के आधार पर एक मिट्टी के प्रकार के लिए अनाज की उपज के स्तर की संभावनाओं की गणना कर सकता है। सिंचाई प्रणाली की खरीद जैसे निवेश के फैसले इस तरह हासिल किए गए उपकरणों के दीर्घकालिक उपयोग पर नज़र के साथ लिए जा सकते हैं। किनारी (1991) से पता चला कि मक्का के लिए, खरपतवार के साथ नकली और मापा दोनों प्रकार की पैदावार, खरपतवार से मुक्त पैदावार का 86% है।

यह लेख फसल विकास मॉडल का संक्षिप्त विवरण देता है और यह किसानों और नीति निर्माताओं के निर्णय में कृषि में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए आवेदन करता है, इससे उत्पादकता बढ़ाने और कृषि आदानों के अनुकूलन और कृषि में इसकी उपयोग दक्षता में मदद मिल सकती है।

भारतवर्ष के लिए हिंदी भाषा ही सर्वसाधारण की भाषा होने के उपयुक्त है।

– शारदाचरण मित्र

मृदा परीक्षण हेतु मिट्टी के नमूने की सटीक प्रक्रिया और उपकरण

ममता[1], प्रेमलता मीणा[1] , राजेंद्र बैरवा[2], अंकुर भाकर[1], देवी लाल धाकड[3] एवं दीप मोहन महला[4]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली
[2]डॉ. राजेंद्रप्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्याल, पूसा (बिहार)
[3]श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)
[4]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई-मेल: mamtasaharan55@gmail.com

परिचय:

परिक्षण हेतु मिट्टी के नमूने लेने की विधि और प्रक्रिया नमूने के उद्देश्य के अनुसार बदलती रहती है। इस लेख में कृषि उद्देश्य के लिए मिट्टी के नमूने का वर्णन किया गया है जिसमें मिट्टी की उर्वरता मूल्यांकन और फसलों के लिए पोषक तत्वों की सिफारिशों को शामिल किया गया है। मृदा परीक्षण की दक्षता, मिट्टी के नमूने एकत्र करने के कौशल पर निर्भर करती है। गैर–प्रतिनिधि नमूने मृदा उर्वरता मूल्यांकन में त्रुटि का एक सबसे बड़ा स्रोत हैं। हर जगह मिट्टी अलग–अलग प्रकार की हो सकती है इसे देखते हुए नमूने इस तरह लेने का प्रयास किया जाना चाहिए कि यह पूरी तरह से उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हो।

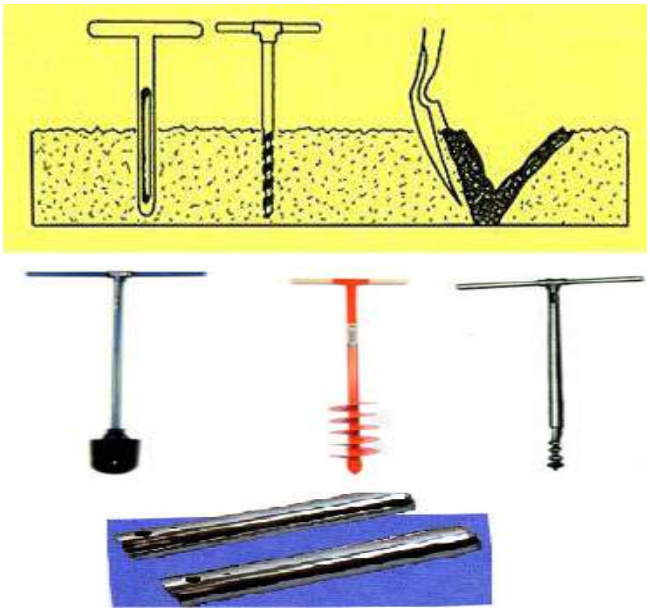

ट्यूब ऑगर, पोस्टहोल या स्क्रूटाइप ऑगर नमूना इकाई का चयन

उपकरण और सहायक उपकरण:

मिट्टी के नमूने लेने के लिए निम्नलिखित उपकरणों की आवश्यकता होती है

- मिट्टी ऑगर ट्यूब ऑगर, पोस्टहोल या स्क्रूटाइप ऑगर या नमूने लेने के लिए एक फावडा।
- मिट्टी नमूने को मिलाने के लिए एक साफ बाल्टी या ट्रे या साफ कपड़ा।
- कपड़े की थैलियों का बांधना, मार्किंग और टैग करना।
- मृदा नमूना सूचना पत्रक।

वास्तविक नमूने से पहले क्षेत्र का सर्वेक्षण करना चाहिए। खेत की ढलान, मिट्टी का रंग व बनावट, फसल व मिट्टी और फसल चक्र में भिन्नता आदि का ध्यान रखते हुए खेत को समान भागों में सीमांकित करें, जिनमें से प्रत्येक का नमूना लिया जाना चाहिए। यदि खेत में उपरोक्त वर्णित सभी स्थितियां समान हैं, तो पुरे खेत को एकल नमूनाकरण इकाई के रूप में माना जा सकता है। ऐसी इकाई 1 से 2 हेक्टेयर से अधिक नहीं होनी चाहिए। सीमित मृदा परीक्षण सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए, एक वैकल्पिक दृष्टिकोण से माना गया है, कि जहां 20–50 हेक्टेयर क्षेत्र से एक नमूना एकत्र किया गया है उसे उस क्षेत्र का मिश्रित मिट्टी नमूना कहा जा सकता है, और पूरे क्षेत्र के लिए एक सामान्य सिफारिश करने के लिए उसी का विश्लेषण किया जा सकता है।

मिट्टी के नमूने की प्रक्रिया:

प्रत्येक नमूना इकाई से कम से कम 10 से 15 नमूने एकत्र करें और एक बाल्टी या ट्रे में रखें। आमतौर पर खेत के आकार के आधार पर एक मिश्रित नमूने के लिए 10 से 20 स्पॉट लिए जाने चाहिए। सतह से घांस व फसल अवशेष

को हटाकर; प्रत्येक स्थान से सतह से जुताई की गहराई तक मिट्टी का एक समान मोटी सतह नमूना के लिए लें। मिट्टी के 1 से 2 सेमी के टुकड़े को हटाने के लिए कुदाल का उपयोग करके नमूना स्थान में 15 सेमी की गहराई तक एक "V" आकार काट लें। नमूना कुदाल के चदर पर एकत्र किया जा सकता है और एक साफ बाल्टी में डाल दिया जाता है। इस तरह एक नमूना इकाई के लिए चिन्हित सभी स्पॉट से नमूना एकत्र करें।

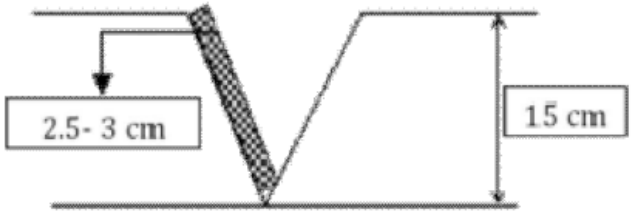

मिट्टी के नमूने लेने की "V" आकार की विधि

नमूना गहराई के लिए दिशा निर्देश

क्र. सं.	फसल	मृदा नमूना गहराई	
		इंच	सेमी
1.	घास और घास के मैदान	2	5
2.	चावल, बाजरा, मूंगफली, मोती बाजरा, छोटे बाजरा आदि (उथला जड़ वाली फसलें)	6	15
3.	कपास, लालचना, गन्ना, केला, टैपिओका, सब्जियां आदि। (गहरी जड़ वाली फसलें)	9	22
4.	बरहमासी फसलें, वृक्षारोपण और बाग की फसलें	मिट्टी के तीन नमूने 12, 24 और 36 इंच	मिट्टी के तीन नमूने 30, 60 और 90 सेमी

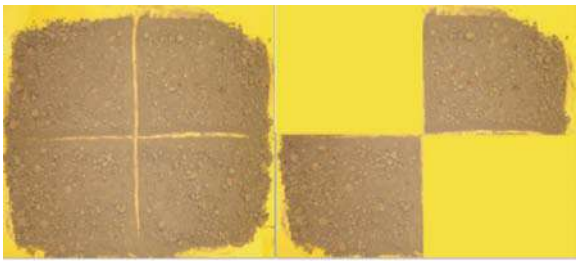

मिट्टी के नमूने लेने की चौथाई विधि

एक साफ कपड़े या पॉलिथीन बैग में नमूना एकत्र करें

बाल्टी से मिट्टी को साफ कागज या कपड़े के टुकड़े पर डालकर अच्छी तरह मिला लें। मिट्टी को समान रूप से फैलाएं और इसे 4 चौथाई भाग में बाँटलें। दो विपरीत को खारिज कर दें और मिट्टी को फिर से मिलाएं। इस प्रक्रिया को तब तक दोहराएं जब तक कि लगभग 500 ग्राम मिट्टी बच न जाए, इसे इकट्ठा करके एक साफ कपड़े के थैले/ पॉलिथीन बैग में रख दें। नमूने की पहचान करने के लिए प्रत्येक बैग को ठीक से चिह्नित किया जाना चाहिए। सूचना पत्रक में नमूने का विवरण लिखें जैसे किसान का नाम, खेत का स्थान, सर्वेक्षण संख्या, उगाई गई पिछली फसल, वर्तमान फसल, अगले मौसम में उगाई जाने वाली फसल, संग्रह की तिथि आदि, इस सूचना पत्र की एक प्रति बैग में रखें। बैग का मुंह सावधानी से बांधें।

सावधानियां–

- असमान उर्वरक, दलदली, रास्ता, पेड़ के पास का क्षेत्र, पिछली खाद के ढेर की साइट और अन्य गैर–प्रतिनिधि स्थलों जैसे असामान्य क्षेत्र का नमूना न लें।
- जहां फसलों को पंक्तियों में लगाया गया है, पंक्तियों के बीच से नमूने एकत्र करें ।
- सभी चरणों में किसी भी प्रकार के सम्मिश्रण से बचें। मिट्टी के नमूने को कभी भी खाद सामग्री और शोधक के साथ स्टोर में नहीं रखना चाहिए।
- सम्मिश्रण होने की संभावना तब होती है जब मिट्टी के नमूने संग्रहीत उर्वरकों के आस पास या फर्श पर जहां पहले उर्वरक संग्रहीत किए गए थे, सूखने के लिए फैलाए जाते हैं।

चावल में पानी बचाने के लिए वैकल्पिक गीली और सूखी विधि द्वारा सिचांई

दिनेश कुमार[1] एवं भवानी सिंह प्रजापत[2]
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेल: sirvidkagro@gmail.com

जनसंख्या वृद्धि और एशिया में तेजी से आर्थिक विकास की बढ़ती मांग को देखते हुए पानी की कमी की बाधाओं के बावजूद, चावल उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि होनी चाहिए। इस क्षेत्र के लिए भोजन, आर्थिक, सामाजिक और जल सुरक्षा को प्राप्त करने के लिए कम पानी के साथ अधिक चावल का उत्पादन एक बड़ी चुनौती है। भूमि की तैयारी के लिए किसानों द्वारा उपयोग की जाने वाली पानी की वास्तविक मात्रा और फसल वृद्धि अवधि के दौरान वास्तविक क्षेत्र की आवश्यकता से काफी अधिक है। धान के किसान अक्सर पानी की आपूर्ति में अनिश्चितता के कारण बैक–अप सुरक्षा उपाय के रूप में अपने खेतों में पानी जमा करते हैं। इसके अलावा अक्सर खेत–से–खेत सिंचाई होती है, जिससे क्षेत्र में कुल जल इनपुट की एक बड़ी मात्रा लगभग 50 से 80 प्रतिशत सतही प्रवाह, भूमिगत रिसाव और अंतःस्त्रवण हो जाता है। सिंचाई वाले चावल की खेती में पानी को बचाने के लिए एक तरीका लगातार जल भराव रखने की बजाय वैकल्पिक गीले और सूखे विधि द्वारा सिचांई है।

वैकल्पिक गीली और सूखी विधि द्वारा सिचांई क्या है?

यह एक सिंचाई तकनीक है, जहां खेत में भरा हुआ जल दिखाई नहीं देने के कई दिनों बाद सिंचाई हेतु पानी दिया जाता है। यह पारंपरिक सिंचाई अभ्यास के बिल्कुल विपरीत है (यानी, जल भराव कभी गायब नहीं होने देना)। इसका मतलब है कि चावल के खेतों को लगातार पानी से डूबे नहीं रखा जाता है, लेकिन चावल की बढ़ती अवस्था के दौरान अंतःक्रियात्मक रूप से खेतों को सूखने की अनुमति दी जाती है। खेत को सूखा रखने की अवस्था 1 दिन से लेकर 10 दिनों से अधिक तक हो सकती है। इस सिंचाई तकनीक के पीछे अंतर्निहित आधार यह है कि चावल के पौधे की जड़ों को अभी भी कुछ अवधि तक (प्रारंभिक जल भराव के कारण) पर्याप्त रूप से पानी की आपूर्ति होती है भले ही वर्तमान में खेत में कोई अवलोकन योग्य पानी न हो।

वैकल्पिक गीली और सूखी विधि द्वारा सिचांई को कैसे कार्यान्वित करें?

इस विधि लागू करने का एक प्रायोगिक तरीका 'फील्ड वॉटर ट्यूब' का उपयोग करके खेत पर भराव वाले पानी की गहराई की निगरानी करना होता है। सिंचाई के बाद, भराव वाले पानी की गहराई धीरे–धीरे कम हो जाएगी। जब भरा हुआ पानी मिट्टी की सतह से 15 सेमी नीचे गिर जाये, तब 5 सेमी की सिंचाई द्वारा पुनः जल भराव लागू किया जाना चाहिए।

पुष्पन की अवस्था के एक सप्ताह पहले से एक सप्ताह बाद तक हमेशा 5 सेमी गहराई पर पानी रखा जाना चाहिए।

पुष्पन के बाद, अनाज भरने और पकाने के दौरान, जल स्तर भूमि सतह से नीचे 15 सेमी तक गिर सकता है। इस सिचाई को रोपण के कुछ दिनों बाद शुरू किया जा सकता है (या सीधे बिजाई में 10 सेमी लंबी फसल होने पर)। यदि कई खरपतवार मौजूद हो तो इस सिचाई को 2–3 सप्ताह तक स्थगित कर दिया जा सकता है जब तक कि जल भराव से सारे खरपतवार नष्ट न हो जाए। स्थानीय उर्वरकों का उपयोग जल भराव वाले चावल के अनुसार ही किया जा सकता है। नाइट्रोजन उर्वरक का सिंचाई से ठीक पहले शुष्क मिट्टी पर उपयोग करें।

सुरक्षित वैकल्पिक गीली और सूखी विधि द्वारा सिचांई (सुरक्षित ए.डब्ल्यू.डी):

सिंचाई से पहले 15 सेमी पानी की गहराई (सतह के नीचे) की दहलीज को 'सुरक्षित एडब्ल्यूडी' कहा जाता है क्योंकि इससे उपज में गिरावट नहीं आती है। सुरक्षित एडब्ल्यूडी में, पानी की बचत 15–30 प्रतिशत होती है। जब किसानो में सुरक्षित एडब्ल्यूडी उपज को कम नहीं करता है, ऐसा आत्मविश्वास होने के बाद, किसान 20, 25, 30 सेमी गहराई, और इससे भी अधिक गहराई तक भूमिगत जल स्तर को कम करके प्रयोग कर सकते हैं। सिंचाई के लिए दहलीज स्तर को कम करने से पानी की बचत में वृद्धि होगी, लेकिन कुछ उपज में कमी हो सकती हैं। पानी की कीमत बहुत अधिक होने पर या पानी बहुत दुर्लभ होने पर इस तरह की उपज में कमी स्वीकार्य हो सकती है। 'सुरक्षित' एडब्ल्यूडी' की संभावित अधिकतम सीमा उपज में कमी नहीं होने के

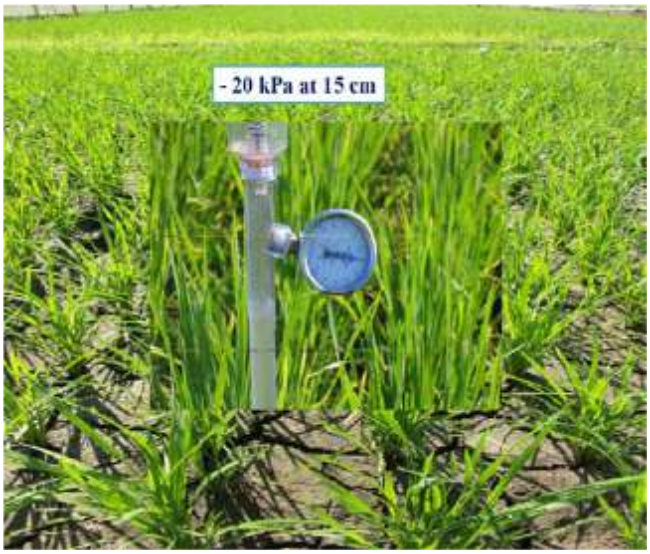

साथ मिट्टी के पानी की क्षमता –30 किलो पास्कल दिखाई होती है।

निष्कर्ष:

भारत में इस तरह की सिंचाई का दृष्टिकोण पारंपरिक अभ्यास की तुलना में पानी के उपयोग को लगभग 40–70 प्रतिशत तक कम कर सकता है, बिना किसी महत्वपूर्ण उपज हानि के। पानी की कमी की बाधाओं को देखते हुए 'एडब्ल्यूडी' पानी की बचत और परंपरागत जल भराव सिंचाई के मुकाबले उत्पादकता को बनाए रखने के लाभों के साथ सिंचित चावल की खेती में एक आशाजनक तरीका है।

ग्रीष्मकालीन ज्वार की फसल में एचसीएन (हाइड्रोजन साइनाइड) की पहचान और निदान

उत्तम कुमार
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
संवादी लेखक का ई–मेल: uttamndri@gmail.com

सामान्यतः ज्वार की जड़ों में एच.सी.एन (हाइड्रोजन सायनाइड) का उत्पादन होता है जो कि फिर पौधे के तने और पत्तियों में संचित रहता है यह पदार्थ विषैला होने के कारण जानवरों के लिए घातक होता है अधिकतर गर्मी के मौसम में उगाई जाने वाली चारा फसल ज्वार में यह पाया गया है कि प्रायः नमी की कमी के कारण उसमें हाइड्रोजन सायनाइड नामक जहरीला पदार्थ पौधे में निर्मित होकर यह जानवरों में विषाक्ता पैदा करके उनके स्वास्थ्य एवं कभी–कभी जीवन के लिए भी हानिकारक हो जाता है यह जहरीला पदार्थ साइनोजैनिक ग्लूकोसाइड्स या प्रुसिक एसिड एक प्रकार से चारा पोषण का विरोधी घटक है यह चरी या ज्वार, सूडानघास, गिनी घास, बरू घास आदि में प्राकृतिक रूप से पौधे में उपस्थित रहता है हाइड्रोसाइनिक अम्ल की विशेषता स्तर कम से कम लगभग 200 पीपीएम या 0.02 प्रतिशत तक होती है।

लक्षण–

इसकी विशेषता के निम्न लक्षण जानवरों में पाए जाते हैं–

1. मांस पेषियों का थर्राना या कांपना।
2. चलने में डगमगाना या लड़खड़ाना।
3. तेज एवं गहरी सांसे लेना एवं आंखों का झटका देकर घुमाना।
4. मुंह में झाग निकलना तथा मुंहफाड़ कर हांपना।
5. मूर्छित होकर अचानक गिर पड़ना तथा इसकी विषाक्ता की अधिकता के कारण जानवर की मृत्यु भी हो सकती है।

प्रुसिक अमल के स्तर पर प्रभाव डालने वाले कारक–

1. नौजवान पौधे जब उनकी लंबाई 0.5 मीटर से कम होती है तथा पौधे नमी की कमी जलजमाव, पोषक तत्वों की कमी एवं कीटों या बीमारियों के प्रभाव से प्रुसिक एसिड की विषाक्ता बढ़ जाती है तथा पौधे का मुरझाना एवं पीला पड़ने की क्षति से एच.सी.एन में वृद्धि होती है।
2. पौधे की वृद्धि–जैसे–जैसे पौधे बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे प्रुसिक एसिड की मात्रा पौधे में कम होती जाती है जब एक स्वस्थ पौधा 80 सेंटी मीटर से 1 मीटर की ऊंचाई प्राप्त कर लेता है तब प्रुसिक एसिड खतरे के नीचे आ जाता है।
3. सामान्यता सूड़ान घासों में प्रुसिक एसिड कम पाया जाता है जब कि मीठी एवं दाने वाली ज्वार में यह अधिक होता है।
4. अधिक नाइट्रोजन तथा मिट्टी में फॉस्फोरस की कमी से भी पौधे में प्रुसिक अमल की बढ़ोतरी होती है खरपतवारनाशक 2–4 डीए कुछ हद तक साइनाइड का स्तर बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है।
5. एच.सी.एन. की अधिक मात्रा से पौधे के तने में रूखापन का इनसे काफी संबंधित होता है।

निदान के उपाय–

1. जब पौधों की लंबाई 1 मीटर से कम तथा नमी की कमी से प्रभावित हो तब बरसात का इंतजार करना चाहिए या सिंचाई कम दिनों के अंतराल पर करनी चाहिए जिससे प्रुसिक एसिड की मात्रा घट जाती है तथा प्रभावित पौधों को जानवरों को चरने से बचाना चाहिए यदि किसान के पास जानवरों के चारे का अत्यंत अभाव है तो उस समय हे अथवा भूसा आदि खिलाया जा सकता है।
2. जानवरों की निगरानी रोज करनी चाहिए तथा यदि कोई विषाक्ता के लक्षण जानवरों में दिखाई दे तो उस जानवर को तत्काल अन्य जानवरों से अलग रखना चाहिए।
3. अपरिपक्व, मुरझाए एवं छोटे पौधों को जानवरों को न खिलाए तथा फूल आने के बाद ही ज्वार को खिलाएं।
4. गर्मी में उगाई जाने वाली ज्वार में यदि प्रुसिक एसिड की मात्रा अधिक पाई जाती है तो इस चारे को संरक्षण करना उचित होगा इससे हे बनाने से प्रुसिक एसिड की मात्रा काफी हद तक कम हो जाती है साइलेज बनाने से भी प्रुसिक एसिड कम हो जाती है तथा ज्वार साइलेज खिलाने से एच.सी.एन. विषाक्ता की कोई सूचना नहीं है।
5. ज्वार के आरंभिक चरण से लेकर 40–50 दिन की फसल में एच.सी.एन. की मात्रा अधिक होती है अतः फसल को 50 दिन के बाद ही काटकर पशुओं को खिलाना चाहिए।
6. ग्रीष्म ऋतु में पानी की कमी होने के कारण इस विषेले पदार्थ की सांद्रता फसल में अधिक होती है अतः फसल को अच्छे से सिंचाई देने के बाद ही काटना चाहिए।

कोई लक्ष्य मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं, हारा वही जो लड़ा नहीं

– स्वामी विवेकानंद

अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींच कर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।

– महर्षि अरविंद

वर्तमान कृषि में एकीकृत कृषि प्रणाली का महत्व

सुनील कुमार[1], सरिता[2], प्रियाजोय कर[3], बी.एस. जाट[3] प्रदीप कुमार[3], मनेशचन्द्र डागला[3] एवं भारत भूषण[3]
[1]राजस्थान पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
[2]चौधरी चरण सिंह कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)
[3]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेल:jangirsunil90@gmail-com

भारत की जनसख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार वर्श 2030 तक भारत की जनसख्या 1.53 अरब हो जाएगी जिसके भरण पोशण के लिए लगभग 345 अरब टन अनाज उत्पादन की आवष्यकता होगी। हमारे देश में किसानों के पास भूमि सीमित है एंव प्राकृतिक संसाधन भी कम होते जा रहे है। ऐसे में कृषि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करना एंव बढ़ती हुई जनसख्या को खिलाना एक बड़ी चुनौती है। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि मौसम आधारित है एंव कई बार विपरीत परिस्थितयों के कारण किसानों की फसलें खराब हो जाती है और उन्हे आशान्वित आय प्राप्त नही होती है। इसलिए कृशि में फसल के साथ–2 अन्य तत्वों का समायोजन भी आवश्यक है जिससे किसानों को एक निश्चित आय मिलती रहे।

एकीकृत कृषि प्रणाली की परिभाषा :–

एकीकृत कृषि प्रणाली विशेषकर छोटे किसानों के लिए है, हालांकि बड़े किसान भी इस प्रणाली के जरिए लाभ उठा सकते है। एकीकृत कृषि प्रणाली में सभी घटक एक दूसरे के पूरक होते है एंव साथ ही साथ विभिन्न घटकों के अवशेशों को भी संसाधनों के रूप में पुनः प्रयोग किया जा सकता है। जिससे संसाधनों की क्षमता, उत्पादकता एंव लाभ को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य खेती या जमीन के हर हिस्से को सही तरीके से इस्तेमाल करना है। इसके तहत किसान फसलों के साथ–2 फूल, सब्जी, मवेषी पालन, मधुमक्खी पालन एंव मछली पालन जैसी अनेक क्रियाएं कर सकता है। इस प्रणाली में अवशेषों एवं पोशक तत्वों का निरंतर प्रवाह होता रहता हैए जिससे कृशि लागत में कमी आती हैए और आय में वृद्धि होती है। यह प्रणाली पर्यावरण के बिल्कुल अनुरूप है और साथ ही खेत की उर्वरक शक्ति को भी बढ़ाती है। उदाहरण के लिए अगर किसान मूर्गीपालन करता है तो पोल्ट्री के बीट को मछलियों को खिला कर मत्स्य पालन को बढ़ावा दे सकते है एवं मुर्गियों के आहार की व्यवस्था खेती से होने वाले उत्पादजैसे मक्का, गेंहू, बाजरा आदि से आसानी से कर सकते है। इसी प्रकार फसल अवशेष को मुर्गीपालन में लिटर (बिछावन) के रूप मे प्रयोग कर सकते है। फसल अवशेष और चारा दुधारू पशुओं के लिए जरूरी एवं फायदेमंद है। अब मछलियां जो बिना पानी के नही रह सकती, उन मछलियों के लिए बनाए तालाब से फसलों में सिचाईं का काम किया जा सकता है। इसी प्रकार से सभी घटक जुड़कर किसान की आय को कई गुना बड़ा सकते हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली के सिद्धांतः–

यह प्रणाली इस सिद्धांत पर कार्य करती है कि इसमें समेकित घटक के बीच में परस्पर प्रतिस्पर्धा अधिक न हो और परस्पर पूरकता अधिक से अधिक हो। इस कृषि के अंतर्गत नियामों का उपयोग करते हुए किसानों की आय को बढ़ाना, परिवार के पोषण स्तर को बढ़ाना और पर्यावरण के अनुकूल होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जैव विविधता का सरंक्षण, खेती प्रणाली में विविधता और पुनर्चक्रणकरना अति आवष्यक है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के घटकः–एकीकृत कृषि प्रणाली के घटक इस प्रकार हैः–

1- **तापमान प्रबधंनः**–पेड़ पौधें लगाकर, खेतों की मेड़ों पर झाड़िया लगाकर, जमीन को ढक कर रखना, ये सभी घटक तापमान के प्रबधंन में सहायक है।

2- **मृदा प्रबधंनः**– मिट्टी को उपजाऊ बनाना, रसायनों का आवश्यकतानुसार प्रयोग, फसल अपशिष्ट का प्रयोग, जैव उर्वरको का प्रयोग, फसलों का बदल –2 कर बुआई करना, जरूरत से ज्यादा खेत की जुताई न करना और

मिट्टी को जैव पलवार से ढक कर रखना। ये सभी घटक मृदा प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

3- **उर्जा दक्षता** :—विभिन्न प्रणालियो का अपनाकर जमीन को हरा—भरा बनाए रखना।

4- **जल प्रयोग एंव संरक्षणः**—वर्षा का जल इकट्ठा करना, जलहोज आदि का निर्माण करके सगृंहीत जल को उपयोग में लाया जा सकता है।

5- **पशुपालन** :—पशुपालन कृषि प्रबधंन का महत्वपूर्ण घटक है। पशुओं से न केवल कई तरह के उत्पाद मिलते है बल्कि जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए गोबर एंव मूत्र भी प्राप्त होता है।

6- **कृशि आदान में आत्म निर्भरताः**—अपने लिए अधिक से अधिक बीजों का उत्पादन करना, कम्पोस्ट खाद, वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीवॉश, तरल खाद वनस्पतियों का रस रखना।

7- **जैव विविधता का सरक्षंणः**— प्रकृति के निर्माण व उसको बनाए रखने में जैव विविधता की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। प्रकृति में किसी भी प्रकार के जीव अथवा वनस्पति का विनाष पर्यावरण के लिए खतरनाक हो सकता है।

8- **अवशेषों का पुनःचक्रणः**—खेती से प्राप्त होने वाले अपशिष्ट पदार्थों का पुनर्चक्रण करके अन्य कार्यों में इस्तेमाल करना।

9- **नवीनीकरण स्त्रौत ऊर्जाः**— सौर ऊर्जा, बायोगैस एवं पर्यावरण के अनुकूल विभिन्न यंत्रों का उपयोग करना।

एकीकृत कृषि प्रणाली के उद्देश्यः—

एकीकृत कृषि प्रणाली के लाभः—

1. प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन

एकीकृत कृशि प्रणाली में फसल और संबधित उद्यमों में सघनता से उपज और आर्थिक/इकाई समय का ईजाफा होता है। भारत में किए अध्ययनों से पता चलता है कि इस समन्वित कृशि दृष्टिकोण से किसानों की आजीविका में काफी सुधार हुआ है।

2. जोखिमों में कमी

एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाने से खेती में जोखिम को कम किया जा सकता है। प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न खतरो से बचाव, बाजार में मंदी होने से या किसान की फसल खराब होने से परिवार की स्थिति पर अधिक असर पही पड़ता, क्योंकि दूसरे घटको के द्वारा उत्पन्न आय से किसान अपनी और अपने परिवार की स्थिति को सभांल सकता हैं।

3. उत्पादन लागत में कमी तथा अधिक आय

एकीकृत कृषि प्रणाली खेतों के स्तर पर अपशिष्ट पदार्थों का परिष्कार करके उसे दूसरे घटक को बिना किसी लागत या कम लागत पर उपलब्ध करवाती है। इस तरह एक उद्यम से दूसरे उद्यम के स्तर पर उत्पादन लागत में कमी लाने मे मदद मिलती है और मुनाफा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त अपषिश्ट पदार्थों के पुनः इस्तेमाल से बाजारों में निर्भरता भी कम होती है।

4. पर्यावरण सुरक्षा

एकीकृत कृशि प्रणाली अपनाने से कृषि में फसल के साथ—2 अन्य घटक भी समेकित किए जाते है। इन घटकों के अवशेषों को भी संसाधनो के रूप में पुनःचक्रण करके खेतों में इस्तेमाल किया जाता है, जो पर्यावरण की दृश्टि से भी लाभकारी है। इस तरह की खेती में रसायनों का प्रयोग कम से कम करना, जैविक एंव जैव उर्वरकों (गोबर) का उपयोग करना, खेतों की मेड़ों पर झाड़ियां लगाना इत्यादि सभी कारक पर्यावरण की दृश्टि से लाभकारी है।

5. सतुंलित पोषक आहार की उपलब्धता

एकीकृत कृशि प्रणाली के फलस्वरूप किसान मछली पालन, मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन एवं पशुपालन इत्यादि क्रियाए करता है जिसके फलस्वरूप उसे सतुंलित पोशक आहार में आवष्यक उत्पाद जैसे दूध, मांस, मछली, अण्डा, दही, पनीर, जौ, बाजरा फल, दालें इत्यादि प्राप्त हो जाती है, जो किसान के अच्छे स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। अतः एकीकृत कृषि प्रणाली के फलस्वरूप किसान अपने और अपने परिवार के भेजन में सभी पोषक तत्वों (खनिज, विटामिन आदि) को आसानी से उपलब्ध करवा सकता है।

6. वर्ष भर निरंतर आय

एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर किसान फसलों के साथ–2 फल, सब्जी आदि का उत्पादन विभिन्न मौसमों के अनुसार करता है। फसलों के अतिरिक्त मछली पालन, मधुमक्खी पालन एंव गाय व भैंस के दूध को बेचकर वर्श भर निरतर अपनी आजीविका चला सकता है, जो इस कृषि का सबसे प्रमुख लाभ है।

7. कूड़े का उचित प्रंबधन एंव ऊर्जा की उपलब्धता

इस कृषि प्रणाली में एक घटक के अवशेष दूसरे घटक के लिए कच्चे माल का स्रौत बन जाते है जैसे फसलों के उत्पाद या अवशेष पशुओं के चारे में तथा पशुओं का मल मूत्र फसलों के लिए खाद के रूप में प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त पशुओं का उपयोग जुताई, भार ढोने, पिसाई इत्यादि में कर सकते है।

8- स्वरोजगार के अवसरों में वृद्धि

खेती के साथ–2 अनय गतिविधियों को अपनाने से मजदूरों की मांग उत्पन्न होती है जिससे पूरे साल परिवार के सदस्यों को काम मिलता है, उन्हे खाली नही बैठे रहना पड़ता। पुष्प उत्पादन, मधुमक्खी पालन और प्रसंस्करण से भी परिवार को रोजगार मिलता है।

9- ईंधन लकड़ी का समाधान

गोबर के उपले बनाकर ईंधन की तरह उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गोबर का प्रयोग बायोगैस उत्पादन में भी किया जा सकता है जिससे गांवों में घरेलू (खाना पकाने, रोशनी करने) एंव विभिन्न उद्यमों में जैसे चक्की व पम्प चलाने में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पशुओं के मल मूत्र को खुला सडने देने की बजाय गोबर गैस बनाकर प्रयोग करने से ग्रीन हाऊस प्रभाव को भी कम किया जा सकता है।

10- पशुओं हेतु चारे की उपलब्धता

फसलों के बचे हुए अवशेष (जैसे भूसा) पशुओं के लिए चारे के रूप में उपयोग किये जा सकते है। और पशुओं और मुर्गियों के अवशेष से अच्छी कम्पोस्ट खाद तैयार की जा सकती है। इसी प्रकार मुर्गी के अवशेष और बीट मछलियों के लिए चारे के रूप में प्रयोग किए जा सकते है।

11- फसल अवशेषों का पुनःचक्रण

अपशिष्ट पदार्थों का पुनः चक्रण कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग है। यह खेती से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों के टिकाऊ निपटान का सबसे उपयोगी तरीका है। इससे पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और पोटेशियम के साथ–2 बहुत से सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी खेतों में पुनःचक्रण के माध्यम से इस्तेमाल किए जाते है।

12- अतिरिक्त आमदनी एंव प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग

दूध एंव दूध के उप्पाद (दही, लस्सी, पनीर इत्यादि) के अलावा पशुओं के मल–मूत्र एंव गोबर को किसान खद के रूप में अपने खेतों में प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनो को अति दोहन से बचाकर भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रख सकता है।

अतः हम कह सकते है कि एकीकृत कृषि प्रणाली के फलस्वरूप अच्छी आमदनी एंव पूरे परिवार को रोजगार मिलने के कारण किसानों एंव मजदूरों के गावों से शहरों में पलायन को रोका जा सकता है। किसान को वर्ष भर निरंतर आय के साथ–2 पर्यावरण को भी सुरक्षित रखा जा सकता है और दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसख्या के लिए भी उत्पादन का प्रबंध किया जा सकता है।

AgriApp

मशीन लर्निंग कृषि क्षेत्र को कैसे बदल सकती है

अक्षय धीरज[1], सपना निगम[2], सलम जयाचित्रा देवी[3], शबाना बेगम[4], कीर्ति जलगांवकर[5], प्रियाजोय कर[6] एवं नीतीश कुमार[7]
[1]भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल सरंक्षण संस्थान, देहरादून (उत्तराखंड)
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[3]भाकृअनुप–राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केंद्र, गुवाहाटी (असम)
[4]भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान, नई दिल्ली
[5]भाकृअनुप–केन्द्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मंबुई (महाराष्ट्र)
[6]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
[7]भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषिरत महिला संस्थान, भुवनेश्वर (ओड़िशा)
संवादी लेखक का ई–मेलः akshaydheeraj-jmi@gmail-com

परिचय

भोजन को मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता माना जाता है जिसे खेती से पूरा किया जा सकता है। कृषि न केवल मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, बल्कि विश्व भर में रोजगार का स्रोत भी मानी जाती है। भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि को अर्थव्यवस्था की रीढ़ और रोजगार का स्रोत माना जाता है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 15.4 प्रतिशत है। आज कृषि प्रवाह की स्थिति में है। बदलती जलवायु और जनसंख्या वृद्धि का सामना करते हुए किसानों को अधिक खाद्य उत्पादन की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, साथ ही उन विकसित तकनीकों को अपनाना है जिन्होंने कृषि को हमेशा के लिए बदल दिया है। मशीन लर्निंग वर्तमान तकनीक है जो किसानों को फसलों के बारे में समृद्ध सिफारिशें और अंतर्दृष्टि प्रदान करके खेती में होने वाले नुकसान को कम करने के लिए लाभान्वित कर रही है। सिंचाई समय–निर्धारण से लेकर कीट प्रबंधन तक, कई अलग–अलग उपयोग के मामलों के लिए कृषि में मशीन लर्निंग को लागू किया गया है। कृषि में मशीन लर्निंग का अनुप्रयोग उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन के साथ कम मानव श्रमशक्ति के साथ अधिक कुशल और सटीक खेती की अनुमति देता है। सटीक कृषि एक कृषि क्षेत्र है जिसमें मशीन लर्निंग समाधानों का उपयोग इस तरह से किया जाता है कि किसान पूरे खेत के बजाय व्यक्तिगत पौधे के स्तर पर फसल की देखभाल और कटाई के बारे में निर्णय ले सकें। इस क्षमता के लिए प्रमुख चालक तेज, मजबूत और सटीक मशीन लर्निंग मॉडलिंग है। किसानों द्वारा अपनी कृषि उपज बढ़ाने, लागत कम करने और पर्यावरण की रक्षा के लिए सटीक कृषि प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया जा सकता है। कृषि में मशीन लर्निंग के विभिन्न अनुप्रयोगों का उल्लेख नीचे किया गया है।

कृषि में मशीन लर्निंग के विभिन्न अनुप्रयोग

1. प्रजाति प्रजनन

विशिष्ट जीन की खोज के लिए प्रजातियों का चयन एक कठिन प्रक्रिया है। यह विशिष्ट जीन पानी और पोषक तत्वों के उपयोग की प्रभावशीलता, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन, रोग प्रतिरोध, साथ ही पोषक तत्व सामग्री या बेहतर स्वाद आदि को निर्धारित करता है। मशीन लर्निंग, विशेष रूप से, डीप लर्निंग एल्गोरिदम, विभिन्न जलवायु में फसलों के प्रदर्शन और प्रक्रिया में विकसित नई विशेषताओं का विश्लेषण करने के लिए दशकों के फील्ड डेटा का उपयोग करते है। इस

डेटा के आधार पर डीप लर्निंग के द्वारा एक प्रायिकता मॉडल बनाया जा सकता हैं जो ये भविष्यवाणी कर सकता है कि कौन से जीन पौधे के लिए लाभकारी है।

2. मृदा प्रबंधन

कृषि में शामिल विशेषज्ञों के लिए, मिट्टी एक विषम प्राकृतिक संसाधन है, जिसमें कई जटिल प्रक्रियाएं और अस्पष्ट क्रियाविधि शामिल है । इसका तापमान अकेले क्षेत्रीय उपज पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के बारे में जानकारी दे सकता है। मशीन लर्निंग एल्गोरिदम पारिस्थितिक तंत्र की गतिशीलता और कृषि में प्रभाव को समझने के लिए वाष्पीकरण प्रक्रियाओं, मिट्टी की नमी और तापमान का विश्लेषण करते हैं।

3. जल प्रबंधन

कृषि में जल प्रबंधन जल विज्ञान, जलवायु विज्ञान और कृषिशास्त्रीय संतुलन को प्रभावित करता है। अब तक, सबसे विकसित मशीन लर्निंग आधारित अनुप्रयोग दैनिक, साप्ताहिक या मासिक वाष्पीकरण के अनुमान से जुड़े हुए हैं, जिससे सिंचाई प्रणालियों के अधिक प्रभावी उपयोग की अनुमति मिलती है और दैनिक ओस बिंदु तापमान की भविष्यवाणी होती है, जो अपेक्षित मौसम की घटनाओं की पहचान करने और वाष्पन–उत्सर्जन और वाष्पीकरण का अनुमान लगाने में मदद करती है।

4. फसल उपज भविष्यवाणी

फसल की उपज का सटीक अनुमान लगाने से किसानों को यह जानने में मदद मिलेगी कि उन्हें कब कटाई शुरू करनी चाहिए ताकि वे इसे उचित मूल्य पर बेचकर अपने लाभ को अधिकतम कर सकें। फसल उपज भविष्यवाणी के द्वारा एक निश्चित अवधि में कृषि फसलों की अपेक्षित उपज का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। फसल जीनोटाइप, पर्यावरणीय कारकों, प्रबंधन प्रथाओं और उनकी बातचीत जैसे कई कारकों पर निर्भरता के कारण फसल उपज की भविष्यवाणी बेहद चुनौतीपूर्ण है। मशीन लर्निंग मॉडल विभिन्न कारकों को ध्यान में रखते हुए फसल की पैदावार की भविष्यवाणी करने के लिए बनाए गए हैं जो इसे प्रभावित करते हैं जैसे कि मौसम डेटा (तापमान, वर्षा), मिट्टी की नमी सेंसर आदि फसल के समय से पहले कृषि क्षेत्र के लिए सटीक उपज मूल्यों की भविष्यवाणी इन सब कारको के विश्लेषण से की जा सकती हैं। इन तकनीकों का उपयोग किसानों द्वारा दैनिक आधार पर उच्च सटीकता के साथ किया जा सकता है जो उन्हें यह निर्णय लेने में सक्षम बनाता है कि कब फसल की कटाई करनी है, कितना कीटनाशक लगाना है और किन उर्वरकों का उपयोग करना है। उपज के सटीक अनुमान के साथ बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन की भविष्यवाणी करने के लिए डीप लर्निंग मॉडल का उपयोग किया जा सकता है। इससे किसानों को फसल पैटर्न और फसल प्रबंधन से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय लेने में मदद मिलेगी जिससे फसल के मौसम में बेहतर पैदावार हो सकेगी।

5. फसल पंक्ति का पता लगाना

कृषि रोबोटिक्स में दृष्टि आधारित नेविगेशन रोबोट विकसित करने में क्रॉप रो डिटेक्शन एक प्रमुख तत्व है। क्रॉप रो डिटेक्शन पर हाल के काम में डीप लर्निंग आधारित विधियों का उपयोग किया गया है जिससे वास्तविक दृष्टि आधारित नेविगेशन प्रणाली को लागू करने में आई प्रमुख चुनौतियों पर काबू पाया गया है। फसल पंक्ति का पता लगाने में कुछ प्रमुख पहलू हैं खरपतवार घनत्व, विकास चरण, छाया और असंतुलन आदि। दीप लर्निंग आर्किटेक्चर का उपयोग खरपतवार घनत्व, विकास चरणों, छाया आदि के आधार पर फसल पंक्ति का पता लगाने के लिए किया जा सकता है।

6. पौधे में जल दबाव की पहचान

पौधों में पानी की कमी की स्थिति की शीघ्र पहचान से फसल की अपेक्षित उपज प्राप्त करने के लिए उपयुक्त सुधारात्मक उपायों को लागू किया जा सकता है। सुधारात्मक सिंचाई शुरू करने और तनाव को कम करने के लिए विकास के प्रारंभिक चरणों के दौरान पौधों में पानी के तनाव की पहचान करना आवश्यक है। मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग पत्ती के पानी की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए किया जा सकता है जिसे बाद में पौधों में पानी के तनाव का अनुमान लगाने के लिए उपयोग किया जाता है। पत्ती जल सामग्री एक उपाय है जिसका उपयोग पानी की मात्रा का अनुमान लगाने और तनावग्रस्त पौधों की पहचान करने के लिए किया जा सकता है। प्रारंभिक फसल वृद्धि चरणों

के दौरान पत्ती जल सामग्री पौधों की उत्पादकता और उपज का एक महत्वपूर्ण संकेतक है। पत्ती जल सामग्री का अनुमान लगाने के लिए एन्सेम्बल और रीग्रेस्सर विधियों का इस्तेमाल किया जा सकता है और वर्गीकरण मॉडल का उपयोग पत्ती जल सामग्री मूल्यांकन और अन्य मापदंडों के आधार पर पानी के तनाव को वर्गीकृत करने के लिए किया जा सकता है।

7. फसल मानचित्रण

कृषि निगरानी में विभिन्न प्रकार के अनुप्रयोगों के लिए क्षेत्र स्तर पर फसल प्रकार मानचित्रण महत्वपूर्ण है। बड़े स्थानिक पैमाने पर खेत प्रबंधन और उपज परिणामों के मानचित्रण के लिए क्षेत्र संकल्प पर फसल प्रकार मानचित्रण एक पूर्वापेक्षा है। परंपरागत रूप से, फसल प्रकार की जानकारी क्षेत्र सर्वेक्षण और जनगणना से प्राप्त की जाती है, लेकिन ऐसे सर्वेक्षण महंगे और समय लेने वाले होते हैं। यहीं पर फसल प्रकार के नक्शों के लिए उपग्रह डेटा पर मशीन लर्निंग तकनीकों को लागू किया जाता है। रैंडम फॉरेस्ट जैसे वर्गीकरण एल्गोरिदम का उपयोग फसल वर्गीकरण एवं मानचित्रणके लिए किया जा सकता है।

8. फसल चयन की भविष्यवाणी

मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग किसानों को कुशलतापूर्वक फसल का चयन करने और न्यूनतम लागत के साथ फसल की उपज को अधिकतम करने में मदद करने के लिए किया जा सकता है। मशीन लर्निंग मॉडल को विभिन्न क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त फसल चयन और उपज की भविष्यवाणी करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की फसलों का चयन करने, विशेषताओं की पहचान करने और फिर विभिन्न क्षेत्रों के लिए फसल चयन को वर्गीकृत करने के लिए मॉडल को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होती है। ऐसे मॉडलों को प्रशिक्षित करने के लिए एल्गोरिदम जैसे सपोर्ट वेक्टर मशीन, रैंडम फॉरेस्ट, लॉजिस्टिक रिग्रेशन, डीप न्यूरल नेटवर्क आदि का उपयोग किया जा सकता है। ऐसे मॉडलों में उपयोग की जाने वाली विशेषताएं मौसम के मापदंडों (वर्षा, तापमान आदि), उपयोग किए गए उर्वरकों, भूमि के प्रकार, मिट्टी से संबंधित जानकारी आदि से संबंधित हो सकती हैं।

9. सिंचाई योजना

पानी के उपयोग को समझने और बेहतर जल प्रबंधन को बढ़ावा देने के लिए सिंचाई योजना महत्वपूर्ण है। इस तरह के डेटा संभावित रूप से कृषि जल स्रोतों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के अध्ययन को सक्षम कर सकते हैं, पानी के उपयोग की निगरानी कर सकते हैं, पानी की चोरी और अवैध कृषि का पता लगाने में मदद कर सकते हैं और जल अनुपालन और प्रबंधन से संबंधित नीतिगत निर्णयों और विनियमों को सूचित कर सकते हैं। सिंचाई योजना के लिए मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। मशीन लर्निंग तकनीकों की मदद से इस समस्या को हल करना चौनुतिपूर्ण है क्योंकि सिंचाई प्रणालियों के आसपास केंद्रित लेबल डेटा की बहुत कमी है। यहाँ पर पूर्व–प्रशिक्षित मॉडल का उपयोग किया जा सकता है द्यइन मॉडल के द्वारा, भूमि स्थायी रूप से सिंचित है या नहीं, इसका वर्गिकरण किया जा सकता है।

10. भूजल स्तर की पूर्वसूचना

भूजल मीठे पानी के संसाधनों का सबसे बड़ा भंडारण है, जो कृषि, औद्योगिक और घरेलू जल आपूर्ति के माध्यम से अधिकांश मानव उपभोग के लिए प्रमुख सूची के रूप में कार्य करता है। भूजल स्तर की भविष्यवाणी करने के लिए डीप न्यूरल नेटवर्क को प्रशिक्षित किया जा सकता है। डीप लर्निंग विधियों को इस मामले में उपलब्ध सीमित जानकारी के बावजूद सटीक परिणाम देने के लिए जाना जाता है। इसके लिए डीप लर्निंग विधियाँ ज्यादातर उपग्रह डेटा और जल–मौसम संबंधी पैरामीटर का उपयोग करती है ।

भाषा देश की एकता का प्रधान साधान है।

– आचार्य चतुरसेन शास्त्री।

हाइड्रोजेल: जल संचयन की एक आधुनिक तकनीक

विनय कुमार कर्दम[1], राजाराम बुनकर[2], भानु वर्मा[3] एवं दशरथ प्रसाद[1]
[1]स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)
[2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)
[3]बीज विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेखक का ई–मेल:vinaydeepak95@gmail-com

हाइड्रोजेल क्या है हाइड्रोजेल एक ऐसा पदार्थ है जिसको खेत में डालने से पानी की बचत होती है। यह एक बार में अपने से 400 गुना तक ज्यादा पानी को ठोस रुप में बदल देता है जो कि बाद में पौधे के नीचे पड़ा रहता है तथा समय आने पर पौधे को जितनी नमी चाहिए होती है, उतना यह समय– समय पर छोड़ता रहेगा और पौधा हरा–भरा रहेगा, जिससे कि पौधे को सही मात्रा में नमी और पानी और तापमान मिलता रहेगा जिससे की पौधे की बढ़वार होगी और पौधा अच्छे से वृद्धि करेगा।

हाइड्रोजेल को विशेष रूप से 1980 के दशक के अंत तक कृषि उपयोग के लिए डिज़ाइन किया गया था। उन्हें मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार करने के लिए विकसित किया गया था, जो कि जल धारण क्षमता में वृद्धि करते हैं, और जल उपयोग दक्षता बढ़ाते हैं। कृषि के लिए सुपर शोषक बहुलक अपने स्वयं के विशेष द्रव्यमान के संबंध में भारी मात्रा में पानी को आत्मसात और धारण कर सकता है। जल धारण करने वाले बहुलक जो प्रत्यायोजित हाइड्रोजेल होते हैं, जब क्रॉस–कनेक्ट होते हैं, तो पानी के साथ हाइड्रोजन बंधन के माध्यम से तरल पदार्थ को अवशोषित करते हैं। पानी को बनाए रखने की उनकी क्षमता पानी की व्यवस्था की आयनिक एकाग्रता का एक तत्व है।

यह हाइड्रोजेल भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित है और यह फसल को ऑर्गेनिक बनाने में बहुत ज्यादा मदद करता है। हाइड्रोजेल एग्रीकल्चर (कृषि के लिए सुपर शोषक पॉलिमर) पोटेशियम आधारित गैर–विषैले बहुलक है जो अपने आकार के 300 – 500 गुना तक पानी को अवशोषित और बनाए रखने में सक्षम है। जब इसे मिट्टी में मिलाकर पौधे के जड़ क्षेत्र में बोया जाता है, तो यह 65–95% पानी बचाता है। यह हाइड्रोजेल अत्यधिक गर्म, सूखा और अत्यधिक जलवायु में खेती को विकसित करने के लिए बनाया गया था। यह शुष्क मौसम, मरुस्थलीकरण, खराब मिट्टी की गुणवत्ता और उपचार में सहायता करता है। दिन–प्रतिदिन पानी देने के बजाय, सुपर शोषक बहुलक सप्ताह में एक बार पानी देने की अनुमति देता है, जिससे समय, पैसा, श्रम, पानी की बचत होती है।

विशेषताएं :–

- हाइड्रोजेल पाउडर ऊंचे–नीचे खेत में जहां पर पानी भरा होगा उसको रोक लेगा और धीरे–धीरे पानी छोड़ने में मदद करता है।
- इसका वातावरण में जैव निम्नीकरण संभव है।
- इससे किसी पौधे को या वातावरण को नुकसान नहीं होता है। यह सालों साल पानी को कंट्रोल कर के रख सकता है।
- यह मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाता है और मिट्टी में अच्छे तत्वों को कंट्रोल करके रखता है।
- हाइड्रोजेल से पौधे के सूक्ष्म तत्वों को बढ़ावा मिलता है, इसे किसी भी सूक्ष्म तत्व को कोई हानि नहीं पहुंचती है।
- इसको डालने से खाद की 20 प्रतिशत तक बचत

होती है।

- इसके उपयोग से फसल की उपज में 15 से 25 प्रतिशत तक बढ़ती है जिससे कि मुनाफा होता है ।

हाइड्रोजेल का उपयोग कहां–कहां कर सकते हैं :– एग्रीकल्चर, बागवानी, गार्डनिंग, होम गार्डनिंग, गमलों में, घर की बागवानी में, घर की सब्जियों में, पॉलीहाउस में और अन्य प्रकार के बाग–बगीचों में लगा सकते हैं या डेरी फार्मिंग में चारा पैदा करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता हैद्य पेड़ों में तथा पौध तैयार करने में हाइड्रोजेल का उपयोग कर सकते हैं।

गन्ने में इसकी मात्रा 8 किलो प्रति एकड़, धान में इसकी मात्रा 4 किलो प्रति एकड़ तथा गेहूं में इसकी मात्रा 3 किलो प्रति एकड़ उपयोग कर सकते हैंद्य गन्ने में यह 2 साल तक काम करेगा, धान में 6 महीने तक काम करता है तथा गेहूं में 6 महीने तक काम करता हैद्य इसको यूरिया के साथ नहीं डालना होता आमतौर पर इसको बीज के साथ डालते हैं यहां अगर रोप लगाना है रोपाई से पहले हाइड्रोजेल को खेत में डाल देते हैं अगर आप बेलदार सब्जियां लगा रहे हैं तो जड़ों में डाल सकते हैं इसे आप लगाएंगे और ज्यादा नमी पाएंगे इसको अल्ट्रावायलेट किरणों से बचाना होता है यह अगर मिट्टी में 3 इंच तक नीचे रहेगा तो और भी अच्छे रिजल्ट मिलते हैं क्योंकि यह मिट्टी को भी नरम बनाता है जिसे पौधे की बढ़वार अच्छी होती है और पौधा अच्छे से वृद्धि करता है अच्छे से उसको नमी मिलती है जिससे के पौधा अच्छे से बढ़ता है।

आवेदन की दरः–

- मिट्टी का प्रकारः हाइड्रोजेल की सुझाई गई खुराक
- पानी के तनाव को कम करने के लिएः वजन के हिसाब से 3%
- शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रः 4–6 ग्राम/किलोग्राम मिट्टी
- सूखे के दबाव को कम करने के लिएः 0.2–0.4% मिट्टी
- दोमट मिट्टी में सिंचाई के पानी को 50% तक कम करने के लिएः 2–4 ग्राम/पौधे का गड्ढा
- सापेक्ष जल सामग्री और पत्ती जल उपयोग दक्षता में सुधार करने के लिएः 0.5–2.0 ग्राम / बर्तन
- सूखे के दबाव को कम करने के लिएः 0.2–0.4% मिट्टी
- सूखे के दबाव को पूरी तरह से रोकने के लिएः 225–300 किग्रा / हेक्टेयर खेती योग्य क्षेत्र
- पानी के तनाव को कम करने के लिएः वजन के हिसाब से 3%

लाभः–

- हाइड्रोजेल पॉलीमर मृदा जल धारण क्षमता को बढ़ाता है।
- सिंचाई की आवृत्ति को प्रभावी ढंग से कम करता है ।
- मिट्टी की लीचिंग के माध्यम से पानी और पोषक तत्वों की हानि को सीमित करता है।
- कृषि के लिए हाइड्रोजेल वाष्पीकरण के माध्यम से पानी की कमी को कम करता है।
- वातन को बढ़ाकर मिट्टी के भौतिक गुणों में सुधार करता है।
- हाइड्रोजेल कृषि उपयोग सब्सट्रेट के साथ मिश्रित होने पर पानी के तनाव को कम करता है।
- पौधे की जड़ क्षेत्र में सीधे पानी और पोषक तत्व उपलब्ध कराकर पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है।
- उर्वरक के उपयोग को 15 – 30% तक कम करता है ।
- अपरदन और जल अपवाह को कम करता है।
- पौधों के प्रदर्शन को बढ़ाता है, खासकर शुष्क क्षेत्रों में ।
- सूखे और भूजल प्रदूषण से पर्यावरण की रक्षा करता है ।
- ठंढी सर्दियों की परिस्थितियों में पौधों की जड़ों के

लिए एक इन्सुलेट सामग्री के रूप में कार्य करता है।

कृषि में हाइड्रोजेल पॉलीमर कम या नगण्य से लेकर सीमित सिंचाई स्थितियों वाले क्षेत्रों में कृषि और बागवानी फसलों में पानी के उपयोग में प्रभावी है। यह खेती के लिए विशाल आर्थिक व्यवहार्यता प्रदान करता है और शुष्क राज्यों के लिए वरदान है, जिसे "कृषि की भावी पीढ़ी" भी कहा जाता है।

ALSTA HYDROGEL कृषि क्षेत्र के लिए Chemtex Specialty Ltd द्वारा निर्मित एक पोटेशियम पॉलीक्रिलेट आधारित सुपर शोषक बहुलक है। दानेदार बहुलक में अपने वजन से 300–500 गुना पानी को अवशोषित करने की क्षमता होती है और इसे एक अवधि में धीरे–धीरे सीधे पौधे की जड़ों तक छोड़ती है। यह सिंचाई की आवृत्ति को कम करने, मिट्टी की बनावट और पारगम्यता को बनाए रखने के साथ–साथ पौधों की उचित और स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित करने में प्रभावी है। मिट्टी की नमी बनाए रखने के साथ–साथ सिंथेटिक एनपीके उर्वरकों के उपयोग को कम करने के लिए इसे डी–आयोनाइज्ड और डी–मिनरलाइज्ड पानी के साथ आसानी से इस्तेमाल किया जा सकता है। यह खुले मैदान और सुरक्षात्मक खेती, छत पर खेती, ऊर्ध्वाधर खेती, घरेलू उद्यान, वृक्षारोपण, बेयर रूट ड्रिपिंग, हाइड्रो सीडिंग, हाइड्रोपोनिक्स आदि में बड़े पैमाने पर इसका उपयोग किया जाता है।

हताश न होना सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह मनुष्य को कर्मो में प्रेरित करता है और उत्साह ही कर्म को सफल बनाता है।

– वाल्मीकि

उत्तर पूर्वी क्षेत्र में मक्का उत्पादन के अवसर और चुनौतिया

कृष्णदास सिंह[1], तुसोइंग ए[1], एल प्रिसिला[1], पी एच रोमेन शर्मा[2], बी एस जाट[2], प्रियाजोय कर[2], सुमित कुमार अग्रवाल[2] एवं प्रदीप कुमार[2]

[1]पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

[2]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)

संवादी लेखक का ई–मेलः bahadursinghnanda@gmail.com

मक्का क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से गेहूं और चावल के बाद दुनिया की तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज फसल है। मक्का उगाने वाले देशों में भारत क्षेत्रफल और उत्पादन में चौथे और सातवें स्थान पर है, जो कुल वैश्विक क्षेत्रफल और उत्पादन का क्रमशः लगभग 4 और 2 प्रतिशत हिस्सा है। मक्का भारत में विभिन्न कृषि जलवायु पारिस्थितिकियों में उगाया जाता है। मक्का फसल को अत्यधिक अर्ध–शुष्क से लेकर उप–आर्द्र और आर्द्र क्षेत्रों वाले वातावरण की एक विस्तृत श्रृंखला में उगाया जाता है तथा देश के ऊपरी क्षेत्रों में कृषि में विविधता लाने के लिए एक अच्छे विकल्प के रूप में देखा जाता है। भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्र (एनईआर) में चावल के बाद, मक्का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न है जो ज्यादातर वर्षा सिंचित पहाड़ी उर्ध्वाधर परिस्थितियों में उगाया जाता है। पश्चिमी और उत्तरी पूर्वी पहाड़ी (एनईएच) क्षेत्रों में यह फसल मुख्य रूप से उगाई जाती है। भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्र (एनईआर) में, यह मुख्य रूप से झूम भूमि और सीढ़ीदार क्षेत्रों जैसे वर्षा सिंचित पहाड़ी क्षेत्रों में उगाया जाती है। इस क्षेत्र में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मक्का की खेती बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका उपयोग प्रत्यक्ष उपभोग के साथ ही दूसरे चक्र के उत्पादन (सुअर पालन और मुर्गी पालन) दोनों के लिए किया जाता है। पूर्वोत्तर राज्यों में मक्का का कुल क्षेत्रफल और उत्पादन क्रमशः 237.33 हजार हेक्टेयर और 493.94 हजार टन है जो कि राष्ट्रीय स्तर पर 3006 किलोग्राम/हेक्टेयर की तुलना में पूर्वोत्तर क्षेत्र में औसत मक्का उत्पादकता 2078 किलोग्राम/हेक्टेयर है।

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज

उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता तालिका संख्या 1 में दिया गया है। फसल

तालिका 1. पूर्वोत्तर राज्यों में खरीफ एवं रबी मौसम में मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज (2019–20)

राज्य	खरीफ			रबी			कुल		
	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज	क्षेत्रफल	उत्पादन	उपज
अरूणाचल प्रदेश	41.84	63.35	1514	9.92	16.86	1700	51.76	80.20	1550
असम	36.64	128.04	3495	–	–	–	36.64	128.04	3495
मणिपुर	2.22	4.94	2228	–	–	–	2.22	4.94	2228
मेघालय	18.17	41.75	2298	–	–	–	18.17	41.75	2298
मिजोरम	5.86	10.30	1758	0.49	0.67	1359	6.35	10.97	1727
नगालैंड	63.74	126.46	1984	5.39	10.7	1985	69.13	137.16	1984
सिक्किम	38.39	67.91	1769	–	–	–	38.39	67.91	1769
त्रिपुरा	12.49	17.75	1422	2.15	5.22	2427	14.64	22.97	1570
NER	219.35	2058		17.95	33.45	1867	237.33	493.94	2078
भारत	7553	19429	2572	2016	9337	4631	9569	28766	3006

क्षेत्रफल ('000 हेक्टेयर), उत्पादन ('000 टन) और उपज (किलोग्राम/हेक्टेयर)

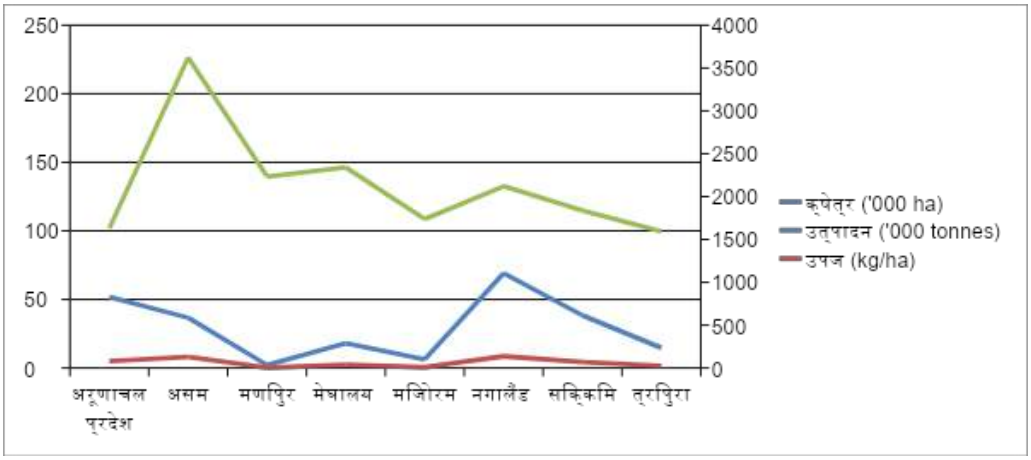

चित्र 1: पूर्वोत्तर राज्यों में वर्ष 2019–20 के दौरान मक्का के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज का कुल अनुमान

वर्ष 2019–20 के दौरान, पूरे क्षेत्र में मक्का की खेती का कुल क्षेत्रफल 237.33 हजार हेक्टेयर है, जिसका कुल उत्पादन 493.94 हजार टन, और औसत उपज 2078 किग्रा/हेक्टेयर है। नागालैंड में मक्का का क्षेत्रफल (69.13 हजार हेक्टेयर) और उत्पादन (137.16 हजार टन) राज्यों में शीर्ष पर है लेकिन 3495 किलोग्राम / हेक्टेयर की उत्पादकता के साथ असम शीर्ष पर है। मणिपुर राज्य में 2.22 हजार हेक्टेयर के कुल क्षेत्रफल और 4.94 हजार टन के उत्पादन के साथ क्षेत्रफल और उत्पादन के मामले में सबसे पीछे है, जबकि अरुणाचल प्रदेश में सबसे कम उत्पादकता (1550 किग्रा/हेक्टेयर) है।

खरीफ मौसम के दौरान मक्का पूर्वोत्तर के सभी राज्यों में उगाया जाता है तथा कुछ राज्य खरीफ और रबी दोनों मौसमों में मक्का की खेती करते हैं। नागालैंड में अधिकतम क्षेत्रफल 69.13 हजार हेक्टेयर के साथ, असम में उत्पादन और उत्पादकता क्रमशः 128.04 हजार टन और 3495 किलोग्राम/हेक्टेयर है। रबी मौसम के दौरान मक्का उगाने वाले राज्य अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड और त्रिपुरा हैं। अरुणाचल प्रदेश रबी मक्का खेती में क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों में क्रमशः 9.92 हजार हेक्टेयर और 16.86 हजार टन के साथ अग्रणी है जबकि त्रिपुरा 2427 किलोग्राम/ हेक्टेयर उपज के साथ उत्पादकता में सबसे आगे है। सभी पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्र, उत्पादन और उपज चित्र 1 को दर्शाए गये है।

उत्तर पूर्वी राज्यों में मक्का उत्पादन के लिए चुनौतियां:

उत्तर–पूर्वी भारत में मक्का उत्पादन के लिए जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, वे बहु–क्षेत्रीय और बहु–आयामी हैं, मक्का उत्पादन से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण कठिनाइयों का उल्लेख नीचे किया गया है:

खंडित भूमि–जोत: किसी भी फसल के उत्पादन पर भूमि की जोत का बहुत प्रभाव पड़ता है। छोटे और सीमांत किसानों के विखंडन से भूमि–जोत पर अधिक प्रभाव पड़ा हैं। इस क्षेत्र के 59 प्रतिशत से अधिक किसानों के पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि है, और 80 प्रतिशत के पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि है। जो कि मक्का के उत्पादन को बहुत प्रभावित करता हैं। इस क्षेत्र की अधिकांश मिट्टी अम्लीय प्रकृति की है। इसलिए, मक्का की उपयुक्त किस्मों का विकास एवं पहचान की जानी चाहिए।

पर्याप्त एवं गुणवत्ता वाले बीज की कमी: इस क्षेत्र में गुणवत्ता वाले बीज की कमी सबसे महत्वपूर्ण समस्या में से एक है, क्योकि बीज कृषि में एक बुनियादी आदान है जिसका फसल उत्पादन पर बहुत असर पड़ता है। गुणवत्ता वाले बीजों की उच्च कीमत और संबंधित अधिकारियों के साथ खराब संबंधों के कारण इन क्षेत्र के किसानों, विशेष रूप से सुदूर क्षेत्रों के छोटे और सीमांत किसानों को उन्नत किस्मों का बीज व अन्य आदान समय पर नहीं मिल पाते है जिससे फसल का अच्छा उत्पादन नहीं मिल पाता है

उर्वरक असंतुलन या कम–उपयोगः अन्य देशों की तुलना में भारत में उर्वरक का उपयोग कम और असंतुलित रूप में किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर 133.10 किग्रा/हेक्टेयर की तुलना में 2018–19 में उपयोग किया जाने वाला औसत उर्वरक 65.96 किग्रा/हेक्टेयर है।

स्थलाकृतिः इन राज्यों में खराब स्थलाकृति होने के कारण विभिन्न प्राकृतिक बाधाओं जिसमें, मिट्टी की खराब स्थिति, कम प्रकाश के दिन, उच्च आर्द्रता, लगातार बाढ़ और सूखा आदि शामिल हैं, जो कि मक्का उत्पादन को बहुत प्रभावित करते हैं। "भूमि"/ शिफ्टिंग पद्धति, जो कि इस क्षेत्र में फसल उत्पादन की एक पुरानी पद्धति है, इस क्षेत्र में शिफ्टिंग खेती व्यापक रूप से प्रचलित है। यह भूमि का सबसे उच्च अवैज्ञानिक उपयोग है जिससे भूमि और पर्यावरण का क्षरण होता है और फसल उत्पादकता में भी कमी आती है।

खराब सिंचाई सुविधाः उत्तरी–पूर्व क्षेत्र में मक्का के कम उत्पादन का एक मुख्य कारण अपर्याप्त सिंचाई अवसंरचना है जिसके कारण खेती मानसूनी बारिश पर अधिक निर्भर होती है।

मशीनीकरण का अभावः इस क्षेत्र का अधिकांश भाग पहाड़ी है और अधिकांश कृषि कार्य अभी भी छोटे और पारंपरिक औजारों, लकड़ी के हल, दरांती आदि के साथ हाथ से किए जाते हैं। इन क्षेत्रों में छोटी और सीमांत जोत तथा कम लागत वाले कृषि उपकरणों की कमी के कारण, मशीनीकरण की बहुत कम गुंजाइश है।

खराब भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं का अभावः प्रायः इन क्षेत्रों में वैज्ञानिक भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं की कमी एक प्रमुख चिंता का विषय है। कटाई के बाद, लगभग 60–70 प्रतिशत खाद्यान्न चर अवधि के लिए खेतों में संग्रहीत किया जाता है। आम तौर पर पारंपरिक भंडारण सुविधाओं में कम ऊंचाई वाली नींव, दृढ़ लकड़ी के फर्श, उच्च नमी के स्तर और कमजोर सहायक संरचनाओं जैसी खामियां होती हैं, जो दानों को कीटों और सूक्ष्म जीवों के संक्रमण के लिए विशेष रूप से कमजोर बनाता है ।

असंगठित बाजारः फसल के बाद उपज को उचित मूल्य पर बेचना फसल उत्पादन श्रृंखला के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू है लेकिन बुनियादी ढांचे के साथ उचित बाजार तथा एक प्रभावी परिवहन प्रणाली के अभाव के कारण, कृषि विपणन अभी भी इस क्षेत्र में खराब स्थिति में है किसानों को अभी भी स्थानीय डीलरों और बिचौलियों पर भरोसा करने के लिए मजबूर किया जाता है जिनसे वे अक्सर अपनी कृषि उपज के निपटान के लिए पैसे उधार लेते हैं, जिसके कारण उपज को कम कीमत पर बेचना पड़ता है।

रोग और कीट समस्याएँः इस क्षेत्र में मक्का के प्रमुख रोगों और कीटों में टर्सिकम लीफ ब्लाइट (टीएलबी), फॉलआर्मी वर्म, मक्का भुट्टा छेदक और तना छेदक शामिल हैं जो मक्का फसल उत्पादन को बहुत प्रभावित करते हैं ।

भारत के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में मक्का उत्पादन की भावी संभावनायेंः मक्का के बढ़ते उत्पादन एवं लोकप्रियता के कारण उत्तरी पूर्वी क्षेत्र मक्का उत्पादन बढ़ाने में भविष्य मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इन राज्यों में प्रायः पशुपालन एवं मुर्गी पालन उनके पारंपरिक व्यवसाय एवं जीविका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रायः इन क्षेत्रों में पशुओं को खिलाया जाने वाला पशु खाद्य महंगा एवं कम मात्रा में उपलब्ध होता है जिसके कारण उनकी उत्पादकता भी बहुत कम है। इसके अलावा, यह क्षेत्र कुक्कुट पालन, सुअर पालन और पशुधन की जरूरतों को पूरा करने के लिए मक्का का शुद्ध आयातक है। इस प्रकार, उत्तर पूर्वी क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने से देश के इस महत्वपूर्ण रणनीतिक सेक्टर में इन क्षेत्रों को और बढ़ावा मिलेगा। अतः मक्का इन क्षेत्रों में एक वरदान के रूप में साबित हो सकती है। मुख्यतया इन क्षेत्रों में मक्का की स्थानीय एवं पारंपरिक किस्मों को उगाया जाता है जिसको प्रायः खाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। इन क्षेत्रों में आमतौर पर कम सघनता वाले मक्के की खेती की जाती हैं, तथा मक्का उत्पादन के लिए उन्नत तकनीकों को अभी तक किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर नहीं अपनाया गया है जिससे मक्का की उत्पादकता अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत कम है। अतः इन क्षेत्रों में मक्का उत्पादन को बढ़ाने के लिए मक्का उत्पादन की आधुनिक तकनीको के साथ अधिक उपज देने वाली किस्मों को विकसित करना एवं उन्नत तकनीकों को अपनाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन मक्का (क्यूपीएम) की खेती इस क्षेत्र के भोजन, चारा, पोषण और आजीविका सुरक्षा के मुद्दे को हल कर सकती है। इन प्राकृतिक रूप से संपन्न पर्यटक राज्यों में स्वीट कॉर्न, पॉप कॉर्न और बेबी कॉर्न की खेती में कृषि लाभप्रदता बढ़ाने और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना की और अधिक संभावनाएं हैं। इन विशेष मकई के साथ–साथ चारा उत्पादन के लिए लघु प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना से इन राज्यों में मक्का के विकास की और अधिक संभावना है। यह क्षेत्र मक्का में जैव विविधता का एक गौण केंद्र भी है और इस क्षेत्र के मक्का खाने वालों के साथ कई स्थानीय किस्में विकसित हुई हैं। इन स्थानीय किस्मों को संरक्षित करके तथा पारम्परिक ज्ञान के प्रलेखन से भविष्य में मक्का प्रजनन कार्यक्रम एवं मक्का की खेती में बहुत बड़ा योगदान साबित हो सकता है। इसके अलावा इस क्षेत्र में किसान अपने उपभोग के लिए और क्षेत्र के पड़ोसी राज्यों और अन्य देशों को बीज के निर्यात के लिए बीज उत्पादन भी कर सकता है।

निष्कर्ष और नीति सुझाव

पूर्वोत्तर क्षेत्र में कृषि विकास की अपार संभावनाएं हैं। हालांकि, कृषि उत्पादन और राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान अपर्याप्त है। प्रायोगिक उत्तरी पूर्वी क्षेत्रीय कृषि के सामने सबसे महत्वपूर्ण कठिनाइयां उत्पादन, कटाई के बाद के प्रबंधन और संस्थागत वितरण प्रणाली से संबंधित कई मुद्दे हैं, जो कृषि उत्पादन के प्रवाह और बहिर्वाह दोनों के साथ–साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादकता को प्रभावित करते है। इसलिए, मौजूदा नीतियों पर पुनर्विचार करना और सड़कों, बिजली, बाजार, भंडारण और प्रसंस्करण जैसे क्षेत्रीय बुनियादी ढांचे में सुधार करना महत्वपूर्ण है साथ ही ऐसे संगठनों को प्रोत्साहित करना जो किसानों या किसानों के समूहों को प्रौद्योगिकी, ऋण और बाजार लिंकेज अपनाने में मदद करते हैं।

अनुकूल वर्षा और उच्च कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी ने इन पारिस्थितिकी में बहु–मौसम में इस फसल की खेती का अच्छा अवसर प्रदान किया है, जिसमें उच्च उपज देने वाली संकर मक्का की खेती विशेष रूप से मक्का प्रणालियों में लचीलापन प्रदान करने और लाभप्रदता बढ़ाने के लिए जैविक और अजैविक तनाव को सहन कर सकते हैं। इसके अलावा बदलते परिदृश्य के तहत इस क्षेत्र में मक्का के लिए स्थान विशिष्ट नवीन प्रौद्योगिकियों की पहचान करना, कुक्कुट पालन और पशुधन उत्पादकता को बनाए रखने के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली में मक्का की भूमिका पर जोर देना तथा भोजन, चारा और पोषण सुरक्षा के लिए एनईएच में विकास के लिए मक्का अनुसंधान के लिए एक रोडमैप तैयार करना आदि बातों पर विचार करने की जरुरत है।

हताश न होना सफलता का मूल है और यही परम सुख है। उत्साह मनुष्य को कर्मो में प्रेरित करता है और उत्साह ही कर्म को सफल बनाता है।

– वाल्मीकि

पशुओं के चारे के लिए प्रमुख घास फसलों का महत्व

राजेश[1], विजेंद्र कुमार[1], दिनेश कुमार[2], यतीश के आर[3] एवं सुमित कुमार अग्रवाल[3]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]शस्य विज्ञान अनुभाग, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[3]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेलः rjshroshan579@gmail.com

परिचय

पशुधन भारतीय किसानो की आय का एक प्रमुख स्त्रोत है। विश्व में सर्वाधिक पशुधन की संख्या (536.8 मिलियन) भारत में है। हालाँकि पशुधन की उत्पादकता वैश्विक औसत से काफी कम है। इसका प्रमुख कारण हरा एवं सूखा चारे की कमी है। वर्तमान में भारत में क्रमशः 30.65 एवं 11.85% हरा एवं सूखा चारे की कमी है जो वर्ष 2050 तक 18.43 एवं 13.20% हो जाएगी। इस कमी को पूरा करने के लिए चारा फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करना होगा। साथ ही, चारा फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल में भी वृद्धि करना पड़ेगा। चारा फसलों के अंतर्गत कृषि क्षेत्रफल काफी (4.6%) समय से स्थिर है, क्योंकि किसान अपनी उपजाऊ जमीन का उपयोग आर्थिक दृष्टि से उच्च आय अथवा लाभदायक/व्यावसायिक फसलें उगाने में करते है। अतः चारा फसलों का क्षेत्रफल बढ़ने के लिए हमें गैर परंपरागत क्षेत्र जैसे बंजर, कम उपजाऊ, पथरीली भूमि, खेत के मेड़, बलुई रेतिली मृद्दा तथा खेत का वो क्षेत्र जहां कोई फसल उगाई नहीं जाती, का उपयोग किया जाना चाहिए। इन क्षेत्रों के लिए एक तथा बहुवर्षीय घास चारा फसलें उपयुक्त है, क्योंकि ये कम उर्वरा क्षमता, बंजर भूमि इत्यादि पर कम लागत के साथ आसानी से उगाई जा सकती है। घास फसलों की एक बार बुवाई करने से औसतन 5 से 7 वर्ष तक उत्पादन देती है, जिससे किसान की आय में वृद्धि की जा सकती है। साथ ही हरे चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है। भारत में प्रमुख रूप से उगाई जाने वाली एक वर्षीय तथा बहुवर्षीय चारा फसलें निम्नलिखित है, सेवण घास, धामण घास, लाम्प घास, मकरा घास एवं मूरट घास।

1. सेवण घास *(लेसियूरस सिंडिकस)*

सेवण एक बहुवर्षीय घास है जो पश्चिम राजस्थान के शुष्क क्षेत्रो तथा 100–350 मिमी वर्षा वाले क्षेत्रो में पाई जाती है। इसे कम वर्षा तथा रेतीली भूमि में भी आसानी से उगाई जा सकती है। विकसित जड़ तंत्र के कारण इसमें सुखा सहन करने की क्षमता पायी जाती है। भारत के अलावा सेवण घास मिस्र, सोमालिया, अरब व पाकिस्तान में भी पाई जाती है। भारत मे मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, पंजाब व हरियाणा के शुष्क क्षेत्रो में पायी जाती है। इसको घासो का राजा भी कहते है क्योंकि ये बलुई मृदा में आसानी से उग जाती है। इसी कारण यह थार के रेगिस्तान में बहुतायत मिलती है। इसका तना उद्धव शाखा युक्त जो 1.2 मीटर तक लंबा होता है, पत्तीयाँ रेखा कार, 20–25 से.मी. लंबी तथा पुष्प गुच्छ 10 से.मी. लंबी होती है।

सेवण घास गायों के लिये सर्वोत्तम पौष्टिक चारा है। गायो के अलावा भैस व ऊंट भी इस घास को बड़े चाव से खाते है। छोटे पशु जैसे बकरी, भेड़ आदि इसको पुष्पन के समय बहुत पसंद करते है। सेवण घास से उच्च गुणवत्तायुक्त "हे" भी बनाया जा सकता है। परिपक्व अवस्था आने पर इसका तना सख्त हो जाता है तथा इसकी गुणवत्ता व पाचकता में भी कमी आ जाती है अतः परिपक्व घास को पशु कम पसंद करते है। इस घास से प्रति हेक्टेयर 50–75 क्विंटल सूखा चारा प्राप्त होता है।

2. धामण घास *(सेंचरस सेटिगेरस)*

यह शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक प्रमुख बहुवर्षीय घास है जिसकी ऊंचाई 0.2 से 0.9 मीटर होती है। इसकी पत्तियों की लम्बाई 2 से 30 सेंटीमीटर तथा चौड़ाई 1.8 से 6.9 सें.मी. होती है। काला धामन घास दोमट से लेकर पथरीली भूमि में आसानी से पैदा होती है। इस घास में अत्यंत गर्मी व सूखा सहन करने की क्षमता होती है इसलिए यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चारागाह विकसित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ घास है। भारत में यह घास राजस्थान, गुजरात व पंजाब के शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। इसकी बुवाई बरसात के मौसम में

करना बहुत अच्छा रहता है परंतु इस घास की बुवाई दिसंबर व जनवरी माह को छोड़कर साल भर आसानी से कर सकते हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए 5–6 किलो बीज पर्याप्त रहता है। चारागाह स्थापित करने के लिए बीजों के अतिरिक्त पुराने चारागाह का भी जीर्णोद्धार भी कर सकते है। उसके पश्चात संपूर्ण क्षेत्र को चार भागों में बांटकर बारी–बारी से चराई करनी चाहिए। यह घास प्रति हेक्टर 40 से 50 क्विंटल सूखा चारा प्रदान करती है। इस घास से पाचकता युक्त हरा चारा भी प्राप्त होता है जिसको सभी पशु बड़े चाव से खाते हैं एवं 'हे' के रूप में भी सरंक्षित रख सकते हैं।

3. लाम्प घास *(एरिस्टिडा डिप्रेसा)*

यह संसार के उष्ण कटिबंधीय व शीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रो में पायी जाने वाली एक वर्षीय घास है। भारत मे यह घास मुख्य रूप से गुजरात व राजस्थान में पायी जाती है। यह घास मुख्यतः कम वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रो में पायी जाती है। इसे पर्वतो के ढाल व सड़को के दोनों तरफ उगी हुई देखी जा सकती है इस घास से 30–50 से.मी. लंबी शाखाये निकलती है। यह घास भेड़ो व बकरियो का मुख्य आहार है तथा ऊंट भी इसे बड़े चाव से खाते है।

4. मकरा घास *(इलुसिन इजिप्टिका)*

यह एक बहुवर्षीय घास है जिसे पहाड़ी व बंजर भूमि में आसानी से उगाई जा सकती है। इस खास का उत्पत्ति स्थल अफ्रीका है परंतु यह घास दुनिया के उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय लगभग सभी देशों में पाई जाती है राजस्थान के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में यह आसानी से देखी जा सकती है। इस घास की शाखाएं ऊपर की ओर उठी हुई होती है जो 30 सें.मी. तक लंबी होती है। यह एक उत्तम पशु चारा है, जिसे सुखाकर 'हे' के रूप में खिलाया जाता है। यह घास अकाल के समय मे भेड़ बकरी आदि पशुओ के लिए मुख्य आहार है।

5. मूरट घास *(पेनिकम तुरजिडम)*

यह गुच्छेदार एकवर्षीय अथवा अल्पकालिक बहुवर्षीय घास है। इसका उत्पति स्थान अफ्रीका है। यह लगभग सभी उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में फैली हुई है। भारत में यह घास लगभग संपूर्ण भारत में पाई जाती है, परंतु मुख्यत उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय एवं शुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। यह घास मुख्यतः रेत के टीलों, बलुई रेत के मैदानों तथा थार के रेगिस्तान के कृषि क्षेत्रों जैसे गुजरात व राजस्थान में बरसात के मौसम में मुख्य रूप से पाई जाती है। मुरट घास के चारागाह स्थापित करने के लिए बरसात का मौसम सर्वोत्तम रहता है। इसके अलावा यह जंगली क्षेत्रों तथा सड़कों के किनारे पर पथरीली भूमि में पाई जाती है। इस घास का मुख्य गुण यह है कि रेत के धोरों के स्थानांतरण/अपरदन को रोकने में मुख्य भूमिका निभाती है।

इस घास की लम्बाई 75 सें.मी. होती है तथा इसका तना पतला, सीधा व लंबा होता है। पत्तिया रेखाकार 3 से 25 सें. मी. लंबी तथा 3 से 15 सें.मी. चौड़ी होती है। इसका चारा बहुत ही स्वादिष्ट व पौष्टिक होता है जिसे पशु बड़े चाव से खाते हैं। यह घास भेड़, बकरी व ऊंटों का बहुत ही अच्छा पसंदीदा चारा है, इसलिए इन पशुओ को सीधा चारागाह में चराकर अथवा काट कर सुखाकर भी पशुओं को खिलाया जा सकता है। इसके अलावा, इस घास को सुखाकर 'हे' बनाकर भी सरंक्षित रख सकते हैं जिसे चारे की कमी में पशुओं को खिलाने के काम में ले सकते हैं। यह घास वर्ष भर में प्रति हेक्टेयर 20 से 30 क्विंटल सूखा चारा आसानी से पैदा कर देता है।

निष्कर्ष

भारत की प्रमुख एक वर्षीय एवं बहुवर्षीय घास चारा फसलों (सेवण घास, धामण घास, लाम्प घास, मकरा घास एवं मूरट घास) को बंजर भूमि, कम उपजारु भूमि, पथरीली भूमि, खेत के मेड़, बलुई रेतिली मृद्दा, थार के रेगिस्तान के कृषि क्षेत्रों तथा शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। इससे ना सिर्फ चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है, बल्कि वर्षभर हरे एवं सूखे चारे की उपलब्धता के साथ –साथ किसान की अतिरिक्त आय में वृद्धि की जा सकती है।

सारणी 1. प्रमुख घास फसलों में चारे की गुणवत्ता का रासायनिक संघटन।

	कच्ची प्रोटीन (%)	ईथर निष्कर्ष (%)	राख (%)	कच्चा रेशा (%)	नत्रजन रहित निष्कर्ष (%)
लेसियूरस सिंडिकस (सेवण घास)	6–7	1–2	18–20	32–34	40–42
सेंचरस सेटिगेरस (धामण घास)	4–5	1–2	16–18	34–35	43–45
एरिस्टिडा डिप्रेसा (लाम्प घास)	5–6	–	12–13	37–38	45–47
इलुसिन इजिप्टिका (मकरा घास)	6–7	0.8–1	6–7	40–42	–
पेनिकम तुरजिडम (मूरट घास)	6–7	0.8–1	7–8	42–45	–

निज भाषा उन्नति अहै, सब भाषा को मूल, बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।

–भारतेन्दु

फल के आने से वृक्ष झुक जाते हैं, वर्षा के समय बादल झुक जाते हैं, संपत्ति के समय सज्जन भी नम्र होते हैं। परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा है।

– तुलसीदास

कपास की फसल के प्रमुख रोग और उनका प्रबंधन

अशोक कुमार, हरीश कुमार', सतनाम सिंह, सुनीत पंधेर, कुलवीर सिंह एवं पंकज राठौर
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, फरीदकोट (पंजाब)
'संवादी लेखक ईमेलः harish@pau.edu

कपास पंजाब में खरीफ मौसम के दौरान उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण प्राकृतिक रेशे वाली फसल है। कपास की कम उत्पादकता और उत्पादन के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं लेकिन बुवाई से लेकर परिपक्वता तक फसल को नुकसान पहुंचाने वाली पौधों की बीमारियों का महत्व सबसे महत्वपूर्ण है। ये रोग कपास के रेशे की सभी गुणवत्ता मानकों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। कपास की फसल कवक, जीवाणु, विषाणु रोग और शारीरिक विकार से ग्रस्त है।

1. कपास का पत्ता मरोड़ रोगः

कपास का पत्ता मरोड़ रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलने वाला एक विषाणु रोग है। यह रोग कपास फसल की उपज में 90 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाने की क्षमता रखता है। यह रोग आमतौर पर जून के महीने में शुरू होता है। ऊपरी पत्तियों के निचले हिस्से में छोटी शिरा का मोटा होना और जालीदार दिखना रोग की शुरुआत को दर्शाता है। रोग का प्रकोप बढ़ने पर पत्तिया ऊपर या नीचे की ओर मुड़ी हुई दिखाई देती है तथा पत्तियों के नीचे की ओर मुख्य और पार्श्व शिराओं पर भी छोटे–छोटे पत्रक (एनेशन) विकसित होते हैं। अगर कपास का पौधा शुरुआती दिनों में इस रोग से प्रभावित हो जाता है तो पौधे की इंटरनोडल लंबाई छोटी हो जाती है जिससे बौनापन होता है और रोगग्रस्त पौधे में शाखायें, फूल और टिण्डों की संख्या कम हो जाती है, जिससे अंततः उपज में कमी आती है।

2. पैरा विल्ट

यह एक शारीरिक विकार है जो किसी भी किस्म या संकर में हो सकता है और फसल को नुकसान पहुंचा सकता है। यह रोग तब होता है जब फसल की भारी सिंचाई होती है या भारी बारिश होती है और तेज धूप दिखाई देती है। तब बढ़े हुए वाष्पोत्सर्जन के कारण अचानक पत्तियाँ झड़ने लगती है और अंततः पौधे मुरझा जाते है। आमतौर पर यह रोग फसल के पूरी तरह फलन की अवस्था में आने पर सबसे अधिक देखा गया है।

3. जड़ सड़न रोगः

आमतौर पर यह रोग पोधो की 35 से 45 दिनों की अवस्था में फफूंद के संक्रमण के कारण होता है। जड़ सड़न रोग खेत में गोलाकार पेच/गोले में दिखाई देते है। मिट्टी की उच्च नमी रोग के लिए अनुकूल होती है। संक्रमित पौधे की अचानक पत्तियां झड़ जाती हैं जिससे पौधे पूरी तरह से मुरझा जाते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है। प्रभावित पौधों को बहुत आसानी से बाहर निकाला जा सकता है।

4. विगलन या पौध अंगमारी या उखटा रोग

यह रोग मिट्टी में रहने वाले फ्यूजेरियम स्पीशीज नामक फफूंद के संक्रमण के कारण होता हैं जो केवल देसी कपास को प्रभावित करता है। इस रोग का रोगज़नक़ मिट्टी और बीज जनित दोनों है। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ पहले पीली हो

जाती हैं, फिर भूरी हो जाती हैं, मुरझाने लगती हैं और अंत में गिर जाती हैं। पत्तियों का मलिनीकरण पत्तियों की सीमा से शुरू होकर मध्यशिरा तक फैल जाता है। पुरानी पत्तियाँ पहले प्रभावित होती हैं, उसके बाद ऊपर की ओर छोटी नयी पत्तियाँ। गंभीर संक्रमण की स्थिति में पूरा पौधा तेजी से मुरझा जाता है और मर जाता है।

5. पत्ती धब्बा या झुलसा रोगः

कपास में पत्ते पर धब्बे विभिन्न प्रकार की फफूँदो के कारण होते हैं और इनकी पत्तियों पर अलग–अलग आकार के धब्बे पैदा करने की विशेषता होती है। अल्टरनेरिया और मायरोथेशियम *कपास के लिए खतरा पैदा करने वाले* सबसे महत्वपूर्ण पत्ती धब्बा रोग हैं। अधिक गंभीरता कपास की फसल में मजबूत मलिनीकरण का कारण बनती है। अल्टरनेरिया के कारण होने वाले पत्ती धब्बा रोग में अनियमित किनारों वाला हल्का हरा क्षेत्र होता है जो बाद में काला हो जाता है। जैसे–जैसे धब्बे बढ़ते जाते हैं, अनियमित संकेंद्रित क्षेत्र बन जाते हैं जोकि संक्रमित भागों का मलिनीकरण कर देते है। यह रोग रोगग्रस्त मलबे के माध्यम से फैलता रहता है। मायरोथेशियम पत्ती धब्बा रोग के लक्षण पत्तियों और टिन्डो पर दिखाई देते हैं। यह रोग व्यापक बैंगनी किनारों के साथ गोलाकार और अर्धवृत्ताकार भूरे रंग के धब्बों से पहचाना जाता है। उच्च सापेक्षिक आर्द्रता और अनियमित वर्षा रोग के विकास में सहायक होती है।

6. जीवाणु अंगमारी झुलसा या कोणीय धब्बा रोगः

यह रोग बीज एंव मृदा जनित *जेन्थोमोनास एक्जेनोपोडिस* पेथोवार *माल्वेसियरम* नामक जीवाणु से पैदा होता है। यह रोग आर्द्र और बरसात के मौसम में अधिक गंभीर होता है। यह रोग पौधे के ऊपर के सभी भागों पर हमला करता है। यह रोग अलग–अलग आकार के छोटे छोटे जलसिक्त धब्बों के रूप में प्रकट होता हैं। धीरे–धीरे ये धब्बे आकार में बढ़ते जाते हैं पर ये कोणीय धब्बे छोटी शिरा तक सीमित हो जाते हैं और फिर पत्ती के दोनों ओर काले कोणीय मृत घावों में बदल जाते हैं। यह रोग विकसित हो रहे तरुण टिन्डो को भी संक्रमित करता है और बीच में छोटे, गोल, जलसिक्त धब्बे बनता है। रोग के गंभीर प्रकोप से पत्तियाँ मुरझा जाती हैं, सड़ जाती हैं और टिण्डे विकृत हो जाते हैं।

कपास रोगों का एकीकृत रोग प्रबंधनः

- जैसे ही प्रकोप शुरू हो रोगग्रस्त पौधों को समय–समय पर तुरंत उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- अनुशंसित कीटनाशकों का उपयोग करके सफेद मक्खी वेक्टर से फसल की रक्षा करें।
- स्वच्छ खेती का पालन करें और सभी खरपतवार मेजबानों (कांगी बूटी और पीली बूटी) को नष्ट कर दें जो वायरस के लिए संपार्श्विक मेजबान के रूप में कार्य करते हैं।
- पैराविल्ट के लक्षण दिखने पर कोबाल्ट क्लोराइड 10 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी (10 पीपीएम) की दर से छिड़काव करें। स्थायी रूप से मुरझाने की स्थिति में यह स्प्रे प्रभावी नहीं होगा।
- तीन–चार वर्षों तक फसल चक्र अपनाएं क्योंकि जड़ सड़न के रोगाणु खेत में जीवित रहते हैं।
- विल्ट से प्रभावित देसी कपास के खेतों में 5–6 साल के लिए अमेरिकी कपास या गैर मेजबान फसल के साथ फसल चक्र का पालन करें।
- बरसात के मौसम में जुलाई–अगस्त के महीने में फफूंदी के धब्बो के प्रबंधन के लिए फसल पर 200 लीटर पानी में एमिस्टर टॉप 325 एस सी / 200 मिली का छिड़काव करना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो 15 से 20 दिनों के अंतराल पर दोबारा छिड़काव करें।
- रोगग्रस्त कपास की छड़ियों को खेत में जोतने के बजाय कपास की छड़ियों को खेत से हटा दें और ईंधन के रूप में उपयोग करें। इन सुरक्षात्मक उपायों से आदान लागत को कम करने में भी मदद मिलेगी

सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती: फसल विविधिकरण एंव खाद्य सुरक्षा का एक बेहतर विकल्प

राधेश्याम[1], योगिता नैण[2], प्रवीण वी. कदम[1], दीप मोहन महला[3], हरनारायण मीना[4], अनूप कुमार[3], शंकर लाल जाट[3]
हरिशंकर नायक[1], प्रीति तिग्गा[1] एवं भरत राज मीना[1]

[1] भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2] राजस्थान कृषि अनुसन्धान संस्थान, जयपुर (श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय), जोबनेर (राजस्थान)
[3]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, दिल्ली इकाई, नई दिल्ली
[4]भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)
संवादी लेखक का ई–मेल: radheshyamsihag01@gmail.com

भारत में 1970 में शुरू हुई सोयाबीन *(ग्लाइसिन मैक्स)* की व्यावसायिक खेती अब स्थिर हो रही है। इस फसल ने देश के पारंपरिक तिलहनों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। सोयबीन प्रोटीन का अच्छा स्रोत है। जिसमे लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। इसलिए इसको बोनलेस–मीट भी कहा जाता है। जबकि इसकी दाल में कई प्रकार के एल्केलॉइड्स पाए जाने के कारण दाल के रूप में इसका उपयोग सिमित है। ज्यादातर इसका उपयोग खाद्य तेल के रूप में किया जाता है। इसमें लगभग 20 प्रतिशत तेल पाया जाता है, जिसका उपयोग सब्जी, अचार और अन्य प्रकार के खाद्य प्रदार्थ बनाने में बहुतायत होता है। इसके अलावा इसका उपयोग अन्य खाद्य प्रदार्थ जैसे; सोया–पनीर, सोया–चाप, सोया–मिल्क और केक के रूप में किया जाना काफी प्रचलन में है, इसी अवसर के साथ सरकार द्वारा फूड प्रोसेसिंग को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसमे सोयाबीन काफी पोषक भोजन प्रदान करवाने के साथ–साथ खेती को भी टिकाऊपन बनना है। यह मुख्य लेग्यूमिनसि कुल की फसल है। जो मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके उपजाऊ बनना है। साथ ही जैविक खेती के माध्यम से जैविक तेल उत्पादन करके विदेशों में निर्यात करने की सम्भावना बनती है। खरीफ 2020 में 120 लाख हेक्टेयर में सोयाबीन की खेती हुई थी और पैदावार करीब 105 लाख टन थी। उद्योग के सर्वो से पता चला है कि तिलहन के लिए रिकॉर्ड उच्च कीमतें कपास और दालों जैसी प्रतिस्पर्धी वस्तुओं की खेती से स्विच करने के लिए कुछ लोगों को प्रेरित कर सकती हैं। जो भारत से ज्यादातर जैविक सोयाबीन तेल कुल जैविक निर्यात का लगभग 50 प्रतिशत योगदान दे रहा है। जो विदेशी मुद्रा अर्जित कर किसानों की आय को बढ़ाने में सक्षम साबित हो सकता है, साथ ही उत्तर–पूर्वी भारत में चावल–गेहूं फसल प्रणाली के दुष्प्रभाव जैसे; पराली जलाने से होने वाले प्रदूषण, घटता भू–जल स्तर, मृदा में घटती पोषक तत्वों की कमी, जल प्रदूषण, रासायनिक दवाइयों का असर और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों को फसल विविधिकरण में सोयबीन का समावेश करके कम किया जा सकता है। इसलिए फसल विविधिकरण के महत्व को देखते हुए अनाज वाली फसलों के साथ लेग्यूमिनसि कुल की दलहन और तिलहन का समन्वेष करके मृदा स्वस्थ्य के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित कर खेती में टिकाऊपन लाया जा सकता है।

उत्तर–पूर्वी भारत में चावल–गेहूं फसल प्रणाली में फसल विविधिकरण में सोयाबीन एक अच्छा विकल्पः– लगातार एक ही फसल प्रणाली से जल जमीन और वातावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को कम करने के लिए फसल विविधिकरण पर सरकार, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् , कृषि विश्वविद्याल्य, अंतराष्ट्रीय मक्का एंव गेहूं सुधार केंद्र एंव गैर–सरकारी संस्थान किसानों के साथ मिलकर अनेकों योजनाओं द्वारा प्रयास किया जा रहा है, जिसमे हरियाणा सरकार द्वारा चलाई गई योजना जैसे "मेरा जल मेरी विरासत" के तहत किसानो को विभ्भिन प्रकार से प्रोत्साहन देकर फसल विविधिकरण की और आकर्षित किया जा रहा है। इसमें सोयाबीन एक प्रमुख दलहनी–तिलहनी फसल है जो वातावरण से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा में उर्वरा शक्ति बनाये रखने में सक्षम है, जो खरीफ में चावल की जगह या चावल+सोयाबीन (कुड में चावल+बेड पर सोयाबीन) अंतर–फसलीकरण के माध्यम से

कम इनपुट जैसे; खाद, पानी, ऊर्जा का उपयोग करके उगाई जा सकती है। यह फसल प्रणाली जैसे, सोयबीन–गेहूँ–मूँग में सरक्षित कृषि के तहत स्थाई–बेड पर लगाना बहुत ही लाभदायक हो सकता है। जिससे कम लागत में अधिकतम 2.5 से 3 टन प्रति हेक्टेयर उपज के साथ काफी लाभदायक साबित हुआ है।

स्रोतः– रिसर्च फार्म फार्मर्स फील्ड सिमिट, करनाल, हरियाणा

उत्पादकता बाधाएंः– राष्ट्रीय स्तर पर सोयाबीन की कम उपज के संभावित कारणः–

- अंतर्निहित कम बीज जीवन क्षमता
- कम/अधिक पौधों की संख्या
- एक ही किस्म की खेती
- रोपण का गलत तरीका/फ्लैटबेड रोपण
- देरी से बुवाई
- बीज उपचार के बिना बीज की बुवाई
- खराब जल प्रबंधन/जलभराव की स्थिति
- असंतुलित उर्वरक अनुप्रयोग
- कीट–पतंगों का अकुशल प्रबन्धन
- कीटनाशकों के छिड़काव में पानी का अनुपातहीन उपयोग
- उर्वरक के साथ बीज की मिश्रित बुवाई
- कटाई में देरी के कारण बहुत ज्यादा नुकसान
- क्रेडिट प्राप्त करने में बोझिल प्रक्रिया

मिट्टी की आवश्यकताः– रेतीली दोमट मिट्टी, मध्यम जल धारण क्षमता, उचित गहराई, तुलनात्मक रूप से जैव–कार्बनिक में समृद्ध और स्थाई पीएच (6.5 से 7.5) के साथ समतल क्षेत्र सोयाबीन की अधिकतम उपज के लिए उपयुक्त है। अत्यधिक लवण वाली और खराब जल निकासी वाली मिट्टी सोयाबीन की खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

जुताईः– गर्मियों में एक गहरी जुताई के बाद 2–3 क्रॉस हैरोइंग से सोयाबीन की फसल के लिए उपयुक्त बीज क्यारी बन जाती है। अच्छी जल निकासी सुनिश्चित की जानी चाहिए। सोयाबीन के तहत ज्यादातर भाग वर्टिसोल और संबंधित मिट्टी के अंतर्गत है, जो कि खेती करने के लिए तुलनात्मक रूप से कठिन है, जीरो–टिलेज में उठी–क्यारी और संरक्षण कृषि से कम लागत के साथ अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है।

किस्मों का चयन और बुवाई का समयः– अच्छी सोयाबीन की अधिक उपज के लिए अच्छी किस्मो का चयन करना

अति आवश्यक है, और विभिन्न वातावरणों में स्थिर प्रदर्शन करने वाली होनी चाहिए। एक जल्दी परिपक्व अवधि की किस्म 300 से 400 प्रतिशत फसल गहनता वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो सकती है, जबकि मध्यम अवधि की किस्में 200 प्रतिशत फसल गहनता वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं। विभिन्न परिपक्वता अवधि के साथ 3–4 किस्मों की एक से अधिक किस्में उगाई जाएं, ताकी, उत्पादन स्थिरता, उपकरण और मजदूरों का कुशल उपयोग किया जा सके । बुवाई से पहले अंकुरण परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए ताकि बुवाई के लिए उपयोग किए जाने वाले बीजों का कम से कम 70 प्रतिशत अंकुरण होना चाहिए जो इष्टतम पौधों की संख्या बनाये रखने और एक अच्छी फसल के लिए आवश्यक है। इसलिए, बीज दर को उपयुक्त रूप से समायोजित करने के लिए उच्च या निम्न अंकुरण प्रतिशत का उपयोग किया जाना चाहिए। 60 प्रतिशत से कम अंकुरण वाले बीजों को बदल देना चाहिए। बुवाई का समय भारत के उत्तरी, उत्तर–पूर्व, उत्तर–पश्चिम और मध्य भाग में, सोयाबीन मुख्य रूप से खरीफ (जून–जुलाई) में उगाया जाता है। हालांकि, देश के प्रायद्वीपीय और उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में सोयाबीन की फसल रबी मौसम (नवंबर से अप्रैल) में भी संभव है। प्रायद्वीपीय भारत के कुछ क्षेत्रों में सोयाबीन के बाद सोयाबीन की फसल प्रणाली भी ली जा सकती है। लेकिन दक्षिण भारत के इन क्षेत्रों में चावल या किसी अन्य खरीफ फसल के बाद रबी या ग्रीष्मकालीन सोयाबीन भी ली जा सकती है। खरीफ फसल के लिए, जून के दूसरे पखवाड़े में सिंचाई के बाद या मानसून आने से पहले रोपण करके अच्छी पैदावार ली जा सकती है । जब सिंचाई उपलब्ध न हो तो बुवाई मानसूनी वर्षा की शुरुआत के साथ की जानी चाहिए। बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के पहले सप्ताह तक पूरी कर ली जानी चाहिए। क्योंकि देर से बुवाई करने से कई समस्याएं होती हैं। मानसून की शुरुआत में देरी के मामले में, सोयाबीन को 25 प्रतिशत अधिक बीज दर, जल्दी परिपक्व होने वाली किस्म और उपज में कमी की भरपाई के लिए कम पंक्ति दुरी के साथ लगाया जाना चाहिए।

बीज की गहराईः– बीज को 3 सेमी की गहराई पर रखा जाना चाहिए ताकि अच्छा अंकुरण हो सके। गहरी बुवाई करने पर अंकुरण और अंकुरों का उभरना बुरी तरह प्रभावित होता है। बुवाई के तुरंत बाद बारिश, शुष्क और धूप मौसम

उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताः–

प्रताप सोया–1 (आर.ए.यू.एस.–5)	गहरे बैंगनी फूलों एवं पीले दानों वाली इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई वाले व सीधे होते है। जो 96–104 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी पत्तियां गहरी हरी तथा भूरे रोये वाली जिसकी 30–35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार होती। है। यह किस्म गर्डल बीटल नामक कीड़े के प्रतिरोधी एवं पर्ण भक्षी कीटों, पर्ण धब्बा एवं तना सडन रोग से मध्यम प्रतिरोधी होती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 17.98 प्रतिशत होती है।
जे.एस. 97–52	यह विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में अधिक उपज देने वाली मध्यम अवधि एवं मध्यम दाने वाली किस्म है। यह पीला मोजेक, जड़ सड़न, तना छेदक एवं पत्ती भक्षक कीटों एवं अधिक नमी के लिये प्रतिरोधी/सहनशील होती है। कुशल जल प्रबन्धन में 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार होती है। जो 98–102 दिनों में तैयार हो जाती है। जिसमे तेल की मात्रा 17.48 प्रतिशत होती है।
एन.आर.सी. 37 (अहिल्या–4)	100–105 दिनों में पकने वाली इस किस्म के फूल सफेद, उत्तम अंकुरण एवं दाना मोटा होता है। जिसकी पैदावार 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। यह किस्म पत्ती धब्बा एवं तना गलन रोग से मध्यम प्रतिरोधी, तना मख्खी एवं पर्ण भक्षी कीटों से सहनशील होती है। इस किस्म के बीजों में अधिक अंकुरण एवं लम्बे समय तक भण्डारण के बाद भी वांछनीय अंकुरण की विशेष क्षमता होती है।
प्रताप राज–24 (आर.के.एस.–24)	यह किस्म 95–100 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। फूल सफेद, पत्तियाँ गहरी हरी रंग की चौड़ी, तना मजबूत तथा पत्तियाँ, तने और फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। इसका उत्पादन 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर जिसमे तेल की मात्रा 21.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म गर्डल–बीटल, सेमी लूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी एवं पीत विषाणु रोग, तना गलन तथा पत्ती धब्बा रोगों के प्रतिरोधी पाई गयी।
एस. एल. 549	रोग प्रतिरोधी, अधिक उपज और बहुतायत फसल प्रणाली में उगाने के लिए अच्छी किस्म है जो पंजाब कृषि विश्वविधालय द्वारा विकसित की गयी है।

के कारण कठोर मिट्टी की पपड़ी बनने से अंकुर–निकलने की समस्या बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में सिंचाई से पहले या निकलते हुए अंकुर को नुकसान पहुँचाए बिना कठोर मिट्टी की पपड़ी को तोड़ने की सलाह दी जाती है। सोयाबीन के लिए 3 सेमी से अधिक गहराई में रोपण की सिफारिश नहीं की जाती क्योंकि इसमें अधोभूमिक अंकुरण होता है। जिसमें लम्बी हाइपोकोटिल बीजपत्रों को मिट्टी की सतह पर खींचती है।

पौधों की इष्टतम संख्याः– भारत में सोयाबीन की कम उपज का एक कारण उप–इष्टतम या सुपर–इष्टतम पौधों की संख्या है। लगभग 0.45 मिलियन/हेक्टेयर इष्टतम पौधों की संख्या होती है। वांछित पौधों की संख्या को बनाए रखने के लिए गुणवत्ता वाले बीज और अच्छे बीजों का उपयोग आवश्यकता होता है।

बीज दर और बीज उपचारः– बीज दर बीज सूचकांक और अंकुरण क्षमता पर निर्भर है। आवश्यक बीज दर आमतौर पर 75 किग्रा / हेक्टेयर है। सामान्य तौर पर बीज सूचकांक में प्रत्येक ग्राम की वृद्धि से बीज की दर लगभग 5 किग्रा / हेक्टेयर बढ़ जाती है। उत्तरी क्षेत्रों में जहां पौधे अत्यधिक वृद्धि दर प्राप्त करते हैं, पंक्ति से पंक्ति की दुरी 60 सेमी और 4–5 सेमी पौधे से पौधे की दूरी उचित होता है। मानसून के देर से आने के कारण बुवाई में देरी के स्थिति में कम वृद्धि दर के कारण उपज में कमी के साथ जल्दी फूल आने से कुछ हद तक पंक्ति से पंक्ति की दूरी को 30 सेमी तक सीमित करके और बीज दर में 25 प्रतिशत की वृद्धि करके कुछ हद तक उपज को स्थिर रखा जा सकता है। कवको की लगभग 20 या उससे भी अधिक प्रजातियों को बीज जनित रोगो में माना जाता है। जो सोयाबीन के पौधे के जमाव को प्रभावित करते है। इस प्रकार बीजों को कवकनाशी से उपचार करना आवश्यक हो जाता है। थिरम+कार्बेन्डाजिम (2:1) के साथ 3 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बीजों को उपचारित करने से कॉलर सड़ांध को रोकने के लिए पाया गया है। बीज उपचार से संक्रमित बीजों के अंकुरण में सुधार होता है, सोयाबीन की जड़ में वायुमंडलीय नाइट्रोजन के प्रभावी नोड्यूलेशन और निर्धारण की सुविधा के लिए यह जरूरी है कि बीजों को ब्रैडी–राइजोबियम जैपोनिकम कल्चर बीज के साथ उपचार किया जाना चाहिए। बेहतर पैदावार के लिए फास्फोरस उपयोग दक्षता में सुधार के लिए 500 ग्राम/75 किग्रा बीज फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया से उपचार किया जाना चाहिए।

उर्वरक प्रबंधनः– संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग सोयाबीन की बेहतर उपज के लिए सुनिश्चित होता है। आवश्यक पोषक तत्व और राइजोबियम+फॉस्फेट घुलनशील सूक्ष्मजीव के बुवाई के साथ 10 टन अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद/हेक्टेयर देने पर सोयाबीन की अच्छी उपज होती है।

रासायनिक उर्वरक	मात्रा (किग्रा/है.)	समय व विधी
नत्रजन	20–30	बुवाई के समय
फॉस्फोरस	60–80	बुवाई के समय
गंधक	20–40	बुवाई/बढ़वार के समय
सल्फर	20	बुवाई/बढ़वार के समय
राइजोबियम + फॉस्फेट घुलनशील सूक्ष्मजीव	500 ग्राम / 75 किग्रा बीज	बीज उपचार

खरपतवार प्रबंधनः– खरपतवार का घनत्व, खरपतवार के प्रकार और खरपतवार और फसल के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करती हैं। सोयाबीन के खेतों में खरपतवारों का संक्रमण उपज की कमी और मिट्टी के पोषक तत्वों की कमी के प्रमुख कारणों में से एक है। सोयाबीन में खरपतवार की प्रकृति और तीव्रता के आधार पर 68 प्रतिशत तक उपज में कमी पायी गई है। यह देखा गया है कि बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण पंक्तियों के बीच उगने वाले खरपतवारों की तुलना में एक पंक्ति के भीतर उगने वाले खरपतवार अधिक हानिकारक होते हैं। सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण अवधि बुवाई के 40–45 दिनों तक होती है। सोयाबीन पारिस्थितिकी तंत्र में पाए जाने वाले सबसे आम संकरी–पत्ती वाले खरपतवार जैसेः *साइनोडोन डैक्टाइलॉन* (बरमूडा घास), *डिजिटेरिया* (केकड़ा घास), *डाइनब्रा अरेबिका* (लोना घास), *एलुसिन इंडिका* (हंस/तार घास), *इचिनोक्लोआ* (बार्नयार्ड घास), *सैकरम स्पोंटेनम* (टाइगर ग्रास), *सेटेरिया ग्लौका* (पीली फॉक्स टेल ग्रास), *डैक्टिलोक्टेनियम एजिप्टीयम* (कौवा

पैर घास) और *साइपरस रोटंडस* (बैंगनी नट–सेज) और *फिम्ब्रिस्टिलिस मिलियासिया* (फिम्ब्रिस्टिलिस) सेज में जबकि यूफोरबिया (स्पर्ज), *एक्लीफा इंडिका* (कुप्पी), *डिगेरा अर्वेन्सिस* (लाहसुआ), *कोमेलिना बेंघालेंसिस* (दिन का फूल), *सिनोटिस एक्सिलरीज, बोहेविया डिफ्यूसा* (हॉग वीड), *एक्लिप्टा अल्बा* (झूठी डेज़ी), *सेलोसिया अर्जेंटिया* (बटेर घास / सफेद कॉक्सकॉम्ब), *कन्वोल्वुलस अर्वेन्सिस* (फील्ड बाइंड वीड), *फिजलिस मिनिमा* (ग्राउंड चेरी) *कैसुलिया एक्सिलारिस, एग्रेटम कोनीजोइड्स* (बिल बकरी का खरपतवार), *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* (कांग्रेस घास) और *फाइलेन्थस निरुरी* द्विबीजपत्री खरपतवारों में हैं। आम तौर पर घास (संकरी–पत्ती वाले खरपतवार), चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धी होती है। यदि पहली निराई–गुड़ाई 20 से 25 दिनों में और दूसरी बुवाई के 40 से 45 दिनों के बाद की जाती है, लगातार बारिश के दौरान भी प्रभावी नियंत्रण सुनिश्चित करने के लिए रासायनिक खरपतवार नियंत्रण करना उचित होगा। सोयाबीन में खरपतवार की समस्या को दूर करने के लिए पूर्व–उद्भव या पूर्व–पौधे निगमन खरपतवार नाशी या जमाव–उपरांत खरपतवारनाशी या दो बार निराई–गुड़ाई को समान रूप से प्रभावी होता है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए सोयाबीन के लिए निम्नलिखित खरपतवारनाशी की सिफारिश की जाती है।

जल प्रबंधनः– सोयाबीन में पानी की आवश्यकता के लिए महत्वपूर्ण अवधि रोपण से लेकर अंकुरण, फूल आने और फली भरने की अवस्था तक उपज को इष्टतम बनाने के लिए इन तीन चरणों में उचित जल प्रबंधन आवश्यक है। अधिक या कम मिट्टी की नमी के कारण उपज के लिए हानिकारक हो सकता है। फसल वृद्धि अवधि के दौरान 75 प्रतिशत उपलब्ध मिट्टी की नमी को बनाए रखा जाना चाहिए। सोयाबीन की फसल द्वारा खपत किए जाने वाले कुल पानी का केवल 25 से 30 प्रतिशत ही फूल आने से पहले उपयोग किया जाता है, जबकि प्रजनन चरणों में 70 से 75 प्रतिशत पानी का उपयोग होता है। फली भरने की अवधि में अधिकतम पानी की खपत होती है। यह देखते हुए कि रोपण और अंकुरण के लिए सोयाबीन की पानी की आवश्यकता लगभग 100 मिमी है, सोयाबीन की कुल पानी की आवश्यकता केवल 498 मिमी होती है। उन परिस्थितियों में जहां पानी की खपत वर्षा के जल की मात्रा से अधिक है, वहाँ पूरक सिंचाई का सहारा लिया जाना चाहिए। दोहरी पंक्ति–कूँड विधि के माध्यम से 0.6 आईडब्ल्यू / सीपीई अनुपात की सोयाबीन सिंचाई अनुसूची ने जल उपयोग दक्षता (5.71 किग्रा / हेक्टेयर / मिमी) में वृद्धि होती है। गुजरात और राजस्थान की परिस्थितियों में क्रमशः 0.8 आईडब्ल्यू / सीपीई अनुपात में फसल की सिंचाई करके सोयाबीन को लाभप्रद रूप से उगाया जा सकता है।

फसल	खरपतवारनाशी रसायन	मात्रा (ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर)	प्रयोग का समय
सोयाबीन	फ्लूक्लोरेलिन	1000–1500	बुवाई के पहले छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह मिला दें
	इमैजेथापायर	100	सोयाबीन की फसल में 20 से 25 दिन पर छिड़काव करें
	पेन्डीमिथलिन	1000	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
	मेट्रिबुज़िन	250	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
	क्लोमाज़ोन	1500	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
	क्विज़ालोफॉप–एथिल	50	सोयाबीन की फसल में 20 से 25 दिन पर छिड़काव करें
	फेनोक्सिप्रॉप–पी–एथिल	70	सोयाबीन की फसल में 20 से 25 दिन पर छिड़काव करें
कपास+सोयाबीन / मूँगफली	फ्लूक्लोरेलिन+हाथ से निंदाई	1000	बुवाई के पहले छिड़ककर भूमि में मिला दें और निंदाई बुवाई के 35 दिन बाद

पौध संरक्षण के उपायः– सोयाबीन की फसल को 300 से अधिक कीटों के प्रभावित होने की सूचना है लेकिन लगभग 15 आर्थिक महत्व के हैं। इसी तरह, भारत में पाए गए 24 सोयाबीन रोगों / कीटों से उपज में काफी नुकसान हो सकता है। एकीकृत कीट प्रबंधन पर जोर देते हुए अनुशंसित पौध संरक्षण उपायों का पालन किया जाना चाहिए।

प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धनः–

फड़का– सोयाबीन की फसल उगते ही 5–7 दिन में फड़कें का प्रकोप शुरू हो जाता है। इनका प्रजनन खेतों की डोलियों पर उगी घास में होता है। ये जमीन की सतह पर फुदकते हुये नयी पत्तियों को काटते है तथा अधिक प्रकोप होने पर पूरी फसल नष्ट हो जाती है। नियन्त्रण हेतु मिथाइल पैराथियान 2% या मैलाथियान 5% चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकें। ध्यान रखें कि खेत की मेड़ो पर 7–10 दिन के बाद भुरकाव करना आवश्यक है।

तना व पत्ती छेदक– तना व पत्ती छेदक एक ही प्रवर्ग के कीट है। तना मक्खी पौधों के तने व कोमल टहनी के जोड़ पर ऊभरी छाल की सतह के नीचे अण्डा देती है। इनसे 3 से 5 दिन में लटे निकल कर कोमल टहनी के बीच का गुदा खा जाती है, फलस्वरूप टहनी मुरझा जाती है। पत्ती छेदक के अण्डे पत्ती की ऊपरी सतह पर दिये जाते है। जिनसे 3 से 5 दिन में लटें निकल कर पत्ती की दोनो सतह के बीच सुरंग बनाती है। हर सुरंग में एक लट् होती है। सुरंग के कारण प्रकाश संश्लेषण किया कम होने से पैदावार कम होती है। नियंत्रण हेतु लेबासिड या क्यूनॉलफॉस 500–700 मिलीलीटर या मिथाइल पैराथयॉन 300–500 मिलीलीटर को प्रति हैक्टर की दर से 500–700 लीटर पानी में घोलकर अच्छी प्रकार से छिड़के। आवश्यकतानुसार तीन सप्ताह बाद पुनः छिड़काव करे।

फुदकले (तेला/जैसिड्स)– सोयाबीन की फसल में तेला कीट बहुत नुकसान करता है। वे छोटे–छोटे 3 से 5 मिलीमीटर लम्बे की गलियों का रस चूसते है फलस्वरूप पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती 8/13 पैदावार प्रभावित होती है। ये कीट विषाणु रोग (वायरस) को फ़ैलाने में मदद करते है। इनका प्रकोप फसल उगने के तीसरे सप्ताह से फलियाँ आने तक अधिक होता है। इन कीटों की रोकथाम हेतु प्रषालीगत (सिस्टेमिक) कीटनाशक दवा अधिक उपयोगी रहती है। डायमिथोएट 30 ई सी या मिथाइल डिमेटोन 400–600 मिलीलीटर दवा को प्रति हैक्टर की दर से 400–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार तीन सप्ताह पश्चात छिड़काव पुनः दोहरावें।

गर्डल बीटल– यह इस फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है। अन्य भृंग की अपेक्षा यह तेजी से उड़ता है जो 25–30 दिन की सोयाबीन या ढेंचा की फसल पर देखा जा सकता है। अनुमानतः 25–30 दिन की फसल पर वयस्क मादा पत्तियों के तने या डंठल पर 1–1.5 सेन्टीमीटर के फासले पर दो घेरे बनाती है तथा इन घेरे के बीच एक एक अण्डा देती है। अण्डे 5–6 दिन में पीले हो जाते है तथा इनसे 1.5–2 मिलीमीटर लम्बाई की पीले रंग की लट् निकलती है। ये लटें डण्ठल का गूदा खाती हुई तने की तरफ जाकर तने में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार शाखाओं पर भी घेरे बनाकर अण्डे देती है। पूर्ण विकसित लटे 2–3 सेन्टीमीटर लम्बी व 4–5 मिलीमीटर मोटी होती है। ये गहरे पीले रंग की होती है तने के गूदे को खाकर खोखला कर देती है। बाद में ये शंकु अवस्था में जमीन में या तने में रहती है जिनसे वयस्क निकलते हैं। इनके कारण 20–30% तक पैदावार में हानि होती है। जल्दी बोयी गई फसल पर इसका प्रकोप ज्यादा होता है। रोकथाम हेतु 35–40 दिन की फसल पर डायमिथोएट 30 ई.सी मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. 600–1000 मिलीलीटर दवा की प्रति हैक्टर की दर से 400–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये। तीन सप्ताह बाद छिड़काव/भुरकाव दोहरावें। गर्डल बीटल के नियंत्रण हेतु ढैंचा की फसल अच्छी ट्रेप फसल के रूप में पाई गई है। आधा किलो ऐसीफेट घुलनशील चूर्ण प्रति हैक्टर की दर से छिड़कें। सोयाबीन में गर्डल बीटल कीट नियंत्रण हेतु थायाक्लोप्रिड 24 एस.सी. 750 मि.ली./है . की दर से घोल बनाकर छिड़काव करने से प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

प्रमुख रोग एवं उनका प्रबन्धनः–

पत्ती धब्बा रोग– बुवाई के 30–40 दिन बाद पत्तियों पर हल्के भूरे से गहरे रंग के धब्बे *सरकोस्पोरा कोलेट्रोट्राइकम, फाइटोथ्योरा* आदि कवक के कारण हो जाते है। शुरू में ये

छोटे होते है लेकिन बाद में नमी के कारण ये आकार में बढ़ जाते है। इनकी रोकथाम हेतु एक से सवा किलो मैंकोजेब प्रति हैक्टर की दर से छिड़के।

माइकोप्लाज्मा– सूक्ष्म जीवियों के कारण यह रोग होता है। रोग ग्रस्त पौधे छोटे रह जाते है। उनमें जगह जगह फुटाने हो जाती है कलियां अधिक बनती है। फलिया कम लगती है एवं छोटी रह जाती है। कीड़े रोग को फैलाने में सहायक होते है। अतः कीट नियन्त्रण हेतु डायमिथोएट या मिथाइल डिमेटोन 500 मिलीलीटर दवा को 500 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैक्टर छिड़कें। यह बीमारी इस क्षेत्र में नई है।

तना गलन– यह रोग राइजोक्टोनिया नामक कवक के कारण होता है। इससे तने पर जमीन से 10–15 सेन्टीमीटर ऊपर तक भूरे व काले रंग के दाग बन जाते है। धीरे–धीरे पौधा सूखने लगता है। रोग ग्रस्त पौधे को उखाड़ कर नष्ट करें। अगले साल उस खेत में सोयाबीन की फसल की बुवाई नहीं करें। रोकथाम हेतु डेढ़ से दो किलो मैंकोजेब का 600–700 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

फली झुलसा रोग– सोयाबीन में कोलिटोट्राईकम फली झुलसा रोग की रोकथाम के लिये रोग दिखते ही कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी.के . 0.05 प्रतिशत घोल के दो छिडकाव 15 दिन के अन्तराल में करें।

उपजः– सोयाबीन की उपज बहुत सारे प्रबंधन कारणों पर निर्भर करती है सामान्यत; 1500–2500 किलोग्राम/है. तथा अच्छे प्रबंधन के साथ उचित जलवायु परिस्थितियों में 3000 –3500 किलोग्राम/है. तक उपज ली जा सकती है

कटाई, थ्रेसिंग और बीज भंडारणः– सोयाबीन उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा बढ़ाने के लिए समय पर कटाई और उचित हैंडलिंग महत्वपूर्ण है। कटाई में देरी के कारण फली टूटना सोयाबीन की कम उपज का एक प्रमुख कारण है। प्रतिरोधी किस्मों की खेती के अलावा, समय पर कटाई से उपज के नुकसान को भी कम किया जा सकता है। यह बीज की गुणवत्ता को भी बरकरार रखता है। बीज की नमी सामग्री बीज फसल के लिए मानदंड है। आम तौर पर कटाई के समय बीज की नमी 14 से 16 प्रतिशत होनी चाहिए। अधिकांश किस्मों में फली के रंग का सुनहरे पीले रंग में परिवर्तन फसल के चरण को इंगित करता है। कटाई जमीनी स्तर पर डंठलों को दरांती से काटकर या ट्रैक्टर चालित रीपर या कंबाइन द्वारा की जा सकती है। काटे गए पौधों को 2–3 दिनों के लिए थ्रेसिंग फ्लोर पर सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए। सूखे उत्पाद को यांत्रिक थ्रेशर को 400–500 आरपीएम की कम सिलेंडर गति पर 14 प्रतिशत की बीज नमी के स्तर पर और 300–400 आरपीएम की गति से लगभग 13 प्रतिशत की बीज नमी पर संचालित करके थ्रेस किया जा सकता है। बीज में नमी 13 प्रतिशत से कम होने पर बीज फटना और बीज फूटना देखा जाता है जबकि बीज की नमी 15 प्रतिशत से अधिक होने पर बीज फटने लगते हैं। फसल को लकड़ी के डंडों से पीटकर भी थ्रेसिंग की जा सकती है। सोयाबीन बीज का कवकनाशी उपचार विशेष रूप से लाभकारी होता है यदि बीज फली और तना झुलसा जैसे रोगों से पीड़ित हो। हालांकि, एक बार बीज को कवकनाशी से उपचारित करने के बाद, इसे रोपण के अलावा किसी अन्य उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। भंडारण के दौरान वातन महत्वपूर्ण है, खासकर जब नमी की मात्रा वांछित सीमा तक कम न हो। उचित वातन बीज को कंडीशनिंग करने में मदद करता है, वांछित द्रव्यमान के भीतर तापमान को बराबर करता है, बीज को परिवेश के तापमान तक ठंडा करता है। आम तौर पर 65 प्रतिशत या उससे कम की सापेक्ष आर्द्रता बेहतर होती है। बीज की अधिक भंडारण क्षमता के लिए सापेक्षिक आर्द्रता 50 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। भण्डार कक्ष में तापमान का बीज की जीवन क्षमता, बीज के अंकुरण और पौध की शक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 8–9 महीनों के लिए बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए आदर्श तापमान 50 प्रतिशत की सापेक्ष आर्द्रता पर 20 डिग्री सेल्सियस है। मूल्यवान सामग्रियों के दीर्घकालिक भंडारण के लिए, भंडारण तापमान और सापेक्ष आर्द्रता क्रमशः 10 डिग्री सेल्सियस और 50 प्रतिशत होनी चाहिए।

सरसों की वैज्ञानिक खेती से खाद्य तेल आपूर्ति के साथ आय में वृद्धि

हरनारायण मीना[1], सुशील कुमार सिंह[1], मोहर सिंह मीना[1], मोनू जोरवाल[1], शंकर लाल जाट[2], राधेश्याम[3], अनूप कुमार[2]
इंदु चोपड़ा[3] एवं सी एम परिहार[3]
[1]भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान (दिल्ली इकाई), नई दिल्ली
[3]भाकृअनुप –भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
संवादी लेखक का ई–मेलः hariagro@gmail-com

भारतीय सरसों (*ब्रासिका जुंसिया*) का क्षेत्रफल 70 प्रतिशत से अधिक है। इसका क्षेत्र उत्तर भारत के राज्य जैसे राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश और उत्तराखंड में मुख्य तौर से रबी में लगाई जाने वाली प्रमुख तिलहनी फसल हैस मानव उपभोग के लिए इसके बीज और तेल का उपयोग मसालों, अचार, करी और सब्जियों के स्वाद के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग बालों के तेल, ग्रीस के निर्माण में भी किया जाता है। खली का उपयोग चारा और खाद के रूप में किया जाता है। हरा तना और पत्तियां मवेशियों के लिए हरे चारे का अच्छा स्रोत हैं। तेल केक में श्सिनिरगिनश् होता है, जो स्वादिष्टता का कारण बनता है। इसके कड़वे स्वाद के कारण समस्याऐं और ग्लूकोसाइनोलेट जो प्रोटीन पूरक के रूप में तेल केक के उपयोग को सीमित करता है। पौधों को हरी सब्जियों के रूप में उपयोग किया जाता है, क्योंकि वे आहार में सल्फर और खनिजों की आपूर्ति करते हैं। उद्योग में सरसों के तेल का उपयोग चमड़े को मुलायम बनाने के लिए किया जाता है।

कैनोलाः– सरसों समूह की पारंपरिक किस्मों के तेल में 40–60 प्रतिशत से अधिक इरुसिक एसिड जिसके सेवन से माइकोकार्डिनल घाव और वसा जमा होने की सूचना मिली है। इसी तरह पारंपरिक किस्मों के बीज भोजन में ग्लूकोसाइनोलेट्स की उच्च सामग्री होती है। जो विषाक्त उत्पादों का उत्पादन करती है। इसके सेवन से थायरॉइड फंक्शन बाधित होता है। गण्डमाला और स्वाद में कमी आती है। कम इरुसिक एसिड और ग्लूकोसाइनोलेट्स वाली किस्मों का विकास करें। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप वे सफल किस्में विकसित करें जिनमें 2 प्रतिशत से कम इरूसिक एसिड हो।

स्रोतः– राजस्थान में सूक्ष्म सिंचाई के तहत शुष्क भूमि में सरसों की खेती।

जलवायु और मिट्टी की आवश्यकताएंः– सरसों की फसलें मूल रूप से समशीतोष्ण क्षेत्र में उगाई जाती हैं, हालांकि वे व्यापक अनुकूलन क्षमता रखते हैं। इन उष्ण कटिबंध में अधिक ऊंचाई पर भी खेती की जा सकती है। विभिन्न प्रजातियों के लिए इष्टतम तापमान की आवश्यकता भी अलग है और वही फसल के चरण के साथ बदलता रहता है। सामान्य तौर पर इन फसलों को उच्च तापमान की आवश्यकता होती है बेहतर विकास के लिए प्रारंभिक विकास चरणों और ठंडे मौसम और प्रजनन चरण के दौरान साफ आकाश के दौरान 0.5–3.0, 15–25 और 35–40 डिग्री सेल्सियस की तापमान सीमा को न्यूनतम, इष्टतम और अधिकतम माना जा सकता है। फसल के लिए लगभग 18.25 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। कम आर्द्रता, विशेष रूप से फूल आने के समय साफ मौसम अनुकुल रहता हैस फसल की वृद्धि 25 डिग्री सेल्सियस पर इष्टतम होती है। 35 डिग्री सेल्सियसए बारिश, उच्च आर्द्रता फसल के लिए अनुकूल नहीं हैं। इन शर्तों के अंर्तगत विशेष रूप से एफिड्स और सफेद जंग के

रोग और कीटों की घटनाएं अधिक होती हैं। अत्यधिक ठंड और पाला इस के लिए हानिकारक है, फसल विशेष रूप से फूल आने और बीज बनने और विकास के चरणों के दौरान क्योंकि इसके परिणामस्वरूप मधुमक्खी कम होती है।

मृदा चुनाव एवं खेत की तैयारीः— सरसों की फसल के लिये अच्छे जल निकास वाली भारी हल्की रेतीली एवं दोमट मृदा उपयुक्त होती है। फसल की अच्छी वृद्दि के लिए खेत को भली भांति तैयार करना चाहियें। खेत की तैयारी करने के लिये एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके 2.3 बार हैरो चलावें। जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जावें। इसके बाद पाटा चलाकर खेत को समतल करें। जिससे मृदा मैं नमी संचित रहें। जहाँ मृदा क्षारीयता एवं लवणीयता से अत्यधिक ग्रस्त हो वहाँ प्रति तीसरे वर्ष में जिप्सम 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग करना चाहिए भूमिगत कीड़ो से फसलों की रक्षा के लिए 1.5 प्रतिशत क्विनालफॉस 25 किग्रा/है. की दर से अन्तिम जुताई के समय प्रयोग करना चाहिए।

उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताः— विभिन्न राज्यों के लिए अनुशंसित विभिन्न जैविक और अजैविक तनावों के लिए किस्में जारी की गई हैं। 'कैनोला' के तहत, जिसमें या तो इरूसिक एसिड की मात्रा कम होती है या इरुसिक एसिड और ग्लूकोसाइनोलेट दोनों ही कम मात्रा में होते हैं। पारंपरिक किस्मों के स्थान पर उन्नत किस्मों से उत्पादकता में 15–20% की वृद्धि की जा सकती है उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए किसानों द्वारा उगाया जाता है।

प्रजाति	विशेषता
अरावली (आर.एन.393)	इस किस्म की उँचाई मध्यम होती है। इसमें तेल की मात्रा का 42 प्रतिशत होती है। इस किस्म में 55–60 दिनों में फूल आते हैं। जो 135–138 दिनों में पककर तैयार हो जाती हैं। इसकी पैदावार 22–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती हैं। यह किस्म सफेद रोली के प्रतिरोधी होती है।
एन.आर.सी.डी.आर.–2	यह किस्म समय पर सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिए उपयुक्त है। जो 131–156 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 20–26 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। जिसमे तेल की मात्रा 36.5–42.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म लवणता और उच्च तापमान के लिए सहिष्णु होती है।
वसुन्धरा (आर.एच.9304)	यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं इसकी उँचाई 180–190 से.मी. होती है। इस किस्म की पैदावार 25–27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर एवं फसलावधि 130–135 दिन की होती है। यह फली चटकने व आड़ी गिरने के प्रतिरोधी होती हैं।
पूसा जय किसान	इस किस्म की उँचाई 160–180 से.मी. होती है। जिसकी उपज 18–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर, फसलावधि 130–140 दिन एवं इसमें तेल की मात्रा 38–40 प्रतिशत होती है। इस किस्म में सफेद रोली, मुरझान व तुलासितस रोगों का प्रकोप अन्य किस्मों की अपेक्षा कम होता है। फलियाँ पकने पर दाने झड़ते नहीं है। एवं इसका दाना कालापन लिए हुए भूरे रंग का होता है। इस किस्म का तेल खाने के लिए उपयुक्त होता है।
एन.आर.सी.एच.बी. 101	सिंचित क्षेत्रों में पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म की उपज 14–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। जो 105–135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है । इसमें तेल की मात्रा 35–42 प्रतिशत होती है।
डी.आर.एम.आर. 150–35	यह जल्दी पकने वाली व चूर्णित आसिता के प्रति सहनशील होती है। इस किस्म की फसलावधि 114 (86–140) दिन की होती है। तथा इसकी पैदावार 19.5–26.3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। इस किस्म में तेल की प्रतिशत मात्रा 39.8 होती है।
डी.आर.एम.आर. 1165–40	यह किस्म वर्षा आधारित क्षेत्रों में समय पर बुवाई के किये उपयुक्त है। जो 133–151 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 22–26 क्विंटल प्रति हेक्टेयर व तेल की मात्रा 40–42.5 प्रतिशत तक होती है।
पूसा सरसों–24	कम इरुसिक एसिड 2% से कम
पूसा सरसों–25	सिंचित स्थिति में जल्दी बुवाई के लिए उपयुक्त, उच्च तापमान के लिए सहनशीलता
पूसा सरसों–26	देर से बोने के लिए उपयुक्त
पूसा सरसों–27	बहु फसल प्रणाली के तहत सिंचित स्थिति में जल्दी बुवाई के लिए उपयुक्त
पूसा सरसों–32	उच्च उपज, रोग प्रतिरोध

बुवाई का समयः— सरसों में समय पर बुवाई बहुत महत्वपूर्ण शून्य लागत आदान है, क्योंकि यह इष्टतम स्थिति सुनिश्चित करता है। फसल की वृद्धि और विकास, कीट और बीमारियों के माध्यम से फसल को होने वाले नुकसान को भी कम करता। फसल की बुवाई तब की जाती है जब दैनिक औसत तापमान लगभग 26–28 डिग्री सेल्सियस होता है। यदि अधिकतम तापमान बहुत अधिक है बुवाई से देरी करनी चाहिए या उन किस्मों का चयन करना चाहिए, जो उच्च तापमान को सहन कर सकें। सरसो की फसल में अच्छे उत्पादन के लिए उचित बीजदर के साथ–साथ उचित दूरी तथा बुवाई का उचित समय रखना अति आवश्यक है यदि फसल की बुवाई समय पर की जाये तो बीजो का अंकुरण अच्छी प्रकार से हो पाता है एवं पोधो का ओज भी अच्छा होता है।

बुवाई का उचित समय	25 सितम्बर से 15 अक्टूबर
बीज दर (किग्रा/है.)	4–5
पक्ति से पक्ति (से.मी.)	30
पौधे से पौधे (से.मी.)	10–15
बीज उपचार	बावस्टिन/2 ग्राम/किलोग्राम बीज–एजोटोबैक्टर

विरलीकरणः— पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी बनाए रखने के लिए बुवाई के 15–20 दिन बाद फसल में विरलीकरण कर देना चाहिए।

जीरो टिलेज के तहत मक्का–सरसों–मूंग फसल प्रणाली में सरसोंः— उत्तर पश्चिम भारत में चावल–गेहूं प्रणाली में फसल विविधीकरण के लिए एक अच्छा विकल्प हैंस यह प्रणाली उत्पादकता, लाभप्रदता प्रदान करता है, जबकि साथ ही मिट्टी के स्वास्थ्य और समग्र स्थिरता में सुधार करता है। इस प्रणाली में किसान बहु–फसल प्रणाली के तहत कम लागत से 3 टन प्रति हेक्टेयर सरसों की उपज प्राप्त कर सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धनः— बुवाई से पूर्व मृदा परिक्षण कराकर सिफ़ारिशो के अनुसार ही रासायनिक उर्वरको का प्रयोग करें। तिलहनी फसलों की अधिक उपज लेने के लिए उर्वरको के साथ साथ देशी खाद व जैव उर्वरको का भी प्रयोग करें। यदि किसी कारण मृदा जाँच न हो तो वहां फसल के लिए क्षेत्रीय सिफ़ारिशो के आधार पर उर्वरको का प्रयोग करना चाहिए। कार्बनिक खादों में पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में पाये जाते है। परन्तु इसके उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार होता है। जिससे मृदा की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में बढोतरी होती है। कार्बनिक खाद पौधों को मुख्य पोषक तत्वों के साथ साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रदान करती है। अतः उपलब्ध हो तो 8 से 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी सडी हुई गोबर की खाद बुआई के 15–20 दिन पूर्व खेत में डालकर जुताई कर अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए। सामान्यतया मृदा उर्वरता को बनाये रखनें के लिये तीन वर्ष में एक बार गोबर की खाद का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

रासायनिक उर्वरक	मात्रा (किग्रा/है.)	समय और विधि
नत्रजन	40–60	बढ़वार के समय
फास्फोरस (एकल सुपर फास्फेट)	30	बुवाई के समय
पोटाश	30–40	बुवाई/बढ़वार के समय

स्रोतः— रिसर्च फार्म फार्मर्स फील्ड सिमिट, करनाल, हरियाणा

सल्फर पाउडर (90% बेंटोनाइट)	2–3	पर्णीय छिड़काव फूल आने का समय
जिप्सम	250–400	सिफारिश के अनुसार

सघन फसल प्रणालीयों के कारण आजकल मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो गई है। जिनमें जस्ते की कमी महत्वपूर्ण है। अतः जस्ते की कमी वाली मृदा में जस्ता डालने से करीब 15 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में बढोतरी होती है। जस्ते की पूर्ति हेतु भूमि में बुआई से पहले 25 किलो ग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अगर खड़ी फसल में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देने पर इसके 0.5 प्रतिशत घोल का फसल की 30–45 दिन की अवस्था पर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। सल्फर और बोरॉन की कमी वाली मिट्टी में फसल की पैदावार खराब होती है। उपज में उल्लेखनीय वृद्धि प्राप्त करने के लिए 20 किग्रा सल्फर और 1 किलो बोरान/हेक्टेयर डालना चाहिए। तराई क्षेत्र में एनपीके + 10 टन एफवाईएम के साथ 40 किग्रा सल्फर + 25 किग्रा $ZnSO_4$ + 1 किग्रा बोरॉन + एज़ोटोबैक्टर (बीज उपचार)।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग को बढ़ावा देना:– सरसो की फसल में लागत कम करने के लिए फास्फेट घुलनशील जीवाणु (पी.एस.बी.) और माइकोराइजा उर्वरक का भी प्रयोग करना चाहिए। जिससे मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाया जा सके। जीवाणु उर्वरक सस्ते और आसानी से उपलब्ध है और इनका प्रयोग भी सुगम है।

सिंचाई प्रबन्धन:– सिंचाई निर्धारण की समय–सारणी को देखते हुए फसल की क्रांतिक अवस्था जैसे पौधो में फूल बनने के समय, फलियों में दाना बनने की अवस्था सिंचाई के प्रति संवेदनशील है। जिनमे पौधो को पानी मिलना नितान्त आवश्यक है। इन अवस्थाओं को क्रांतिक अवस्थाएं कहते है। यदि इन अवस्थाओं पर मृदा में नमी की कमी हो तो सिंचाई अवश्य करें जो फसलोत्पादन में वृद्दि के साथ–साथ आर्थिक दृष्टि से भी लाभकारी होगा। शीत लहर के समय फसल को ठंड से बचाने के लिए उचित रूप से 1/2 हल्की सिंचाई करनी चाहिए। अतिरिक्त जल से इसकी बढ़वार रुक जाती है। सतत निंदाई–गुड़ाई और अतिरिक्त जल के निथार से इसका उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन:– प्रायः देखा गया है, कि कीट और रोग आदि लगने पर इनकी रोकथाम की ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता है। लेकिन किसान खरपतवारों को तब तक बढ़ने देते हैं, जब तक कि वह हाथ से पकड़कर उखाड़ने योग्य न हो जाएं, लेकिन उस समय तक खरपतवार फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करके काफी नुकसान कर चुके होते हैं। फसल के पौधे अपनी प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों से मुकाबला नहीं कर पाते हैं। अतः फसलों को शुरू से ही खरपतवार रहित रखना आवश्यक हो जाता है। यहां पर एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है, कि फसल को न तो हमेशा खरपतवार मुक्त रखा जा सकता है, और न ही ऐसा करना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है। अतः फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण के उपायों को अपनाकर फसलों को खरपतवार रहित रखा जाए तो फसल का उत्पादन अधिक प्रभावित नहीं होता।

सरसों की फसल के सबसे आम खरपतवार *चेनोपोडियम एल्बम* (बथुआ), लैथिरस हैं। *मेलिलोटस इंडिका* (सेनजी), *सर्किय अर्वेन्स* (काटेली), *साइपरस रोटंडस* (मोथा) और *फुमरिया परविफ्लोरा* (गजरी)। राजस्थान में इसकी खेती पर ओराबंकी का विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। फसल खरपतवार प्रतियोगिता की महत्वपूर्ण अवधि बुवाई के 45–60 दिन बाद फसलों में अनियंत्रित खरपतवार से 20–70% उपज की कमी हो सकती है।

निवारक विधि:– इस विधि में वे क्रियाएं शामिल हैं, जिनके द्वारा खेतों में खरपतवारों के प्रवेश को रोका जा सकता है, जैसे– प्रमाणित बीजों का प्रयोग, अच्छी सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद का प्रयोग, सिंचाई की नालियों की सफाई, खेत की तैयारी और बुआई में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों का प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह से सफाई आदि।

यांत्रिक विधि:– खरपतवारों पर काबू पाने की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। तिलहनी फसलों की प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 15 से 45 दिन के बीच का समय खरपतवारों की प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में ही तिलहनी फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना अधिक लाभदायक है। सामान्यतः दो बार निराई–गुड़ाई, पहली बुआई के 20 से 25 दिन बाद तथा दूसरी 40 से 45 दिन बाद करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

रासायनिक विधि:– तिलहनी फसलों में खरपतवारनाशी

रासायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। इससे प्रति हैक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की भारी बचत होती है। लेकिन इन रसायनों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये, कि इनका प्रयोग उचित मात्रा में उचित ढंग से तथा उपयुक्त समय पर हो अन्यथा लाभ के बजाय हानि की संभावना रहती है। विभिन्न तिलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी रसायनों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है, जैसे– फ्लुक्लोरालिन / 1.00 किग्रा/हेक्टेयर का संयंत्र पूर्व समावेशन या पेंडीमेथालिन के पूर्व–उद्भव अनुप्रयोग/ 1.00 किग्रा/हेक्टेयर खरपतवार नियंत्रण में काफी प्रभावी होते हैं। यदि रोपण के बाद खरपतवार निकलते हैं, तो आइसोप्रोटूरॉन / 0.75 किग्रा/हेक्टेयर बुवाई के 30 दिन बाद छिड़काव किया जा सकता है। नाइट्रोफेन / 1.0 से 1.5 किग्रा/हेक्टेयर को 800–1000 लीटर पानी में बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व उपयोग करना खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए प्रभावी पाया गया है।

प्रमुख कीट और उनका प्रबंधनः–

पेन्टेड बग व आरा मक्खी– अंकुरण के 7–10 दिन में ये कीट अधिक हानि पहुंचाते हैं । इनकी रोकथाम के लिये 7.5 ग्राम इमीडाक्लोप्रिड 70 डब्लू . एस . प्रति एक किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें । मिथाईल पैराथियॉन 2 प्रतिशत चूर्ण 20 किलो या मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू एस सी एक लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकें / छिड़कें।

हीरक तितली– रोकथाम हेतु एक लीटर क्यूनॉलफोस ।/2 सी प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिडकें।

मोयला– फसल में 50 से 60 मोयला प्रति सेन्टीमीटर पौधे की केन्द्रीय शाखा या 30 प्रतिशत पौधे ग्रसित होने पर नियंत्रण हेतु छिड़काव किया जाए। मोयला की रोकथाम हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर भुरकें। अथवा पानी की सुविधा वाले स्थानों में थायोमिथेंक्साम 25 घुलनशील चूर्ण 100 ग्राम या मैलाथियान 50 ई सी सवा लीटर या डाइमिथोएट 30 ई सी 875 मिलीलीटर या मिथाईल डिमेटोन 25 ई सी या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण ढाई किलो प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में मिलाकर छिड़कें अथवा बुवाई के 6–8 सप्ताह बाद सिंचाई के साथ फोरेट 10 जी की 10 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से देवें ।

प्रमुख रोग एवं उनका प्रबन्धनः–

सफेद रोली– इस रोग के प्रकोप के कारण पत्तियों, तनों, पुष्पों व फलियों पर सफेद फफोले हो जाते हैं। इस रोग से ग्रसित पौधों पर फलियां व बीज नहीं बनते। इस रोग की रोकथाम के लिए बीज को एपरोन की 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करनी चाहिए। फसल पर मेटालेक्जिल 8 प्रतिशत व मेन्कोजेब की 2.5 ग्राम मात्रा को प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव या भुरकाव करना चाहिये।

छाछया– इस रोग के प्रकोप द्वारा पूरे पौधे सफेद पाउडर जैसे पदार्थ से ढक जाते हैं। पौधे की पत्तियां झड़ जाती हैं तथा फलियों में दाने सिकुडे हुए बनते हैं। इसके नियत्रंण के लिये डायनोकेप या केराथेन की 1 किलो या 20 किलो गन्धक का चूर्ण प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिये।

तुलासिता– इस रोग के प्रकोप के कारण पत्तियों के नीचे सफेद फफूंद रूई के समान दिखाई देती है पत्तियों के उपर हल्के भूरे बादामी रंग के धब्बे बन जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए फसल पर मेटालेक्जिल 8 प्रतिशत + मैंकोजेब की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति लीटर में घोल बनाकर छिड़काव कर देना चाहिये। तुलासिता के नियंत्रण के लिये केराथेन की 1 लीटर मात्रा प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर भी छिड़काव किया जा सकता है।

कटाई, थ्रेसिंग और उपजः– आमतौर पर सरसों की फसलों की कटाई 75 प्रतिशत फलियों के पीले होने और बीज की नमी की मात्रा 30 से 40% के आसपास होते ही कर ली जाती है। फसल की कटाई अधिमानतः सुबह के घंटों में की जानी चाहिए, जब फली रात की ओस से थोड़ी नम हो जाती है ताकि बिखरने वाले नुकसान को कम किया जा सके और कुछ दिनों के लिए धूप में सुखाएं। थ्रेसिंग से पहले अनाज में नमी की मात्रा 12 से 20% के बीच होनी चाहिए। उत्पादन अधिक होने पर कंबाइन या मल्टी क्रॉप थ्रेशर का भी प्रयोग किया जाता है। विनोइंग द्वारा बीजों को अलग किया जाता है। भंडारण के समय बीज की नमी 8% से कम होनी चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में सरसों 20–25 क्विंटल/हेक्टेयर उपज होती है। मिश्रित फसल; 2–3 क्विंटल/हेक्टेयर; शुद्ध फसल – 10–15 क्विंटल/हेक्टेयर उपज होती है।

भारत में तिलहन उत्पादनः महत्व, उत्पादन बाधाएं और वैज्ञानिक नवाचार के माध्यम से उत्पादन

राधेश्याम[1], योगिता नैण[2], प्रवीण वी. कदम[1], हरनारायण मीना[3], अनूप कुमार[4], शंकर लाल जाट[4], सी एम परिहार[1], हरिशंकर नायक[1], प्रीति तिग्गा[1] एवं भरत राज मीना[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[2]राजस्थान कृषि अनुसन्धान संस्थान, जयपुर, (श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय), जोबनेर (राजस्थान)

[3]भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

[4]भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, दिल्ली इकाई

संवादी लेखक का ई–मेलः radheshyamsihag01@gmail-com

भारतीय वनस्पति तेल अर्थव्यवस्था दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। जो दुनिया के तिलहन क्षेत्र का लगभग 15 प्रतिशत है। भारत की कृषि अर्थव्यवस्था तथा उद्योग जगत में पैदावार एवं मूल्य की दृष्टी से खाद्यान्नों एवं दलहनों के बाद तिलहनी फसलों का बड़ा महत्व है। जो मानव भोजन के लिए महत्वपूर्ण है। तिलहनी फसलों का उपयोग तेल उत्पादन के लिए किया जाता है। इंडियन एक्सप्रेस की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत की खाद्य तेल की मांग 23.4–25.9 मिलियन टन के दायरे में है। हालांकि, देश 8.6–10.6 मिलियन टन का उत्पादन करता है, जो इसकी जरूरत के आधे से भी कम है। नतीजतन भारत आयात पर बहुत अधिक निर्भर करता है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के अनुसार 38 ग्राम तेल की प्रतिदिन प्रति व्यक्ति आवश्यकता होती है लेकिन कम उत्पादन के कारण यह उपलब्धता मात्र 14 ग्राम ही है। तिलहनी उत्पादों का संतुलित सेवन नहीं करने से वर्तमान में मानव के शरीर में हृदय रोग का ज्यादा प्रकोप हो रहा है। तिलहनी फसलें कारखानों में वनस्पति तेलों के लिए कच्चे माल की पूर्ति करता है। भारत वनस्पति तेलों में अमेरिका, चीन और ब्राजील के बाद दुनिया का चौथा सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है। देश के सकल फसल क्षेत्र में लगभग 14 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत और कृषि उत्पादों के मूल्य में 10 प्रतिशत तिलहनी फसलें अपना योगदान देती है। तिलहन का दुनिया के 16 प्रतिशत क्षेत्र और 10 प्रतिशत उत्पादन भारत में किया जाता है। परन्तु अपनी घरेलू मांग को पूरा करने में असक्षम है। भारत दुनिया में खाद्य तेलों का सबसे बड़ा आयातक है। पिछले एक साल में भारत में बिकने वाले कई खाद्य तेलों की कीमत 70 फीसदी तक बढ़ गई है। उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय की ओर से जारी आंकड़ों के मुताबिक मूंगफली तेल की कीमत 61 फीसदी तक बढ़ गई है, जबकि 2021 में सरसों का तेल करीब 70 फीसदी महंगा हुआ है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक पाम तेल की खुदरा कीमत 62.35 फीसदी बढ़कर 138 रुपये प्रति किलोग्राम हो गई जो एक साल पहले की समान अवधि में 85 रुपये प्रति किलोग्राम थी। इसी तरहए सूरजमुखी तेल 110 रुपये प्रति किलोग्राम से 59 प्रतिशत बढ़कर 175 रुपये हो गया जबकि वनस्पति की कीमतों में 56 रुपये प्रति किलोग्राम की वृद्धि हुई। मूंगफली

भारत में तिलहन का परिदृश्य-2021

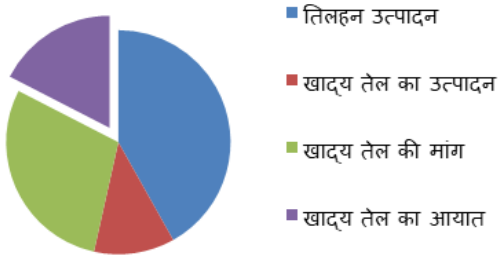

कुल तिलहन क्षेत्र	28 मिलियन हैक्टर
कुल तिलहन उत्पादन	36 मिलियन टन
उत्पादकता	1295 किलोग्राम/हैक्टर
खाद्य तेल का उत्पादन	10 मिलियन टन
खाद्य तेल की मांग	25 मिलियन टन
खाद्य तेल का आयात	15 मिलियन टन

स्रोतः– कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।

तेल की कीमत भी 24 मई को 35.33 प्रतिशत बढ़कर 180 रुपये प्रति किलोग्राम हो गई जो एक साल पहले की अवधि में 133 रुपये प्रति किलोग्राम थी जबकि सरसों के तेल की कीमत 48 प्रतिशत बढ़कर 170 रुपये प्रति किलोग्राम हो गई। इससे आम आदमी का बजट प्रभावित हो रहा है।

सरसों, तिल, तोरिया, सूरजमुखी, कुसुम, अलसी, सोयाबीन, नाइजर, मूंगफली और अरण्डी भारत की महत्वपूर्ण तिलहनी फसलें है। भारत में तिलहनों का उत्पादन दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है। तिलहनों का उत्पादन बढ़ाने के लिए वर्तमान में विभिन्न योजनाएं शुरू की गई है। जिससे देश तिलहनों में आत्मनिर्भर हो सके। इसी प्रकार किसानों को यह संदेश भेजना चाहते है कि वे जल्द से जल्द तिलहनी फसलों के उत्पादन की ओर ध्यान दें और अधिक से अधिक तिलहनी फसलों की खेती करें। तिलहनी फसलों का महत्व समझ कर इसका अधिक उत्पादन करना चाहिए। देश में विविध कृषि पारिस्थितिकी परिस्थितियाँ सभी नौ वार्षिक तिलहन उगाने के लिए अनुकूल हैं जिसमें शामिल है;

खाद्य तिलहनी फसलें	गैर–खाद्य तिलहनी फसलें
खाद्य तेलों की आपूर्ति का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत खाद्य तिलहनी फसलों को जाना जाता है। जैसे; सरसों, तिल, मूंगफली, सोयाबीन, तोरिया, राई, नाइजर, सूरजमुखी, कुसुम आदि।	गैर–खाद्य तेल की आपूर्ति के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में गैर–खाद्य तिलहनी फसलों को जाना जाता है। जैसे– अरंडी, अलसी, महुआ, जोजोबा, नीम, करंज रतनजोत आदि।

इसके अलावा चावल की भूसी और कपास के बीज से पर्याप्त मात्रा में वनस्पति तेल और मक्का और तंबाकू के बीज से थोड़ी मात्रा में तेल प्राप्त होता है।

भारतीय खेती में तिलहन फसलों का महत्वः– वनस्पति तेलों में भारत, अमरीका, चीन और ब्राजील के बाद चौथा सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश है। जिसमे दुनिया के 16 प्रतिशत क्षेत्र और 10 प्रतिशत उत्पादन भारत में किया जाता है। तिलहनी फसलों के बीजो में 20–60 प्रतिशत मात्रा तेल होता है। खाद्य तेलों का प्रयोग खाना बनाने एवं प्रोटीन के रूप में और गैर– खाद्य तेलों का उपयोग चमड़ा उद्योग में किया जाता है। वनस्पति तेलों और उसके उत्पादों का प्रयोग डीजल, प्लास्टिक की फिल्म, धातु, रासायनिक सामग्री एवं ऑयल बनाने में किया जाता है। लेग्यूमिनेसी तिलहनी फसलों का प्रयोग चारागाह और हरी खाद के रूप में भी कर सकते है। इसकी खल में 40–60 प्रतिशत प्रोटीन होता है। खल का निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकते है।

- तिलहन फसलें सभी प्रकार की मिट्टी और जलवायु में उगाई जा सकती हैं।
- कम अवधि की फसल होने के कारण इन्हें अनाज के साथ फसल चक्र में शामिल किया जाता है।
- मूल्यवान नकदी फसलें और विदेशी मुद्रा के स्रोत हैं।
- साबुन, पेंट, स्नेहक, वार्निश आदि जैसे कई उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं।
- मानव आहार में प्रोटीन और खाद्य तेल, वसा का योगदान करते हैं।
- खाद्य तेल खली मवेशियों को खिलाई जाती हैं जबकि अखाद्य केक खाद के रूप में उपयोग किए जाते हैं।
- कुछ दलहन तिलहन जैसे सोयाबीन, मूंगफली जो मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके उर्वरता बनाए रखने में मदद मिलती है।
- निर्धारण और अगली फसल को प्रदान करना।
- कुसुम जैसी फसल कांटेदार होने के कारण मुख्य फसल को मवेशियों को चराने से बचाने के लिए सीमावर्ती फसल के रूप में बोई जाती है।
- ये मृदा अपरदन को रोकने में सहायक होते हैं, क्योंकि इनमें पत्तेदार वृद्धि और निकट दूरी होती है।
- कुछ हरी खाद वाली फसलों के रूप में मिट्टी में बदल जाती है।

तिलहन का क्षेत्रफल समय के साथ बढ़ता रहा है और उत्पादन में कई गुना वृद्धि दर्ज की गई है लेकिन दुनिया के अन्य तिलहन उत्पादक देशों की तुलना में इसकी उत्पादकता अभी भी कम है। क्योंकि तिलहन फसलों की खेती ज्यादातर सीमांत भूमि पर की जाती है। जिसमें सिंचाई की कमी

होती है और यहां निम्न स्तर के इनपुट का उपयोग किया जाता है। देश में तिलहन की स्थिति में सुधार के लिए भारत सरकार कई विकास कार्यक्रम चला रही है। जैसे तिलहन उत्पादक सहकारी परियोजनाएँ राष्ट्रीय तिलहन और विकास परियोजनाएँ प्रौद्योगिकी मिशन तिलहन, टीएमओ और तिलहन दलहन तेल प्लम और मक्का की एकीकृत योजना हैं। इन विकास कार्यक्रमों के सम्मिलित प्रयासों से तिलहन फसलों के अंतर्गत उपज और क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। हालांकि भारत अभी भी खाद्य तेल की अपनी आवश्यकता का एक महत्वपूर्ण अनुपात आयात करता है। तिलहन पर प्रौद्योगिकी मिशन ने वनस्पति तेलों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए उत्पादन प्रसंस्करण और भंडारण प्रौद्योगिकियों का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए एक चौतरफा रणनीति अपनाई। मिशन ने तिलहन क्षेत्र में निगमीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू की। प्रयासों के परिणामस्वरूप मिशन अवधि के तहत तिलहन के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और सोयाबीन और सूरजमुखी तिलहन के मामले में सबसे अधिक वृद्धि देखी गई।

तिलहन के उत्पादन और उत्पादकता में बाधाएं:–

- ✓ विविध बढ़ती परिस्थितियों के अनुकूल उच्च उपज देने वाली किस्मों का अभाव
- ✓ बारानी खेती के तहत बड़ा क्षेत्र (88%)
- ✓ जैविक और अजैविक तनाव (30% तक) नुकसान
- ✓ इष्टतम पौधों की संख्या का अभाव
- ✓ उच्च आदान स्थितियों और बेहतर प्रबंधन के प्रति खराब प्रतिक्रिया
- ✓ टर्मिनल विकास चरण पर नमी का दबाव
- ✓ अपर्याप्त बीज प्रतिस्थापन दर (20%)
- ✓ द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों की उभरती कमियां
- ✓ कम जोखिम वहन क्षमता
- ✓ तिलहन किसानों के पास संसाधनों की कमी
- ✓ खराब फसल प्रबंधन
- ✓ लैब–टू–लैंड तकनीक का हस्तांतरण धीमा रहा है।
- ✓ नई प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप की कमी

बढ़ती जनसंख्या की प्रवृत्ति के लिए अधिक मात्रा में भोजन के साथ–साथ संतुलित पोषण की आवश्यकता है। इसे मानव आहार में तिलहन को शामिल करके ही हासिल किया जा सकता है। चूंकि भारत में अधिकांश तिलहन शुष्क भूमि में उगाए जाते हैं इसलिए निम्न उत्पादकता लक्ष्य प्राप्त करने में प्रमुख बाधा है। शुष्क भूमि कृषि के तहत कम उत्पादकता मुख्य रूप से उनकी नमी की आवश्यकता के लिए प्रकृति पर फसलों के निर्भर होने के कारण है, जो जलवायु कारक जैसे वर्षा, धूप के घंटे, आर्द्रता, तापमान, खुले पैन वाष्पीकरण की दर आदि द्वारा तय किया जाता है। तिलहन की मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन के लिए भारत को उत्पादन में कई गुना वृद्धि जरूरत है यह उपयुक्त कृषि तकनीकों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता है।

तिलहन फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए गैर–मौद्रिक कृषि तकनीकः– तिलहन फसलों में वृद्धि का एक अन्य स्रोत कम लागत में अंतर्निहित तकनीकी घटक है, और फसल के कुशल क्षेत्र प्रबंधन के लिए विकसित कोई लागत नहीं है। ये प्रौद्योगिकियां बिना किसान को प्रौद्योगिकी अपनाने पर भारी खर्च किए बिना उत्पादकता लाभ लाती हैं। इनमें से कुछ प्रौद्योगिकियां तिलहन उत्पादकों के बीच बहुत तेजी से फैल गई हैं और तिलहन फसलों की उत्पादकता में पर्याप्त लाभ लाया है। विभिन्न तिलहन फसलों पर कम लागत/बिना लागत प्रौद्योगिकियों की एक सांकेतिक सूची नीचे दी गई है:–

- मृदा स्वास्थ्य में सुधार और कीट को कम करने के लिए फसल चक्रण स
- मिट्टी और नमी संरक्षण उपायों को अपनाना।
- समय पर बुआई।
- बीज दर और विरलीकरण में समायोजन के माध्यम से इष्टतम पौधों की संख्या बनाए रखें ।

- फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए समय पर खरपतवार प्रबंधन।
- जैव एजेंटों और जैव कीटनाशकों के साथ आवश्यकता आधारित पौध संरक्षण।

तिलहन का उत्पादन बढ़ाने की शस्य तकनीक व योजनाएं:–

- कम अवधि की किस्मों के माध्यम से रिले और इंटर क्रॉपिंग को अपनाना
- कटाई के बाद के नुकसान को रोकना / कम करना
- भंडारण में इष्टतम आर्द्रता
- तिलहन की बढ़ती मांग के साथ तालमेल बैठाने के लिए अधिक उपज देने वाली किस्मों की तत्काल आवश्यकता है।
- यदि पारंपरिक और पुरानी किस्मों के स्थान पर अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों को लाया जाए तो यह अत्यधिक बढ़ जाती है।
- किसानों को पर्याप्त मात्रा में, समय पर और उचित मूल्य पर गुणवत्तापूर्ण बीजों की आपूर्ति
- बीज उत्पादन के साथ–साथ वितरण नेटवर्क को भी मजबूत करना होगा ताकि किसानों की मांग पूरा किया जा सके।
- चूंकि मिट्टी की गुणवत्ता और जलवायु की स्थिति अलग–अलग होती है, इसलिए एक क्षेत्र के लिए उपयुक्त बीज दूसरे क्षेत्र के लिए उपयुक्त हो सकते हैं ।
- विशिष्ट क्षेत्रों के लिए विशिष्ट किस्म के बीजों के विकास और वितरण की आवश्यकता होती है।
- बीज ग्राम के माध्यम से स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बीजों का विकास एवं वितरण कार्यक्रम समस्या के समाधान में काफी मददगार साबित हो सकते हैं ।
- प्रमाणित बीजों की आपूर्ति के माध्यम से बीज प्रतिस्थापन दर में वृद्धि पर विशेष जोर दिया जा सकता है।
- रोग और विभिन्न जलवायु/मिट्टी के लिए उपयुक्त बीजों की सूखा प्रतिरोधी किस्में, फसल में सुधार और कटाई के बाद की तकनीक से दालों के उत्पादन को बढ़ावा मिलेगा।
- बीज – केन्द्रक, प्रजनक, आधार और प्रमाणित की आपूर्ति बढ़ानी होगी।
- ग्राम स्तर बीज स्वयं सहायता समूहों द्वारा संचालित बैंक इस समस्या को कुछ हद तक हल कर सकते हैं।
- कृषि के वैज्ञानिकों की भागीदारी से विस्तार तंत्र को मजबूत करने की आवश्यकता है।
- किसानों को विषय विशेषज्ञों के साथ हेल्प लाइन फोन नंबर उपलब्ध कराए जा सकते है ।
- सस्ती कीमत पर उनकी समस्याओं के मार्गदर्शन और निवारण के लिए क्लब।

उच्च एमाइलोज मक्काः इसके स्वास्थ्य लाभ एवं औद्योगिक प्रयोग

दीपक भामरे, आरूशी अरोड़ा, अभिजीत कुमार दास, बी एस जाट, डी पी चौधरी, यतीश के आर, रमेश कुमार, चिकप्पा जी करजगी एवं सुजय रक्षित
भाकृअनुप–भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब)
संवादी लेखक का ई–मेलः das.myself@gmail.com

मक्का एक प्रमुख अनाज फसल है और भारत में सबसे अधिक खेती की जाने वाली और उत्पादक अनाज फसलों में इसका तीसरा स्थान है। मक्का की अधिकतम आनुवंशिक क्षमता के कारण विश्वभर में इसे अनाज फसलों की रानी के रूप में जाना जाता है। मक्का का प्रत्येक भाग यथा पत्ती वल्लरी, डंठल, छल्ली अथवा भुट्टा और दाने उपयोगी हैं और इनकी अत्यंत आर्थिक क्षमता है। भारत में, 63 प्रतिशत मक्का उत्पादन का उपयोग जहां गोपशुओं तथा पोल्ट्री पक्षियों के आहार में किया जाता है वहीं लगभग 8 प्रतिशत मक्का का उपयोग मानव खपत के लिए किया जाता है। मक्का में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहारीय रेशा तथा खनिजों का मिश्रण पाया जाता है। मक्का दानों में स्टार्च एक प्रमुख कार्बोहाइड्रेट है जो कि दाना भार का लगभग 72–73 प्रतिशत होता है। विश्वभर में अधिकांश मानव जनसंख्या के लिए स्टार्च एक प्रमुख खाद्य स्रोत है। पाचन क्षमता के आधार पर, इसे दो किस्मों में वर्गीकृत किया गया है जैसे कि घुलनशील स्टार्च एवं प्रतिरोधी स्टार्च। घुलनशील स्टार्च आसानी से पच जाती है और शरीर में घुल–मिल जाती है तथा तेजी से रक्त शर्करा स्तर को बढ़ाती है जिससे उच्च ग्लाइसीमिक सूचकांक (GI) को बढ़ावा मिलता है। जबकि प्रतिरोधी स्टार्च छोटी आंत में नहीं पचती और बडी आंत में किण्वित होती है। प्रतिरोधी स्टार्च (RS) आमतौर पर एमॉयलोज के उच्च स्तर से सम्बंधित होती है। अतः उच्च एमॉयलोज यथा प्रतिरोधी स्टार्च वाली मक्का का विकास करना पोषणिक दृष्टि से संवर्धित तथा आहार अनुकूल खाद्य का विकास करने की दिशा में एक सराहनीय पहल है।

उच्च एमॉयलोज मक्का के स्वास्थ्य लाभ एवं औद्योगिकी प्रयोग

मधुमेह : पाचनीय स्टार्च वाले खाद्य की खपत करने पर रक्त शर्करा में अनियमित वृद्धि होने के कारण मधुमेह रोग होता है जो कि एक प्रमुख नुकसानदायक रोग है। प्रतिरोधी स्टार्च में आंत में धीरे–धीरे पचने वाली विशेषता पाई जाती है जो कि जहां एक ओर वांछित ऊर्जा प्रदान करती है वहीं दूसरी ओर ग्लूकोज स्तर को सामान्य बनाये रखते हुए इन्सुलिन प्रतिक्रिया को संतुलित रखती है। उच्च एमॉयलोज वाली मक्का प्रतिरोधी शर्करा का एक क्षमताशील स्रोत है जिसका दैनिक उपभोग किया जा सकता है और यह मधुमेह से ग्रसित रोगियों के लिए और साथ ही मधुमेह रोग के विरूद्ध बचाव हेतु एक वरदान है।

आंत स्वास्थ्य : अच्छा आंत स्वास्थ्य अच्छे जीवाणु और खराब जीवाणु के मध्य एक संतुलन है। प्रतिरोधी स्टार्च द्वारा कोलोन में इनके प्रवेश को आसान बनाकर प्रोबायोटिक माइक्रोफ्लोरा की बढ़वार को प्रोत्साहित किया जाता है। आहार में प्रतिरोधी स्टार्च खाद्य का उपयोग जीवाण्विक बढ़वार की बसावट को बढ़ाता है, मल में जमाव को कम करता है, कोलोन में कोशिकीय घटनाओं में सुधार करता है और अंततः पेट अथवा कोलोन कैंसर की संभावना को कम करता है।

मोटापा एवं हृदय संवहनी रोग : जरूरत से अधिक खाने अथवा उच्च कैलोरी वाले खाद्य का उपभोग करने के कारण अधिक कैलोरी ग्रहण करने से मोटापा होता है। मोटापे का संबंध हृदय संवहनी रोगों से होता है। प्रतिरोधी स्टार्च द्वारा जहां एक ओर आहार में उच्च कैलोरी वाले खाद्य के लिए अच्छा प्रभावी विकल्प प्रस्तुत किया जाता है और साथ ही मोटापा एवं हृदय संबंधी रोगों के जोखिम को कम किया जाता है तथा साथ ही खराब कॉलेस्ट्रॉल को कम करने में और पित्ताश्य की पथरी के बनने की घटना की संभावनाओं को कम करने में भी इसकी भूमिका है।

जैव अपघटनीय प्लास्टिक : वर्तमान में दैनिक जीवन में प्लास्टिक सामग्री का व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जाता है लेकिन इसका अपघटन होना एक बडी चुनौती है।

प्लास्टिक का उत्पादन करने वाली कम्पनियां नुकसानदायक गैसों के साथ साथ कार्बन के उत्सर्जन में शामिल होती हैं। प्लास्टिक एक गैर अपघटनीय सामग्री है और साथ ही प्रदूषण (मृदा, जल एवं समुद्र) का प्रमुख कारण है। पारम्परिक प्लास्टिक सामग्री का प्रतिस्थापन करने हेतु जैव अपघटनीय प्लास्टिक सामग्री की मांग बढ़ी है। अधिकांश जैव प्लास्टिक को स्टार्च का उपयोग करते हुए तैयार किया जाता है। भारत में, स्टार्च उद्योग में मक्का स्टार्च का प्रभुत्व है। अपने जैविक मूल के कारण जैव प्लास्टिक पर्यावरण के अनुकूल होती है जिससे कार्बन उत्सर्जन कम होता है, जीवाष्म ईंधन उपयोग और प्रदूशण में कमी आती है। उच्च एमॉयलोज वाली स्टार्च से जैव प्लास्टिक को कहीं अधिक लचीली मजबूती मिलती है। मक्का तथा चावल स्टार्च का उपयोग करते हुए जैव प्लास्टिक का सफलतापूर्वक निर्माण किया गया जिसमें पारम्परिक प्लास्टिक की ही तरह विषेशताएं पाई जाती हैं और इसे आसानी से गलाया अथवा सड़ाया जा सकता है। इसलिए प्लास्टिक उद्योग में उपयोग करने हेतु और पर्यावरण अनुकूल प्लास्टिक को उत्पन्न करने के लिए प्रतिरोधी स्टार्च में कहीं अधिक क्षमता पाई जाती है।

उच्च एमॉयलोज मक्का का प्रजनन : इसमें पहचाने गए उच्च एमॉयलोज मक्का उत्परिवर्ती की मौजूदगी के कारण यह लाभकारी है। मक्का उत्परिवर्ती में समलक्षणी रूप से विशिष्ट विशेषताऐं हैं। इनमें उत्परिवर्ती को कलंकित चमकीले बीजों, धुंधले भ्रूणपोषा और मामूली सिकुड़न की उनकी विशिष्ट अभिव्यक्ति द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। उच्च एमॉयलोज गुण को प्रतिसारी जीन द्वारा नियंत्रित किया जाता है। अतः पारम्परिक बैकक्रॉस कार्यक्रम में, समयुग्मज म उत्परिवर्ती की वसूली करने के लिए स्वरूप्रजनन (सेल्फिंग) की आवश्यकता होती है। विषमयुग्मज परिस्थिति में ae युग्मविकल्पी के कैरियर की पहचान करके स्वरूप्रजनन सेल्फिंग कार्य को छोड़ते हुए बैककास की प्रभावशीलता में सुधार लाने के कार्य में मार्कर सहायतार्थ सेलेक्शन (MAS) में क्षमता है। कैम्पबेल (2007) द्वारा ae युग्मविकल्पी वाले एक उच्च एमॉयलोज वंशक्रम जीईएमएस–0067 को सार्वजनिक डोमेन में जारी किया गया। युग्मविकल्पी के साथ इस वंशक्रम में एक संशोधित जीन मौजूद है जो कि कुल एमॉयलोज भिन्नता का 49 प्रतिशत वर्णन करता है जिससे पृष्ठभूमि में 70 प्रतिशत तक कुल एमॉयलोज मात्रा बढ़ती है। इस संशोधक अथवा मॉडीफायर ने अपनी ओर सबका ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि यह उच्च एमॉयलोज मात्रा में प्रमुख योगदानकर्ता पाया गया था। इस मॉडीफायर का नामकरण एंजाइम परिवर्त SbeI के नाम पर किया गया जो कि उत्परिवर्तन के लिए जाना जाता है।ेइमप के निर्माण के लिए उत्तरदायी युग्मविकल्पी का चेन एवं साथी (2013) ने व्यापक अध्ययन किया और इस कार्य में उन्होंने मानचित्रण डाटा का उपयोग किया। चेन एवं साथी (2013) ने सूचित किया कि पीसीआर प्रवर्धन के माध्यम से उत्पन्न करके आणविक मार्कर द्वारा सामान्य एवं उच्च एमॉयलोज मक्का के बीच भिन्नता की जा सकती है। भाकृअनुप – भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका से म उत्परिवर्ती खरीदे गए और भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना में मार्कर सहायतार्थ बैकक्रॉस प्रजनन प्रारंभ किया गया ताकि उच्च एमॉयलोज वाले युग्मविकल्पी का जारी किए जाने वाले संकरों में स्थानान्तरण किया जा सके। पुनः संस्थान में उच्च एमॉयलोज जननद्रव्यों के संकीर्ण आधार का विविधीकरण किया जा रहा है ताकि उच्च एमॉयलोज और सस्यविज्ञान प्रदर्शन दोनों को सम्मिलित करते हुए नवीन अंतः प्रजात वंशक्रम उत्पन्न किए जा सके।

निज भाषा उन्नति अहै, सब भाषा को मूल, बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।

–भारतेन्दु

''पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेखकों के लिए दिशा-निर्देश''

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) द्वारा हिंदी भाषा में वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है जिसमें सभी रचनाएँ जैसे आलेख, कहानियां, कवितायें इत्यादि प्रकाशित की जाती है।

1. पत्रिका में प्रकाशन के लिये लेखकगण कृषि एवं कृषि सम्बंधित -आर्थिक, -सामाजिक, विषयों पर आलेख भेज सकते है।
2. आलेख के लिए निम्नलिखित दिशा निर्देश हैः

क. आलेख में सामग्री को इस क्रम में व्यस्थित करेंः शीर्षक, लेखकों के नाम व पते, संवादी लेखक का ई-मेल, परिचय, परिचर्चा, निष्कर्ष/सारांश, आभार (यदि आवश्यक हो तो), एवं सन्दर्भ।

ख. परिचयः परिचय में लगभग 250-300 शब्द होने चाहिये तथा इसमें विषय की सामान्य जानकारी के साथ इसके महत्त्व तथा उपयोग के बारे में लिखें।

ग. परिचर्चाः इस भाग में लगभग 1500-2000 शब्द होने चाहिये, जिसमें सारणी, ग्राफ इत्यादि सम्मिलित है।

घ. निष्कर्षः इस भाग में लगभग 100-150 शब्द होने चाहिए, तथा साथ ही विषय-वस्तु का भावी परिपेक्ष भी सम्मिलित हो।

ङ. सन्दर्भः इस सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके ना लिखें, अर्थात संदर्भो को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओँ के हो तो पहले हिंदी वाले सन्दर्भ लिखें तथा इन्हें हिंदी वर्णमाला के अनुसार, तथा बाद में अंग्रेजी वाले सन्दर्भ अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार सूचीबद्ध करें।

च. सारणी तथा चित्रः सारणियों तथा चित्रों को उनके शीर्षक के साथ आलेख में क्रमांकित करके यथास्थान पर सम्मिलित करें तथा पाठ्य में उल्लिखित करें।

3. आलेख किसी अन्य स्रोत द्वारा पहले प्रकाशित नहीं होना चाहिए तथा ना ही अन्य भाषा में प्रकाशित आलेख का अनुवाद होना चाहिये।
4. इस पत्रिका में प्रकाशन के लिए लघु नोट, कवितायें तथा कहानियां भी भेज सकते है, बशर्ते ये रचनायें स्वयं द्वारा रचित होनी चाहिये।
5. आपकी रचनायें यूनिकोड फान्ट या मंगल फान्ट में टाइप करके भेजें, ताकि वो आसानी से किसी भी कंप्यूटर में पढी जा सके व सम्पादित की जा सके।
6. संपादन व सुधार का अंतिम अधिकार संपादकगण के पास सुरक्षित है।
7. प्रकाशन के लिए भेजी गयी रचनाओं पर अंतिम निर्णय प्रकाशक यानी निदेशक, भाकृअनुप- भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना (पंजाब) का रहेगा।
8. आलेखों में चित्र, ग्राफ, तथ्यों की सत्यता या नकल/असल, एवं कहानियों व कविताओं इत्यादि रचनाओं के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।
9. लेखकगण अपनी रचनाएँ, krishichetna.iimr@gmail.com पर ईमेल द्वारा भेज सकते है।
10. पत्र व्यवहार के लिए पता।

निदेशक

भाकृअनुप-भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय परिसर

लुधियाना- 141004 (पंजाब)

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर